हिमाचली लोक-साहित्य

(गद्दी जनजाति के सन्दर्भ में)

अमरसिंह रणपतिया

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-7

प्रकाशक :
सन्मार्ग प्रकाशन
16-यू० बी०, बैंग्लो रोड, जवाहर नगर
दिल्ली-110007

प्रथम संस्करण : 1987 मूल्य : पचास रुपये मात्र

मुद्रक :
एस० एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

HIMACHALI LOK SAHITYA by
Amer Singh Ranpatia Rs. 50.00

भूमिका

हिमाचली लोक साहित्य जो केवल गद्दी जनजाति के संदर्भ में एक स्पष्ट सत्यपूर्ण प्रस्तुति है। इसके लेखक श्री रणपतिया जी ने जो प्रयास किया है उससे गद्दी जनजाति का अध्ययन करने वालों के लिए अथवा इस जाति के सम्बन्ध में शोध करने वालों के लिए जो पथ-प्रदर्शन होगा—प्रशंसनीय है। यद्यपि गद्दी जनजाति के विषय में अनेक लेख, निबन्ध और चर्चाएं मिलती हैं परन्तु लेखक ने इसमें जो एक तथ्यतापूर्ण दिशा प्रदान की है उसे अपने ही प्रकार की प्रकाश किरण कहा जा सकता है।

गद्दी जनजाति चम्बा के भरमौर क्षेत्र में कब आकर बसी? किसलिए दुर्गम क्षेत्र अपनाया? यद्यपि इस विषय में लेखक ने भरसक प्रयत्न किया किन्तु फिर भी ऐसा लगता है कि इस शोध कृत्य की अत्यधिक अपेक्षा बनी रहती है। गद्दी जनजाति के क्षेत्र की अनुभूति लेखक को कम नहीं है और यही कारण है कि इन्होंने अनेक कटु सत्यों को प्रकट करने में कोई न्यूनता नहीं छोड़ी। जीवन के प्रत्येक पहलू पर जितना प्रकाश डाला गया है मैं दावे से कह सकता हूं उसमें कोई त्रुटि छोड़ी नहीं गई है। लोक गीतों, लोक नृत्यों, मनोरंजन, गाथाओं, वेशभूषा, भाषा यहां तक कि लोक प्रशासन के उल्लेख पाठक को उस ओर ले चलते हैं जहां वैदिक और पौराणिक आस्थाएं फलती-फूलती मिलती हैं। आधिक्य, अन्धविश्वास और तद-नुकूल पनपी परम्परा भी सामने आती हैं परन्तु इनके मूल में जो सांस्कृतिक क्षेत्र है उसकी प्राचीनता भी छिपी नहीं रहती। आधुनिक साधन और उपकरणों के अभाव में भी उस समय की वास्तु, मूर्ति, और चित्रकला के अनूठे उदाहरण भी सामने आते हैं। आज पिछड़ी जाति कहलाने वाली जाति कितनी प्रोन्नत रही है, स्वीकारने में कोई अभाव सामने नहीं आता। सामाजिक जीवन के ऐसे उदाहरण भी छिपे नहीं रहते जिन्हें आज आदर्श मानना अनुपयुक्त नहीं होगा। जहां तक भाषा का प्रश्न है वह सुदूर पूर्व लौकिक संस्कृत के समय को प्रस्तुत करता है। त्यौहार, उत्सव एवं लोक विश्वास जिस सांस्कृतिक क्षेत्र को सामने लाते हैं—गद्दी जनजाति द्वारा सम्भाली गई धरोहर, पूर्वजों के प्रति गहन निष्ठा ही तो है। पुस्तक में जिन अछूते विषयों को सारगर्भित पाया जाता है वह भावी लेखकों के लिए पथ-प्रदर्शन प्रमाणित होगा।

—प्रेम शर्मा
भाषा अधिकारी
जिला—चम्बा (हि० प्र०)

दो शब्द

गद्दी जनजाति हिमाचल प्रदेश के जिला चम्बा की अर्द्धप्रवासी, भेड़पालक एवं कृषक जाति है जो वहां के बीहड़ जंगलों, ऊंचे-ऊंचे हिमाच्छादित, धवल-शृंग-शिखरों के मनमोहक प्राकृतिक वातावरण में शताब्दियों से अवस्थित है। ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में वहां की गहरी घाटियां और पर्वतीय हरी-भरी चरागाहें जन-जीवन की चहल-पहल से गूंज उठती हैं। उंचे-ऊंचे पर्वत-शृंखलाओं की हरी-भरी लहलहाती चरागाहों में उनकी भेड़-बकरियों के चरते रेवड़ और उन्हें चराते चरवाहों की मनोहारी बांसुरी के सुरीले स्वर सारी घाटी को प्रतिध्वनित करते हैं। बांसुरी की तान से घने वनों और लहराते खेतों को नव-जीवन का संचार मिलता है परंतु सर्दी के आरंभ होने के पूर्व ही सभी मनमोहक घाटियां और खेत-खलिहान निर्जन हो जाते हैं। कहीं-कहीं गांव में टिमटिमाते दीप दृष्टिगोचर होते हैं। अधिकांश लोग प्रकृति के क्रूर प्रहार के भय से और आवश्यक साधनों के अभाव के कारण अपने माल-मवेशी सहित 'जांधर' (जिला कांगड़ा के आस-पास का क्षेत्र) प्रवास कर जाते हैं। यही कारण है कि धीरे-धीरे काफी लोग अब तक धौलाधार के उस पार की कांगड़ा क्षेत्र की ऊपरी उपत्यका में स्थायी तौर से बस गए हैं। वे लोग भी अपनी सांस्कृतिक धरोहर को उसी तरह संजोए हुए हैं।

पुराने समय में जब यातायात की आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं, गदेरन (भरमौर क्षेत्र) में पहुंचना कठिन कार्य था। गद्दी जन-जाति के लोग, ऊंचे-ऊंचे दर्रों से अपने बाल-बच्चों और माल-मवेशियों को लेकर कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए कई-कई दिनों के बाद अपनेअपने घरों में पहुंचते थे और फिर पांच-छह मास के बाद वही क्रम दोहराने आरंभ कर देते थे। अब जब यातायात की आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध हो गई हैं इस कठिनाई से राहत मिल गई है। चिरकाल तक इस कठिनाई में पली-पोषी यह संस्कृति इसीलिए बाहरी आडम्बर से अछूती रही है।

गद्दी जाति की भाषा, संस्कृति, अद्‌भुत वेश-भूषा, रहन-सहन और रीति-रिवाजों ने, देश-विदेश के विद्वानों को इस ओर आकर्षित किया है। इस संस्कृति के कुछ अंशों पर कतिपय कार्य हुआ है। अधिकांश सांस्कृतिक क्षेत्र अभी तक अछूते पड़े हैं जिनका अध्ययन वांछनीय है।

लेखक कई वर्षों से इस संस्कृति के अध्ययन में संलग्न है तथा अपने कई लेखों के माध्यम से इस संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। कुछ अछूते लोक-साहित्य के विभिन्न विषयों को इस पुस्तक में सम्मिलित कर पाठकों

के लिए उपलब्ध कराया गया है। केवल उसी सामग्री को इस पुस्तक में उपलब्ध किया गया है जो अब तक अन्यत्र अंन्य विद्वानों की पुस्तक में उपलब्ध नहीं है ?

प्रस्तुत पुस्तक का लेखक पाठकों और विद्वानों के आलोचनात्मक सुझावों का सहर्ष स्वागत करेगा।

प्रस्तुत पुस्तक के लिए सामग्री सुलभ कराने के लिए इस क्षेत्र के जागरूक, विद्वान एवं साहित्य-प्रेमी मनीषियों की विचार-विमर्श के रूप में सहायता लेनी पड़ी है। उन्होने दुर्लभ सामग्री सुलभ करने में भी सहायता प्रदान की है।

छतराढ़ी क्षेत्र के माननीय वयोवृद्ध सेवानिवृत्त अध्यापक श्री रूपचंद ने अपने अनुभव और अध्ययन के आधार पर कई विषयों को सुलभ कराने की सहायता की।

छतराढ़ी क्षेत्र के ही श्री जगन्नाथ जी, प्राथमिक शिक्षा अधिकारी ने इस पुस्तक की सामग्री जुटाने में सहायता प्रदान की। कई विषयों पर उनसे विचार-विमर्श भी किया गया।

इसी क्षेत्र की श्रीमती वीना शर्मा अध्यापिका ने घुरैही लोक-साहित्य की अमूल्य सामग्री उपलब्ध कराने में अथक परिश्रम किया। कई दुर्लभ पंक्तियों के अर्थ को समझाने में उन्होंने अपनी अमूल्य सेवाएं दीं।

चण्हौता क्षेत्र के श्री चूनीलाल जी अध्यापक और श्री पूर्णचन्द जी की अमूल्य सेवाएं इस पुस्तक की सामग्री के विषय में ली गई। श्री पूर्णचन्द जी 'बणी' नाग के 'चेला' और पुजारी भी हैं अतः देवी-देवताओं के विषय में उनसे काफी समय तक विचार-विमर्श होता रहा।

'अंचली' लोक-साहित्य के लिए श्री दास शर्मा, ग्राम प्रीणा निवासी से विशेष सहायता मिली। श्री दास जी स्वयं ही 'अंचली' लोक-गीत के सुप्रसिद्ध गायक हैं अतः इस विषय में सिद्ध-हस्त हैं।

पहेलियों और उपनयन के लिए विद्यार्थी वर्ग की विशेष सहायता मिली है।

अन्य युवक और युवतियों ने इस पुस्तक के लिए फोटो देकर कृतार्थ किया है।

ऊपर वर्णित महानुभावों का लेखक सदा अनुगृहीत रहेगा। इनकी अमूल्य सेवाएं चिरस्मरणीय हैं।

अंत में मैं प्रबुद्ध लेखक सर्वश्री भगतराम द्विवेदी, हरि प्रसाद 'सुमन', चमन लाल 'चमन' और प्रेम शर्मा का आभार प्रकट करना नहीं भूलूंगा जिनके प्रोत्साहन से यह सारा कार्य हुआ है।

विषय-सूची



गद्दी युगल परम्परागत वेश-भूषा में

गद्दी जनजाति—एक परिचय

गद्दी हिमाचल प्रदेश के चम्बा जिला में व्यापक रूप से बसी जनजाति है जो मूल-रूप में चम्बा की भरमौर तहसील में बसी थी। अपनी प्रवासी प्रकृति के कारण यह जनजाति प्रदेश के अन्य भागों में फैल गई। अब कांगड़ा के ऊपरी क्षेत्र, धौलाधार के साथ-साथ, इस जाति का बाहुल्य है।

व्यापक अर्थ में यह प्रजाति विभिन्न वर्ग का समूहमात्र है जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रीय, शूद्रादि वर्ण सम्मिलित हैं। सीमित अर्थ में 'गद्दी' एक विशेष वर्ग है जो इन वर्णों से अलग है। यह वर्ग व्यवसायिक दृष्टि से भेड़पालक है परन्तु वर्ण-व्यवस्था के आधार पर क्षत्रीय वर्ण के समीप है। भरमौर का ब्राह्मण वर्ग स्वयं को गद्दी न कहकर, ब्राह्मण कहना ही श्रेयस्कर समझता है। इसी प्रकार निम्न वर्ग के लोग अपने आपको 'शिप्पी' और 'हाळी' ही कहते हैं। 'गद्दी' जाति के वैवाहिक सम्बन्ध भी अपनी 'गद्दी' प्रजाति के मध्य से ही होते हैं। खान-पान में वे शूद्र वर्ग को अलग रखते हैं। भले ही प्रशासन की सुविधा के लिए सरकार ने भरमौर के सभी निवासियों को गद्दी संज्ञा देकर अनुसूचित जनजाति के लाभ उपलब्ध कराए हैं। इन निवासियों को, 'गद्दी', 'गद्दी ब्राह्मण', 'गद्दी शिप्पी' इत्यादि से प्रमाणित किया जाता है। इस प्रकार निम्न वर्ग को अनुसूचित जाति और अनु-सूचित जनजाति दोनों के लाभ उपलब्ध हैं। यहां के निवासी का मुख्य पेशा भेड़-पालन है इसीलिए इसे 'गद्दी' कहा जाता है चाहे वह किसी वर्ग का हो परंतु जातीय आधार पर 'गद्दी' एक विशेष वर्ग है। अध्ययन की दृष्टि से भी इसे व्यापक अर्थ में लिया है।

गद्दी लोगों में प्रचलित और अब तक उपलब्ध अनुश्रुतियों के माध्यम से विभिन्न विद्वानों ने उनके आगमन के विषय में अपनी-अपनी विचार-धाराएं प्रकट की हैं।

हच्चीसन और वोगल ने गद्दी जाति के विषय में प्रकाश डाला है। उन्होंने जो कुछ भी लिखा है सब गद्दियों में प्रचलित अनुश्रुतियों के आधार पर लिखा है। उनका कथन है कि गद्दी जाति का एक ब्राह्मण वर्ग दिल्ली से सन् 760 ई० के लगभग राजा अजयवर्मन् के समय आया। राजा अजयवर्मन् चम्बा राज्य

(तत्कालीन ब्रह्मपुर राज्य—राजधानी ब्रह्मपुर—भरमौर) का राजा था जो अनुमानतः 760 ई० में ब्रह्मपुर की गद्दी पर बैठा। इन विद्वानों ने यह पुष्टि नहीं की कि यह ब्राह्मण समूह इस दुर्गम क्षेत्र में क्यों आया। यदि किसी अशांति के कारण भरमौर में आये हों तो उस समय दिल्ली में कोई अशांति विशेष का वर्णन नहीं मिलता। मुसलमानों के आक्रमण सातवीं शताब्दी में आरंभ हुए थे परन्तु वे सिंध तक ही सीमित रहे।

भारतीय जनगणना-1961 के समय विभिन्न क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया गया। A Village Survey of Chhatrari में गद्दियों के अगमन पर प्रकाश डाला गया है जिसमें अनुमान लगाया गया है कि भरमौर के गद्दी-ब्राह्मण भरमौर के राजा मेरुवर्मन् के समय आये होंगे क्योंकि मेरुवर्मन् (राज्य काल 680 ई०) ने भरमौर में बहुत से मन्दिर बनाये थे जिसके लिए पुजारियों की आवश्यकता पड़ी होगी। उन्हें जागीरों आदि का लालच देकर भरमौर में बसाया होगा।

अन्यत्र चौहान गद्दियों को भी भरमौर में राजा अजयवर्मन् के समय आया माना है।

चम्बा गैजिटियर ने भी केवल एक-दो पंक्तियां देकर इस विवादास्पद किस्से को समाप्त किया है। गैजिटियर में लिखा गया है कि गद्दी ब्राह्मण अजयवर्मन् के समय भरमौर में आये।

एक अन्य जनश्रुति के आधार पर गद्दी खत्रियों के चुरहान, हरखान, पखरू, चलेडी, मंगलु और कुंडियाल परिवार बादशाह औरंगजेब (राज्य काल 1658-1705) के समय आतंकित होकर मैदानों से भरमौर के दुर्गम क्षेत्र में आकर बस गये। यह परिवार भी अन्य गद्दी वर्गों की तरह भेड़पालक है। यह आतंकित समूह लाहौर से भाग कर भरमौर में आया माना जाता है। इसके विषय में भरमौर में कहावत-सी बन पड़ी है कि 'उजड़ा लाहौर और बसा भरमौर', ऐतिहासिक तथ्य तो ठीक हैं कि औरंगजेब के समय हिन्दुओं पर तरह-तरह के अत्याचार हुए। औरंगजेब के समय लाहौर में मुग़ल राज्यपाल रहा करता था जिसके माध्यम से हिन्दू जाति आतंकित रहा करती थी।

चम्बा राज्य की इतिहास श्रृंखला में औरंगजेब के हस्तक्षेप के विषय में वर्णन मिलता है। चम्बा के राजा पृथ्वीसिंह (1641-1664) के समय औरंगजेब का राजा को आदेश पहुंचा कि मन्दिर के बुर्ज गिरा दिये जाएं, पृथ्वीसिंह ने उसके आदेश को मानने से इन्कार कर दिया और मन्दिर पर कलश लगाकर उन्हें और भी सुसज्जित किया। इसी प्रकार औरंगजेब की धर्मांधता के सबूत जहां-तहां मिलते हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि गद्दी खत्री लाहौर से भयभीत होकर भरमौर में बस गये हों।

गद्दी जाति वर्ग में एक अन्य जाति राठी भी है। वेश-भूषा, बोलचाल और खान-पान तथा रीति-रिवाज में इस जाति की गद्दी जाति से भिन्नता नहीं फिर भी राठी जाति अपने आपको गद्दी जाति कहलाने से आपत्ति करती है। यह जाति अधिकतर भरमौर के अप्रवासी क्षेत्र बस्सु-पियूहर, गूं, वेलज और लिहल तथा साहो क्षेत्र में रहती हैं। ये क्षेत्र भरमौर से बाहर हैं परन्तु अधिकांश गद्दी क्षेत्र हैं। राठी जाति के विषय में चम्बा गैजिटियर में स्पष्ट किया है कि वे बाहरी मैदानी क्षेत्र से नहीं आये। इनके विषय में J. B. Lall ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं :

"There is idea current in the hills that land holding castes; The Thakurs, the Kunets and Ghirths are either indigenous to the hills or indigenous by the half blood and that Brahmins, Rajputs and others are descendents of invaders and settlers from the Plains".

कुनेत और घिरथ जातियां गद्दी जाति की उपजातियां नहीं हैं अतः उनके विषय में विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं।

डॉ० वंशीराम शर्मा ने अपने ग्रंथ किन्नर-लोक-साहित्य में हिमाचल की प्रचलित विभिन्न जातियों पर पृष्ठ संख्या 19-20 पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है जिनमें हिमाचल में बसी कुनेत जाति के विषय में भी विस्तार से लिखा है। उनके अनुसार कुनेत एक ख़श जाति है। ख़श से खेती करने के कारण खुनेत और फिर कुनेत हुए। इसके खुंद (कुनवे) आज भी चौपाल क्षेत्र में रहते हैं परन्तु गद्दियों में इस प्रकार की कोई उपजाति नहीं।

कर्नल टॉड ने राजपूतों, गूजरों और अहीरों का सम्बन्ध हूण जाति से बताया है। हूण एक अनार्य बाहरी आक्रमणकारी जाति थी। लेकिन गौरी शंकर ओझा ने राजपूतों को आर्य जाति बताया है तथा उनका रघुवंशी और चन्द्रवंशी होना सीधा आर्य जाति से सम्पर्क स्थापित करना है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि गद्दी लोगों के कुछ इने-गिने कुनवे मैदान से आकर यहां बस गये हों परन्तु गद्दी संस्कृति की जड़ें इतनी गहरी और पुरातन विदित होती हैं कि इनको आठवीं शताब्दी और बाद में सतरहवीं शताब्दी के निवासी मान कर केवल भगौड़े मानना किसी भी रूप में न्यायोचित नहीं। यहां तक कि राठी और कुनेत भी अपने आपको विभिन्न मैदानी इलाकों से आया मानते हैं। यदि वे सभी मैदानों से आए हों तो उनके आने से पूर्व यहां अन्य कौन-सी जाति निवास करती होगी। यानी कि हर जाति अपने आपको कहीं अच्छे क्षेत्र से आया मान अपने आपको श्रेष्ठ समझती है। आने-जाने का सिलसिला तो यहां तक आगे बढ़ा है कि आज भारत की आर्यवंशी संतान भी तो अपने आपको बाहर से आया मानती

है परन्तु उनका आगमन इतना पुरातन है कि भारत में आकर भी अब वह पुरातन संस्कृति का प्रकाशक स्तंभ है। सतरहवीं शताब्दी के मुट्ठी भर लोग आज भरमौर में ही नहीं अपितु समस्त कांगड़ा क्षेत्र की उपत्यकाओं में कैसे फैल गये। उनकी वेशभूषा, खान-पान और बोल-चाल इतनी पुरानी है कि लाहौर में रहने वाले लोग दो सौ वर्ष में इतने पीछे क्यों चले गये ? यदि कुछ मुट्ठी भर लोग आये भी होंगे तो वे अपने आपको अलग-थलग रखने में असमर्थ हो भरमौर की पुरातन गद्दी संस्कृति की लहर में बह गये होंगे।

वास्तव में गद्दी जाति विभिन्न जातियों का एक विस्तृत समूह है जिनमें ब्राह्मण, राजपूत (राणा, ठाकुर, राठी तथा गद्दी इत्यादि), अन्य जातियां आमतौर पर कमीण जातियां हैं जिनमें हाळी (आर्य), बाढ़ी (बढ़ई) सिप्पी (शिल्पी), कोली इत्यादि सम्मिलित हैं। कोली जाति हिमालय में अन्य भागों में विस्तृत रूप से असम तक पाई जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि गद्दी समाज में आर्य लोगों के चारों वर्ण विद्यमान हैं।

गद्दी जाति अन्य व्यवसायों के अतिरिक्त मुख्यतः भेड़पालन का पेशा करती है। इसीलिए इसे संस्कृत के मूल शब्द 'गाडर' से 'गाडरी' और फिर गद्दी कहा। यह जाति अन्य अनार्य जातियों के साथ-साथ सदियों से यहां बसी मालूम होती है।

प्रसिद्ध विद्वान राहुल सांकृत्यायन ने वैदिक अध्ययन के आधार पर आर्य जाति की एक शाखा वैदिक काल के समय रावी और चनाब के मध्य बसी मानी है जो प्रायः भेड़ पालन करती थी तथा उत्तम उर्ण के लिए प्रसिद्ध थी। यह जाति आर्य के सात गणों में से एक थी। आज गद्दी भाषा के अधिकांश शब्द संस्कृतनिष्ठ हैं। वे भेड़ के बच्चे को उर्ण कहते थे। अन्य अधिकांश शब्द मूल संस्कृत से मिलते हैं।

इस पुस्तक में दिये विभिन्न सांस्कृतिक पहलुओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गद्दी जाति भरमौर से प्रदेश के बाहर कांगड़ा के अधिकांश भाग में अवस्थित हुई परन्तु अपने मूल स्थान भरमौर की दुर्गमता के कारण अपनी पुरानी संस्कृति को सदियों से संजोये रही।

भौगोलिक परिवेश

गद्दी जनजाति मूलतः भरमौर तहसील की मूल निवासी जाति है । इसके अलावा यह चम्बा के अन्य भागों में भी बसी हुई है । इस प्रकार गद्दी क्षेत्र को प्रवासी तथा अप्रवासी क्षेत्र में बांटना उचित है । भरमौर तहसील का पूर्ण क्षेत्र प्रवासी है । भरमौर क्षेत्र को छोड़, कूर छतराढ़ी और पियूहर भी प्रवासी हैं । अन्य क्षेत्र अंशतः गद्दी जनजाति से अवस्थित हैं परन्तु अप्रवासी हैं । भौगोलिक परिवेश के अन्तर्गत केवल भरमौर क्षेत्र को ही लिया गया है । अन्य क्षेत्र यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से सम्बद्ध हैं उसका केवल संकेत मात्र विवरण देकर छोड़ दिया गया है । भरमौर क्षेत्र प्रवासी होने के नाते, भेड़पालक सर्दियों में भेड़-बकरियां लेकर मैदानी क्षेत्र की ओर चल पड़ते हैं । छतराढ़ी, कूर और पियूहर क्षेत्र के गद्दी भी अपने रेवड़ों को मैदानी भागों में ले जाते हैं । अप्रवासी क्षेत्र के इने-गिने भेड़पालक ही अपनी भेड़ों को मैदानी भागों में ले जाते हैं अन्य परिवार बारह मास अपने घरों में ही रहकर जीवन निर्वाह करते हैं ।

भरमौर तहसील का पूर्ण क्षेत्र सरकार की ओर से जनजातीय घोषित है । यहां की अपनी ही कठोर प्राकृतिक परिस्थितियां हैं जिसके कारण लगभग सारी जनसंख्या कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना तथा चम्बा की भटियात तहसील की ओर अपना जीवन यापन करने के लिए अग्रसर होती है तथा गर्मियों के आरम्भ में यह प्रवासित जनता पुनः अपने घरों को गदेरन क्षेत्र में वापस आ जाती है । गर्मियों में भेड़पालक (पाहल) अपनी भेड़-बकरियों को ऊंचे क्षेत्र में ले जाते हैं । अन्य परिवार के सदस्य अपने घरों के आस-पास खेतीबाड़ी करते हैं ।

भरमौर क्षेत्र का मुख्य स्थान भरमौर है । इसे यहां के लोग चौरासी की संज्ञा भी देते हैं ।

ऐतिहासिक परम्पराओं के अनुसार यह स्थान तत्कालीन चम्बा राज्य की राजधानी रही है । इसे ब्रह्मपुर कहा जाता था । चम्बा राज्य का विस्तार होने पर चम्बा की राजधानी को दसवीं शताब्दी में स्थानांतरित कर चम्बा में लाया गया जहां नगर बस गया । यहां राजा मेरुवर्मन (राज्य काल 680 ई०) ने कई मन्दिरों का निर्माण किया । उस समय की भव्य कांस्य मूर्तियां आज भी उस समय की

मूर्तिकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। राजा साहिलवर्मन् (दसवीं शताब्दी) के समय यह चौरासी सिद्धों की पावन भूमि रही। इसीलिए इसे चौरासी का नाम दिया गया।

आज कल भरमौर में एक हाई स्कूल, स्वास्थ्य केन्द्र तथा तहसील मुख्यालय के कार्यालय हैं। एस० डी० एम० का कार्यालय भी है। यह स्थान जिला चम्बा से 62 कि० मी० के फासले पर स्थित है तथा बस से जुड़ा है।

भौगोलिक दृष्टि से समस्त भरमौर क्षेत्र को आठ इकाइयों में विभक्त किया जा सकता है। जो इस प्रकार है—

(i) रावी घाटी क्षेत्र—लूण, फाटी, कुठेढ़ इत्यादि। (ii) गरोला-उलांसा-चण्होता क्षेत्र। (iii) होली वाला क्षेत्र (iv) क्वार्सी क्षेत्र (v) तुंदाह बैली क्षेत्र। (vi) बुड्ढल क्षेत्र (vii) कुगति बैली क्षेत्र (viii) रण्हूं कोठी क्षेत्र। प्रत्येक क्षेत्र का ब्योरेबार वर्णन निम्न प्रकार से है—

(I) **रावी घाटी क्षेत्र**—भरमौर जनजातीय क्षेत्र की सीमा रावी नदी के साथ लगे क्षेत्र लूण से निर्धारित की गई है। रावी घाटी क्षेत्र राठी नदी के दोनों ओर बसा है। रावी नदी के दाहिने किनारे पर तीन गांव—लूणा, फाटी और औरा हैं। यह क्षेत्र सूर्य की किरणें सीधी पड़ने के कारण घास का क्षेत्र-सा है। ऊंचे और सीधे उठे पहाड़ भयावह दृश्य-सा प्रस्तुत करते हैं। इन गांवों के लिए जोड़ने वाली पगडंडियां अत्यन्त तंग और भयानक हैं। छोटे-छोटे ढलानदार खेत हैं। पहाड़ियां नंगी और अत्यन्त ढलानदार हैं जिन पर घास उगती है। इन घास की ढलानों को स्थानीय भाषा में 'फाट' कहते हैं।

रावी नदी की बाईं ओर घुडेठ और खड़ामुख मुख्य क्षेत्र हैं। यहां सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं अतः अत्यन्त ठंडा है। कुछ जंगल उगे हैं। खड़ामुख यहां का मुख्य क्षेत्र है। कुछ दुकानें और लोक निर्माण विभाग के कार्यालय हैं। इसी क्षेत्र में बाईं ओर सड़क पर ही लूण और दुर्गट्टी स्थान भी हैं। लूण मोटर रोड पर है जहां से छतराढ़ी और रण्हूंकोठी को मार्ग जाते हैं। दुर्गट्टी में रैस्ट-हाउस हैं।

(II) **गरोला-उलांसा-चण्होता क्षेत्र**—(मुख्य गांव गरोला, उलांसा, स्वाई, पिल्ली, गवाड़, चण्होता इत्यादि)। ये सभी गांव रावी नदी के बाईं ओर स्थित हैं। पहाड़ की चोटियां और पर्वत ढलानें सदाबहार जंगलों से ढकी हैं जिनमें देवदार, तोष और कैल के वृक्ष हैं। गांव में अखरोट के वृक्ष भी हैं। बान के वृक्ष बहुतायात में पाये जाते हैं जो पशुओं के चारे के काम आते हैं। जंगली आड़ू का वृक्ष भी पाया जाता है। कहीं-कहीं सेव के बगीचे भी लगाए गए हैं जहां उत्तम सेव पैदा होता है। नकदीफसलों में 'फुल्लण' और आलू उगाए जाते हैं। पर्वत पर चरागाहें हैं। चरागाहों में धूप और कौड़ की कीमती पैदावार होती है। उलांसा के पर्वतों पर केसर भी उगता है। चण्होता क्षेत्र में कहीं ज़ीरा भी उगता है। यदि जीरा और केसर

की खेती को वैज्ञानिक ढंग पर उगाया जाए तो जनजातिय लोगों का वित्तीय सुधार सम्भव हो सकता है। धूप की खेती को भी वैज्ञानिक ढंग से सुधार किया जा सकता है। मटर की फसल को बहुतायत से उगाया जा सकता। उलांसा और गरोला क्षेत्र में मक्की की फसल अच्छी होती है जबकि चण्होता में जौ की फसल को उत्तमता से उगाया जाता है। दालों की फसल भी उत्तम होती हैं। उलांसा क्षेत्र में चिलगोजा के वृक्ष भी पाए जाते हैं। इसकी बागवानी को भी सम्भव बनाया जा सकता है। जंगलात विभाग इसके जंगल भी उगा सकता है।

(III) **होली वाला क्षेत्र**—इस क्षेत्र में रावी नदी की दाहिनी ओर सियूर, चन्हेल, भटारड़ा और बजोल इत्यादि गांव हैं। जहां घास के ढलानदार पर्वत हैं। खेती के लिए छोटे-छोटे सीढ़ीदार खेत बने हैं जिनमें अन्य क्षेत्र की तरह गेहूं, जौ, सियूल, दालें और फुल्लण तथा भरेस की फसलें उगाई जाती हैं। गांव से आस-पास बान वृक्ष के बन हैं जो पशुओं को हरा चारा देते हैं। कहीं-कहीं सेब भी उगाए जाते हैं। इस क्षेत्र में सियूर नामक स्थान पर जंगलात का विश्रामगृह है। रियास्त के समय खनी, ग्रिम्मा और सियूर होकर होली के लिए सड़क बनी थी। इस समय चम्बा खड़ामुख-होली-जालसू-एहजू निर्माणाधीन है। इस समय न्चहोता के नीचे मछैतर तक रावी तट के साथ-साथ मोटर-योग्य सड़क है।

रावी नदी के बाएं तट पर होली, गुआड़, कुलेठ, दियोल, घड़ाव और नयाग्रां के गांव हैं। पर्वत घने वनों से ढके हैं जिनमें गुच्छी (एक प्रकार की मशरूम) की फसल बहुतायत से होती है। जंगलों और चरागाहों में जीरा भी उगता है। परन्तु भेड़-बकरियां इस फसल को नष्ट कर देती हैं। होली यहां का मुख्य स्थान है जहां हाईस्कूल, जंगलात के कार्यालय, विश्रामगृह तथा डिसपेन्सरी है। यहां बिजलीघर बनाने की योजना कार्यन्वयन पर है। कुलेत गांव भी सुरम्य गांव है जहां कार्तिकेय का मन्दिर और प्रस्तर की मूर्ति देखने योग्य है। इसी क्षेत्र में दियोला गांव भी सुन्दर स्थल है। ऊपर चरागाह और पर्वत शिखर पर एक छोटी-सी सुन्दर झील है। जिसे 'नागडल' कहते हैं। इसी पर्वत-शृंखला से होकर कांगड़ा की पालमपुर तहसील के लिए 'संघारू' दर्श है।

नए ग्रां से कुछ दूर रावी नदी को एक छोटे से पुल द्वारा लांघ कर फिर दाहिनी ओर पहुंचते हैं। बजोला गांव के नीचे से होते हुए एक ओर उर्णा ग्राम को छोड़कर रावी तट के साथ-साथ ग्राउंडा और धारड़ी नामक गांव बसे हैं। ये स्थान काफी दुर्गम क्षेत्र में बसे हैं। मनुष्य के लिए देवी-देवता ही सहारा है। इससे आगे जिला का इस ओर का अन्तिम गांव खनार है। यहां के लोग गाय, बैल नहीं पालते। खेती स्वयं खुदाई करके लगाते हैं इसीलिए इस गांव का नाम खनार पड़ा है। इसके पीछे एक लोक कथा प्रचलित है। कहते हैं पुराने समय में एक दिन सर्दी के मौसम आने पर सभी गांव के लोग 'जांधर' चले गए। जाते समय

अपने पशुओं को (गाय-बैल) को ओबरे (गुआड़) में घास और पानी काफी मात्रा में रख गए। 'जांधर' से वापसी कर उन्होंने अपने ढोरों को मरा पाया। कहते हैं 'गौ माता' ने उन्हें शाप दिया कि वे खेती खोद कर ही करेंगे और गौ पालना उन्हें विवर्जित होगी। वास्तव में गांव के लिए पगडंड़ियां इतनी दुर्गम हैं कि वहां डंगर पहुंचाना ही कठिन है। शायद यही कारण है कि वे गाय-बैल नहीं पालते।

खनार से 5-7 घंटे का रास्ता तय कर यात्री बड़ा भंगाहल पहुंचते हैं जो कांगड़ा जिला का एक गांव है। बड़ा भंगाहल पुराने समय में एक रियासत थी। जिसकी राजधानी बीड़ में हुआ करती थी।

नयाग्राँ से ही एक अन्य मार्ग जो आजकल मोटर-सड़क योग्य बनाया जा रहा है जालसु दर्रा की ओर जाता है। होली क्षेत्र के लोगों के लिए जालसु एक मुख्य मार्ग है जो बैजनाथ क्षेत्र में जाकर मिलता है। यह दर्रा भरमौर के अन्य दर्रों की अपेक्षा अधिक सुगम है। इस रास्ते इस क्षेत्र के लोग भेड़-बकरियों के साथ-साथ बैल और घोड़े भी ले जाते हैं। कुछ समय के बाद यह मार्ग चम्बा-खड़ा मुख-होलीं राजमार्ग के इसी दर्रे से हो एहजु (जोगिन्दर नगर के समीप) पठान कोट-मंडी मार्ग से मिलाया जायेगा।

(IV) **क्वार्सी क्षेत्र**—क्वार्सी क्षेत्र में तीन गांव सम्मिलित हैं। इन तीन गांव के नाम क्वार्सी, हेलंग और भरवाली हैं। ये तीनों गांव क्वार्सी नाले के साथ-साथ ही बसे हैं। ये तीनों गांव सुन्दरतम उपत्यका में अवस्थित हैं। इनमें सबसे सुन्दर गांव क्वार्सी है। यह गांव पर्वत-श्रृंखलाओं के बीच अत्यन्त सुन्दर स्थान पर स्थित है। गांव के एक ओर क्वार्सी नाला अपनी कल-कल की ध्वनि से बहता है। इसके आस-पास खेत हैं। तीनों ओर जंगल का मनोहारी दृश्य मन को मोह लेता है। यदि इसे किसी ऊंची पर्वत-श्रृंखला से देखें तो ऊपर नीला आकाश, आकाश को छूती श्वेत हिमाच्छादित पर्वत-श्रृंखलाएं, उनके नीचे आकाश की तरह की ही हरे घास की चरागाहें और नीचे एक ही रेखा में हरे-भरे जंगल मन को आह्लादित करते हैं। यह सारा दृश्य मानो उस चितेरे ने रंग बिखेरकर कलात्मक ढंग से प्रकृति को सजाया हो। खेतों में एक ओर हरी-भरी गेहूं और दूसरी ओर पकते हुए जौ के खेत का दृश्य मानो चितेरे के कलात्मक रंग की छटा को बिखेरता है। लगभग सौ घरों का यह कस्बा अपनी अनोखी छटा लिये है। गांव के मध्य ही इन्द्रु नाग का मन्दिर एकमात्र रक्षक है। मन्दिर के बीच में ही ठण्डे पानी का झरना नाग की करामात को प्रकट करता है। गर्मियों में थका-मांदा यात्री ठण्डा जल पीकर ईश्वर की लीला का बखान करता है। सर्दियों के दिनों में यह गांव अन्य संसार से बिल्कुल अलग-थलग पड़ जाता है। इसीलिए सभी गांव निवासी क्वार्सी पास से होकर जांधर चले जाते हैं। केवल इने-गिने पांच-सात व्यक्ति सारे गांव के प्रहरी के रूप में रह जाते हैं। गर्मी के दिनों इन लोगों का सम्पर्क

धर्मशाला (काँगड़ा) से अधिक रहता है। अन्य चम्बा के शहरों की अपेक्षा यह शहर इन लोगों के लिए नजदीक पड़ता है। क्वार्सी दर्रे के साथ ही एक छोटी-सी सुन्दर झील है जिसे नाग का डल कहते हैं। कुछ दूरी पर धौलाधार पर ही एक अन्य डल (झील) है जिसे काली का डल कहते हैं। नाग के डल पर मनीमहेश मेले के समय एक मेला लगता है जिसमें कांगड़ा के खनिहार तथा धर्मशाला के लोग भी सम्मिलित होते हैं। यातायात की असुविधा के कारण यात्री लोग यहां कम संख्या में पहुंचते हैं। केवल साहसी विदेशी युवक और युवतियां गर्मियों में धर्मशाला (कांगड़ा) से होते हुए क्वर्सी पास से क्वार्सी के रास्ते भरमौर की यात्रा करते हैं। कभी-कभी मनीमहेश यात्री भी कांगड़ा से क्वार्सी होते हुए भरमौर के रास्ते से मनीमहेश की पैदल यात्रा करते हैं। शायद कोई ऐसा समय आए कि इन स्विट्जरलैण्ड-तुल्य स्थलों पर हैलीकॉप्टर सर्विस आरंभ हो।

यहां पर वन्य-जन्तुओं की भरमार है। ये वन्य-जन्तु आस-पास की पर्वत-शृंखलाओं पर विचरते रहते हैं। यदि कुछ वर्ष शिकार बन्द रखा जाय तो इनकी संख्या और भी बढ़ सकती है। जंगली भेड़ और बकरियों की संख्या धीरे-धीरे शिकार के कारण कम होती जा रही है। तरह-तरह के जंगली पक्षियों की भरमार है।

भरवाली गांव धीरे-धीरे भूक्षरण के कारण नष्ट हो रहा है।

(V) **तुंदाह नाला क्षेत्र**—यह क्षेत्र रावी नदी के दायीं ओर स्थित है। इस क्षेत्र के भद्रम और तुंदा और गवाड़ इत्यादि बड़े गांव हैं। यह क्षेत्र भरमौर के अन्य क्षेत्रों से अधिक पिछड़ा है। मक्की की फसल अच्छी होती है। सारे क्षेत्र में उत्तम चरागाहें हैं। भेड़-बकरी अधिक पाई जाती हैं। चरागाहों के कारण कुछ गुज्जर कुनवे भी अपनी भैंसें चरागाहों में लाते हैं। पर्वत-शृंखलाओं पर जड़ी-बूटियां और धूप अधिक मात्रा में मिलता है।

यहां 'बन्नी' देवी का मन्दिर जिला भर में बहुत प्रसिद्ध है। अतः गर्मियों में यात्रियों का तांता लगा रहता हैं। मार्ग दुर्गम हैं। सभी जगह पगडण्डी के रास्ते चलना पड़ता है। दुर्गट्टी नामक स्थान से मन्दिर तक खच्चर योग्य मार्ग निर्माणाधीन है। इसी क्षेत्र में कालीछो और चोभिया दर्रे हैं जो लाहोल के लिए मार्ग है।

(VI) **बुड्ढल नाला क्षेत्र**—बुड्ढल नाला रावी नदी का सहायक नाला है। खड़ामुख नामक स्थान पर यह नाला रावी नदी से मिलता है। खड़ामुख से रावी नदी सीधी होली क्षेत्र की ओर से आती है। बुड्ढल नाला भरमौर क्षेत्र की ओर से खड़ामुख के पास रावी नदी में मिलता है। बुड्ढल नाला की दायीं ओर सिरड़ पालन, पोलन घरेढ़, चौभिया आदि गांव हैं। सारे का सारा क्षेत्र घास की चरागाहों से ढका है। गांव के आस-पास ढलानदार सीढ़ीनुमा खेत बने हैं। कहीं-कहीं देवदार और कैल के वृक्ष हैं। चोभिया गांव के आस-पास घने वन हैं। इस

क्षेत्र को यातायात की सुविधाएं हेतु जीप योग्य सड़क बनाई जा रही है।

बुड्ढल नाले की बायीं ओर लाहल, खनी, ग्रीमा भरमौर, सेरी, पंजसेई, मकलोथा, संचू, प्रंघाला, हड़सर इत्यादि गांव स्थित हैं। इसी ओर बुड्ढल नाले के तट के साथ चम्बा-खड़ामुख-भरमौर मोटर-सड़क बनी है। यह क्षेत्र समस्त भरमौर का विकसित इलाका है। मक्की की फसल उत्तमता से उगाई जाती है। अन्य फसलों में चणिया, दालें, जौ और गेहूं हैं। अधिकांश स्थानों पर सेब के बगीचे हैं। बादाम के बगीचे का भी परीक्षण किया जा रहा है। इसी घाटी में तहसील का मुख्यालय भरमौर भी है। जहां पर हाईस्कूल, एस० डी० एम० की कचहरी, प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र, तहसीलदार के कार्यालय तथा खण्ड विकास अधिकारी के कार्यालय हैं। यहीं चम्बा राज्य की ब्रह्मपुर नाम से पुरानी राजधानी थी। इसी स्थान को चौरासी सिद्धों की पावन भूमि चौरासी भी कहते हैं। पुराने मन्दिर देखने को मिलते हैं। कांस्य की भव्य मूर्तियां अपनी कला की गाथा सुनाती हैं। इसी क्षेत्र में मनीमहेश की झील और चम्बा-कैलाश पर्वत है। मनीमहेश की झील पर हर वर्ष एक मेला लगता है जिसमें कांगड़ा और भद्रवाह के लोग अपनी श्रद्धा लेकर आते हैं।

(VII) **कुगति क्षेत्र**—बुड्ढल नाले की अन्तिम छोर पर कुगति क्षेत्र हैं जहां केवल दो गांव उपरली और निचली कुगति हैं। यह स्थान दुर्गम क्षेत्रों में से एक है। यहां एक मिडल स्कूल है। केलंग नाम का प्रसिद्ध मन्दिर है जिसकी मान्यता सारे जिले में है। कुगति दर्रे से लाहोल के गोशल गांव में पहुंचते हैं।

इस क्षेत्र में भेड़-बकरियों की चरागाहें हैं।

(VIII) **रणूंकोठी क्षेत्र**—यह क्षेत्र कूरे और छतराढ़ी क्षेत्र के साथ जुड़ा है। सामरा, ज़गती घटोहर तथा उरेई मुख्य गांव हैं। इसी क्षेत्र में शिप्पी (शिल्पी) जाति अपने कलात्मक उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। जगती गांव के शिल्पी लकड़ी पर सुन्दर कारीगरी करते हैं। लकड़ी के बर्तन शिल्प कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यह कला कश्मीर की नक्काशी से कम नहीं। इस कला को प्रोत्साहन न मिलने के कारण यह कला धीरे-धीरे लुप्त प्रायः होती जा रही है।

गिरझार तथा बलैणी धौलाधार से इस क्षेत्र के कांगड़ा जिला के लिए दर्रे हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जैसे कि अन्यत्र लिखा गया है कि भरमौर पुरातत्व चम्बा की राजधानी थी तथा इसे ब्रह्मपुर राज्य कहा जाता था। एक राज्य का रूप धारण करने से पहले भरमौर ही नहीं अपितु भारतवर्ष के अन्य क्षेत्र में भी रणौत और ठकरायण पद्धति थी। रणौत (राणा द्वारा शासन) और ठकरायण पद्धति पहाड़ी प्रदेश में काफी पुरानी हैं तथा काफी देर तक प्रचलित रहीं। चम्बा के अन्य क्षेत्रों में रणौत और ठकरायण पद्धति भरमौर की अपेक्षा काफी देर तक प्रचलित रहीं जबकि भरमौर और इसके आस-पास के क्षेत्र में यह पद्धति भरमौर (ब्रह्मपुर) राज्य की नींव पड़ने पर क्रमशः समाप्त होती रही। इसी प्रकार हिमाचल के अन्य क्षेत्र के विषय में विद्वानों की अपनी-अपनी धारणा है। श्री० जे० वी० लाल ने कांगड़ा बन्दोबस्त के समय टिप्पणी की है कि कांगड़ा की रणौत पद्धति कुल्लु की रणौत पद्धति से अधिक पुरानी है। उन्होंने इसके लिए बैजनाथ की प्रशस्ति के आधार पर अपने विचार प्रकट किए हैं।

रजवाड़े बनने से पूर्व विभिन्न पहाड़ी क्षेत्र राणाओं और ठाकुरों द्वारा शासित सीमित क्षेत्र हुआ करते थे जिनकी सीमाएं नालों, नदियों और पहाड़ों द्वारा सीमित हुआ करती थीं। ये शासक आपस में लड़ते और झगड़ते थे। आंतरिक कलह तो साधारण बात थी। इस काल को पहाड़ी जनता 'आपठाकुरी' के नाम से पुकारती थी। सुरक्षा के लिए किसी ऊंचे टीलों या पर्वत-शृंखला पर एक किला होता था जिसे चम्बा में 'कोट' तथा अन्य क्षेत्र में टप्पा कहा करते थे। ऊंचे स्थान से चारों ओर नजर रखी जाती थी। यदि कोई शत्रु चढ़ाई करे तो उस पर धनुष-वाण (पहाड़ी में कान) से वर्षा की जाती थी। यदि शत्रु घेरा करने में सफल हो जाता था तो परिवार कोट में शरण लेता था। ये कोट पांच या छः-मंजिले होते थे। कोटकी विभिन्न मंजिलों पर छोटे-छोटे छेद होते थे जिनके अन्दर से धनुषवाण छोड़े जाते थे। इन कोटों (छोटे किले) को तोड़ना कठिन काम होता था। यही कोट बाद में राजाओं के कारदारों की भण्डारण कोठियां बनीं और बाद में अधिकांश को गिराकर पंचायत घर बने। जे० बी० लाल ने भी इस प्रथा के अध्ययन में पर्याप्त रुचि दिखाई है। उन्होंने लिखा है—"यह किला किसी ऊंचे स्थान पर

होता था जहां से वे अपने शत्रु के आक्रमण को देख सकें और अपनी सुरक्षा ऊंचे स्थान से पत्थर गिराकर या अन्य ढंग से कर सकें।"

कनिंघम ने रणौत के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि रावी के ऊपरी भाग की रणौत काफी पुरानी है।

रणौत प्रथा से विदित होता है रजवाड़े के बनने से पूर्ण भरमौर क्षेत्र भी राणाओं और ठाकुरों द्वारा शासित था इन राणाओं में रणहूं कोटी, स्वाई, गरौला और उलांस की रणौतें काफी देर तक प्रचलित रहीं। रियासत बनने के बाद इन राणाओं को राजा की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। परन्तु उनका अस्तित्व जागीरें देकर बीसवीं शताब्दी तक कायम रहा। चम्बा में ये जागीरें 1952-53 के भूमि बन्दोबस्त के बाद समाप्त हुईं तथा इन जागीरदारों को मुआवजे दिए गये। रणूंं कोठी की जागीर कतिपय इससे पहले समाप्त हो चुकी थी। भरमौर में रणौत को रणूंं (रन्हूं) की संज्ञा दी जाती थी। भरमौर तहसील का रन्हूं (रणूंं) परगना जूं का तूं रन्हूं कोठी की संज्ञा लिये है। आज भी यह क्षेत्र रन्हूं कहलाता है।

ये कोट अब जीर्ण-शीर्ण होकर खंडहर में बदल गए हैं। कहीं-कहीं इनके अवशेष किसी-न-किसी रूप से दृष्टिगत हैं। चण्हौता (चन्हौता) की कारदार कोठी (अब पंचायतघर) का चबूतरा उस समय का उत्तम नमूना है। उस किले से इस समय की बावली तक एक सुरंग अब भी देखी जा सकती है। कहा जाता है कि यहां भी कोई ठाकुर (पहाड़ी में ठक्कर) राज्य करता था।

ठाकुर, राठी और राणाओं के विषय में विभिन्न विचारकों ने अपनी कलम उठाई है। डॉ० हरमन गटज ने अपनी पुस्तक Early Wooden Temples of Chamba में इन जातियों के विषय में प्रकाश डाला है—"It is true that Thakurs are late-comers, mainly refugees immigrating after the defeat of Prithvi Raj III, Chauhan by the Muslims in 1192 but the Ranas, a much older social class though of unknown origin, as there is no reliable evidence of their Rajput rank before the tenth century..."

लेकिन ठाकुरों के विषय में चम्बा गैजिटियर में इससे भिन्न विचार प्रकट किए गये हैं।

"Thakurs and Rathis are almost certainly of ancient origin and are regarded as indeginous to the hills..." इसी कथन की पुष्टि की गई है कि वे पश्चिम हिमालय के विभिन्न स्थानों में बसे हैं। जम्मू में रावी और झेलम के दरम्यान उन्हें ठाकुर कहते हैं परन्तु कांगड़ा में ठाकुर और राठी।

इसी संदर्भ में गद्दियों के विषय में गैजिटियर ने लिखा है—"Gaddis are a

separate class. The term Gaddi is a generic name, and under it are included, Brahmins, Rajputs, Khatries, Thakurs and Rathis···"

चम्बा गैजिटियर (1904) ने ठाकुरों और राठियों के बारे में फिर पुष्टि की है—"···No tradition exists among them, as among the Gaddies pointing to migration from the plains···in origin They are amalgamation of the castes above and below them."

इसके साथ इसी जाति से सम्बन्धित मियां जाति पर विचार करना भी असंगत नहीं होगा। वास्तव में मियां जाति राणा और ठाकुरों की संगत जाति है जो शासक वर्ग से सम्बन्धित है। मियां शब्द जातिसूचक न होकर उपाधिसूचक है। राणाओं और ठाकुरों के दरबारी औहदे पर आसीन व्यक्तियों को इस उपाधि से विभूषित किया गया। आज यह शब्द जाति सूचक बन गया है। चम्बा गैजिटियर के अध्ययन से इस शब्द की उत्पत्ति स्पष्ट होती है—

"Title Mian was originally borne only by the Scions of the Royal houses of Kangra and Duggar circles and is said to have been given them by one of the Mughal Emperors probably by Jahangir but its precise origin and signification are unknown. It occurs as 'Mie' and copper plate dated A.D. 1613, as one of the Titles of Janardana, son and heir apparent of Raja Balbhadra, younger son of ruling chief, other than the Tika and also brother came to be addressed as Mian Sahib" Page 92

इस विवाद को यह कह कर समाप्त किया जा सकता है कि राणा और ठाकुर पहाड़ों की बहुत पुरानी जातियां हैं जो शताब्दियों तक शासन करती रहीं। उनके गोत्र और वंशावली के अध्ययन से विदित होता है कि वे आर्यवंशी संतानें हैं तथा हूणों, कुषाणों और गूजरों के वंशज नहीं हैं। शासकवर्ग होने के नाते उन्होंने अपने विवाह सम्बन्ध उच्चवर्ग से ही सीमित रखे। लगभग यही प्रथा अब भी प्रचलित है।

रणौत और ठकरायण प्रथा का अंत और रजवाड़ा काल—श्री बी० एल० कपूर ने अपनी पुस्तक "हिमाचल इतिहास और परम्परा" में भरमौर के इतिहास पर टिप्पणी की है कि जहां वंशावली मरु को इस राज्य का संस्थापक मानती हैं वहां इस बात की कहीं भी पुष्टि नहीं होती क्योंकि मरु का कहीं भी शिलालेख या ऐतिहासिक सामग्री में वर्णन नहीं मिलता। उनका कथन है कि मूशवर्मन् दो होंगे एक तो संस्थापक होगा और दूसरा उसका परवर्ती क्योंकि बार-बार मूशवर्मन् का वर्णन मिलता है। यह संभव है कि ऐसा ही हो। दूसरी संभावना

उन्होंने इस बात की प्रकट की है कि यह राज्य-वंश बाहर से भगोड़ा बन कर नहीं आया परन्तु यहीं के शक्तिशाली राणा ने अपने बाहुबल से अपने राज्य को विस्तृत और सशक्त किया ।

डॉ० कपूर ने अपने कथन की पुष्टि के लिए कई संशय प्रस्तुत किए हैं। उनकी उक्त पुस्तक में प्रूफरीडिंग की गलती हुई है, पुस्तक में मरु (Maru) को बार-बार मेरू प्रिंट किया है जिससे पाठक को भी संशय हो जाता है। मरु भरमौर राज्य का संस्थापक माना है न कि मेरु। मरु ब्रह्मपुर का संस्थापक था जबकि मेरु (Meru) ब्रह्मपुर का आठवां राजा था ।

वंशावली और अनुश्रुति के आधार पर विश्वास है कि मरु अयोध्या में कहीं कल्पा का प्रतापी राजा था। वह महान् तपस्वी और सत्य प्रेमी था। वह साधुवृत्ति के व्यक्ति था। बड़ी तपस्या के बाद उनको तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई । उनके नाम इस प्रकार थे—जयस्तंभ, जलस्तंभ और महास्तंभ। मरु ने अपने सबसे बड़े लड़के को कल्पा का राजा बनाया। शेष दो को साथ लेकर यात्रा पर चले। उनमें से कहीं एक को कश्मीर का राजा बनाया। अन्य तीसरे लड़के जयस्तंभ को ब्रह्मपुर का राजा बना कर गद्दी पर बिठाया। स्वयं अपने पूर्वजों की नगरी कल्पा चले गए। बाद में वह साधु बन कर कहीं चले गए, विद्वानों ने मरु के लड़कों पर संदेह प्रकट किया है कि इस प्रकार के अनार्य से नाम क्यों? इसमें आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि मरु के पुत्रों की उत्पत्ति बड़ी तपस्या के बाद हुई थी अतः शायद उत्तम नाम रखना ठीक न समझा हो जैसे कि कई अंधविश्वासों के कारण आज भी लोग अपनी अधिक प्रिय संतान के नाम को उत्तम संज्ञा न देकर कई प्रकार की ऊट-पटांग की संज्ञा देते हैं इसी प्रकार वंशावली में जयस्तंभ जलस्तंभ और महास्तंभ के अतिरिक्त अन्य राजाओं की इतिहास शृंखला प्रस्तुत हुई है जो इस प्रकार है—आदिवर्मन्, देववर्मन्, कांतारा, प्रगल्भ, अजयवर्मन्, मेरुवर्मन् इत्यादि। वंशावली में अजय वर्मन् को मेरुवर्मन् (आठवां राजा) के पहले माना है जब कि शिलालेखों में अंकित इतिहास के अनुसार अजय वर्मन्, मेरु वर्मन् के बाद हुए हैं ।

मेरु वर्मन् के समय मूर्तियों पर खुदे शिलालेखों ने इतिहास के पन्ने खोल दिए हैं। इन शिलालेखों के अनुसार मेरुवर्मन् के पिता देववर्मन् थे। बल वर्मन् दादा और आदित्य वर्मन महा-पितामह थे। इन राजाओं की कालगणना विद्वानों ने इस प्रकार की है—

मरु (550 ई०)
आदित्यवर्मन् (620 ई०)—कहीं-कहीं आदि वर्मन्
बलवर्मन् (640 ई०)
देववर्मन् (660 ई०)

मेरु वर्मन (680 ई०)

जैसे कि ऊपर कहा गया है कि मरु ने लगभग 550 ई० के आसपास ब्रह्मपुर राज्य की नींव डाली। स्थानीय जनश्रुति है कि ब्रह्मपुर का ब्रह्माणी देवी के नाम पर पड़ा। इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसा हुआ हो। देवी ब्रह्माणी का मन्दिर जीर्ण-शीर्ण दशा में भरमौर से लगभग दो मील के फासले पर पहाड़ की तराई में है। इस मन्दिर में विशेष पुरातन मूर्ति कोई नहीं है। केवल पत्थर की साधारण मूर्तियां रखी हैं। इस देवी की काफी बड़ी मान्यता है। मनीमहेश की यात्रा समाप्त होने पर यहां यात्रा का आयोजन होता है जिसे ब्रह्माणी की यात्रा कहा जाता है। मनीमहेश जाने वाले यात्री पहले ब्रह्माणी देवी के कुंड में स्नान करते हैं। जो लोग ऊपर नहीं पहुंच सकते वे उस कुंड से बहते पानी में भरमौर के पास ही सड़क के किनारे सचूं में नहा लेते हैं।

ह्यू्न सांग नामक चीनी यात्री भारतवर्ष में सन् 630 से 688 ई० तक भारत की यात्रा पर रहे। इनके स्मृतिग्रंथ में भी ब्रह्मपुर का वर्णन हुआ है। इनके अनुसार यह विस्तृत साम्राज्य हरिद्वार के समीप मतिपुर से 300 ली दूर था। विद्वानों ने 300 ली की गणना पचास या साठ मील की है जिसने इतिहासकारों को संदेह में डाल दिया है कि यह वर्तमान ब्रह्मपुर नहीं हो सकता। दूसरी ओर यह विस्तृत साम्राज्य 4000 ली में फैला बताया है। विद्वानों को यह भी असंभव मालूम होता है। परन्तु दूसरी ओर ह्यू्न सांग ने इसे पहाड़ों से घिरा बताया है तथा पड़ोसी देश कुल्लू, जालंधर, टक्क (या टाकी देश) बताए हैं जो हर दशा में, ब्रह्मपुर (चम्बा राज्य) के पड़ोसी देश थे। उस समय कांगड़ा जालंधर में शामिल था। आर्ट ऑफ हिमाचल प्रदेश की पृष्ठ संख्या 136 पर मसरूर को जालंधर की राजधानी सम्भावित की है। आज भी गद्दी लोग कांगड़ा और इसके आस-पास के तलहटी क्षेत्रों को 'जालंधर' की संज्ञा देते हैं। जो संभवतः जालंधर का अपभ्रंश हो। साथ ही कुछ विद्वानों ने इस पर भी संदेह प्रकट किया है कि शायद ह्यू्न सांग को किसी राजा ने अपनी महत्ता प्रकट करने के लिए इतना फासला बताया हो। ह्यू्न सांग को भी विस्तार और फासले सम्बन्धी गलती लग सकती थी क्योंकि उस समय का इतना विस्तृत राज्य खोजने में विद्वानों ने असमर्थता प्रकट की है। कनिंघम ने कुमाऊं में दो ताम्र लेखों के आधार पर ही कुमाऊं में ब्रह्मपुर होने की संभावना प्रकट की परन्तु अन्य विद्वानों ने इतने छोटे क्षेत्र को ब्रह्मपुर मानने से इनकार कर दिया है साथ ही वहां कोई विशेष पुरातत्त्व अवशेष नहीं मिले हैं। Dr. Herman Goetz ने भी इस पर अपने विचार प्रकट किए हैं। उन्होंने गुरजार राज्य पर टिप्पणी की है। उनके अनुसार मध्य पंजाब, रावी का पश्चिमी भाग गुज्जर राज्य था जिसकी राजधानी टक्का (ताकि देश) थी। दूसरी ओर थानेश्वर राज्य का वर्णन हुआ है और संभावना प्रकट की है कि शायद उस समय चम्बा का

ब्रह्मपुर राज्य थानेश्वर (कन्नौज) के अधीन रहा हो और स्वतंत्र राज्य न हो। चाहे जो हो परन्तु विवाद तो ह्यू्न सांग के ब्रह्मपुर राज्य से है। उस समय एक ओर जालंधर दूसरी ओर कुल्लूत, तीसरी ओर ताकि देश, चौथी ओर स्वर्ण भू (ब्रह्मपुर के उत्तर में)जिसे विद्वानों ने तिब्बत में माना है और निस्संदेह यह स्वर्ण भू रही होगी क्यों चन्द्रभागा नदी में अब भी सोना मिलता है। स्थानीय लोग रेत को छान-छान कर सोना निकालते हैं। लाहोला में अब भी इस सोने के बने आभूषण देखे जा सकते हैं। एक ओर तिब्बत में उस समय सोङ्चन गोम्पों का राज्य काफी विस्तार पर पहुंचा था। काश्मीर के ललितदित्य मुक्तपीड़ का राज्य विस्तार भारत में अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा था। उन्होंने पंजाब, कन्नौज, दरदिस्तां तथा काबुल को अपने अधीन कर लिया था। परन्तु यह घटना ह्यू्न सांग के बाद की है, क्योंकि ललितदित्य मुल्कपीड़ का शासनकाल 724 A. D. से आरंभ होता है।

इस तर्क पर कि अब तक चम्बा के ब्रह्मपुर के अतिरिक्त कहीं अन्य स्थान पर पुरातत्वावशेष प्राप्त नहीं हुए हैं चम्बा गैजिटियर इस निष्कर्ष पर पहुंचा है—

"······Naturally we should infer that this must have been Brahampur (Bharmour) in Chamba, situated in tne very heart and in the best defensible valley of the state···" (page 98)

अन्य ऐतिहासिक प्रमाण मिले हैं जिससे प्रमाणित होता है कि सातवीं शताब्दी में जब ह्यू्न सांग भारत में आया उस समय ब्रह्मपुर का राज्य विस्तार एक ओर कुल्लू तक हो चुका था और दूसरी ओर रावी नदी के साथ-साथ छतराढ़ी और गूं तक हुआ था अतः ब्रह्मपुर अब छोटा-सा राज्य नहीं रह गया था। कुछ प्रमाण तो यहां तक पहुंचे हैं कि शायद कुलूत देश भी कुछ समय तक चम्बा के अधीन रहा हो। इस तथ्य का वर्णन इसी लेख में किया जा रहा है।

कहीं ऐसा वर्णन है कि कुल्लू के राजा जारेश्वर ने 650 ई० के लगभग अपने खोए राज्य कुलूत को पुनर्जीवित कर प्राप्त किया। इससे स्पष्ट है कि कुछ समय तक कुलूत चम्बा के अधीन रहा हो। चम्बा गैजिटियर के अनुसार—

"That Kullu thereafter formed part of the kingdom, appears from Baishakhdatta's Drama, Mudra Rakshas, in which the king of Kullu (Kulluta) is called Chittra Verman, no such king is otherwise known to us, and the name may be imaginary but its suffix Verman indicates that he was a Brahampura feuditory and not an independent prince." (page 104)

कुल्लू की ऐतिहासिक श्रृंखला में वर्णन मिलता है कि कुल्लू के राजा दातेश्वर पाल के समय चम्बा के राजा उमेर (सम्भवतः मेरू) ने आक्रमण किया जिससे

कुल्लू के राजा मारे गए। दूसरे कुल्लू नोट के अनुसार कुल्लू के नरेश अमरपाल चम्बा (ब्रह्मपुर) के राजा द्वारा अपने एक पुत्र को छोड़ अन्य सभी के साथ मारे गए। यह बच्चा शीतल पाल राजा बुशहर के पास आजीवन कैद रहा। शीतल पाल के बाद पांच पीढ़ियों तक गैप मिलता है। जिसका अर्थ हुआ कि इन पांच पीढ़ियों तक सम्भवत: कुल्लू राजा चम्बा (ब्रह्मपुर) के अधीन रहा हो। इसकी पुष्टि हारकोर्ट द्वारा लिखित पुस्तक कुल्लू-लाहौल और स्पीति के पृष्ठ 113-114 पर हुई है।

कुल्लू के साथ चम्बा का सम्पर्क केवल लाहौल और रोहटांग द्वारा ही सम्भव है। अतः स्पीति के राजा के साथ ब्रह्मपुर नरेश के सम्पर्क सौहार्दपूर्ण रहे होंगे। कहीं ऐसा भी वर्णन मिलता है कि कुल्लू पर आक्रमण राजा स्पीति की सहायता से हुए। अतः निर्विवाद है कि सातवीं शताब्दी तक ब्रह्मपुर राज्य का विस्तार कुल्लू राज्य तक हो गया था।

मेरु वर्मन् एक अच्छा योधा ही नहीं परन्तु कला पारखी भी था। उसने अपने राज्य काल में भरमौर में बहुत से मन्दिरों का निर्माण ही नहीं किया अपितु उनमें कांस्य की भव्य और सुन्दर मूर्तियों की स्थापना भी की जो आज तक उस समय की बोलती तसवीरें हैं। नन्दी, गणेश और महिषासुर मर्दिनी (लक्षणा) की कांस्य की मूर्तियों पर शिलालेखों द्वारा मेरुवर्मन् का वर्णन हुआ है जिसका विस्तार से वर्णन इसी पुस्तक में अन्यत्र किया जायेगा। मेरुवर्मन् के समय ही छतराढ़ी में शक्ति की मूर्ति का निर्माण हुआ। उधर गुआं में भी भव्य मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण हुआ। भरमौर में मनीमहेश के मन्दिर की स्थापना भी हुई। इस प्रकार इतिहास साक्षी है कि मेरु वर्मन् कलापोषक भी थे।

मेरु वर्मन् के बाद कुछ राजाओं का वर्णन हुआ है परन्तु उनके विषय में कोई विशेष घटनाएं नहीं जुड़ी हैं। ये राजा मंदार वर्मन्, कतार वर्मन्, और प्रगल्भ वर्मन् हैं। इसके बाद के राजाओं की सूची इस प्रकार है—

अजयवर्मन् (760 ई०)
स्वर्णवर्मन् (780 ई०)
लक्ष्मीवर्मन् (800 ई०)
मूशनवर्मन् (820 ई०)

मूशवर्मन् के बाद अन्य राजाओं के नाम केवल मात्र हैं-- हंस वर्मन्, सार वर्मन्, सेनवर्मन् और सुजान वर्मन्।

साहिलवर्मन् (920 ई०)

अजयवर्मन्—विभिन्न स्थानों पर विवरण प्राप्त हुआ है जिसके आधार पर इस पुस्तक में प्रसंग दिया गया है कि इस राजा के समय भरमौर के गद्दी ब्राह्मण दिल्ली से भरमौर आए।

स्वर्ण वर्मन्—राजा स्वर्ण वर्मन् के समकालीन कुलूत नरेश नारद पाल के समय का चम्बा-कुल्लू विवरण मिलता है। उस समय ब्रह्मपुर की सेना के क्षीण होने का पता चलता है।

लक्ष्मी वर्मन्—भरमौर जनश्रुति है कि राजा लक्ष्मी वर्मन् के समय भरमौर में माहमारी पड़ी जिसके कारण यहां काफी लोग काल-कवलित हुए जिसका लाभ उठाकर एक अज्ञात जाति किर (कीर भी) ने भरमौर पर आक्रमण कर दिया जिसके कारण भरमौर की बहुत-सी मूर्तियां क्षतिग्रस्त हुईं। यहां तक कि राजा लक्ष्मी वर्मन् भी इस विप्लप में मारे गए। उनकी रानी गर्भवती थी अतः वंश की रक्षा के लिए उनको बचाना जरूरी था। फलतः दरबारियों ने वफादारी का प्रमाण दिया। वे रानी को पालकी में डालकर राज्य के बाहर ले जाने को दौड़ पड़े। वे होली की ओर चले। रास्ते में त्रेठा परगना के घड़ाव गांव के पास रानी ने थोड़ी देर के लिए एकांत में आराम करना चाहा। अतः वह एक गुफा में जाकर बच्चे को जन्म देकर वहीं छोड़ आई और स्वयं पालकी में बैठ गई। कुछ दूरी पर पालकी के हल्के होने पर दरबारियों को आशंका हुई अतः रानी से बच्चे के विषय में पूछताछ की। जब दरबारी वापस दौड़े तो उन्होंने बच्चे को चूहों द्वारा ढका और सुरक्षित पाया। वे उसे वहां से उठाकर ले आए जहां उस बच्चे का जन्म हुआ था। आज भी उस गुफा को लोग 'सूरज पक्खा' कहते हैं। राजा सूर्यवंशी थे अतः उस गुफा का नाम सूरज पक्खा पड़ा।

अहलकारी रानी को कांगड़ा में कहीं ब्राह्मण के घर छोड़ आए। जिस ब्राह्मण को रानी ने गुरु माना, ब्राह्मण को यह नहीं बताया था कि वे राजघराने से संबंध रखते हैं। एक दिन कहा जाता है कि बच्चे के पांव आटे पर पड़े। ब्राह्मण पैरों की छाप देखकर आश्चर्यचकित हुआ कि वह बच्चा तो किसी राजघराने से सम्बन्धित था। इस पर रानी ने सारी घटना ब्राह्मण को सुना दी। ब्राह्मण ने उनकी सुरक्षा के प्रबन्ध कर राजा सुकेत के पास भेज दिया। राजा ने उसका पालन-पोषण कर बड़ा किया तथा उसको अपनी लड़की ब्याह दी। साथ ही दहेज में पांगने का परगना दिया। धन-धान्य से उसकी सहायता की। राजा सुकेत की सहायता से रोहटांग के मार्ग से होकर अपने राज्य को पुनः प्राप्त किया। अब उन्होंने मूशन वर्मन् नाम से ब्रह्मपुर पर राज्य किया। अपनी राजाज्ञा से चूहों को न मारने का हुक्म दिया।

इस राजा का राज्यकाल 820 ई० बताया गया है जबकि मेरु वर्मन् का राज्य काल 680 ई० के समीप बताया है। मेरु के समय के शिलालेखों में मूशन वर्मन् का वर्णन मिलता है जिससे विद्वानों को संदेह होना स्वाभाविक है। अतः विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ब्रह्मपुर का संस्थापकक राजा मूशन् वर्मन् था और मरु

एक श्रद्धा के अनुसार कल्पित संस्थापक पुरुष था। 820 ई० का मूशन वर्मन् द्वितीय मूशन वर्मन् था। यह न्यायसंगत बात भी है। डॉ० बी० एल० कपूर ने भी इस संदेह पर अपनी पुस्तक 'हिमाचल—इतिहास और परम्परा' में सांगोपांग न्याय-संगत विवेचन किया है।

अब किर (कीर) जाति पर विवाद खड़ा होता है कि यह जाति कौन थी जिसने राज्य की नींव उखाड़ फेंकी, मूर्तियां क्षतिग्रस्त और तोड़-फोड़ डालीं। इसके विषय में राहुल जी लिखते हैं कि वे किरात थे। उन्होंने इस समय की इस प्रदेश में अधिकांश जातियों को किरात की संज्ञा दी है। उनका विचार है कि चम्बा लाहौल से आसाम तक बसी यह अनार्य जाति किरात है। आजकल जिस जाति को मौन खमेर कहा है उसका सम्बन्ध भी किरात से बताया है। अन्य विद्वानों ने उसे कश्मीर की एक खूंखवार जाति कहा है। कुछ विद्वान् उनको तिब्बती जाति बताते हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि किर एक शक्तिशाली जाति थी जो शासक वर्ग में गिनी जाती है।

एक ऐतिहासिक घटना के अनुसार बंगाल के राजा धर्मपाल ने कन्नौज नरेश इन्द्रयुद्ध को लड़ाई में हराकर उसके स्थान पर चक्रयुद्ध को गद्दी पर बिठाया। इस उपलक्ष्य में धर्मपाल ने विजयश्री मनाई तथा एक बड़े दरबार का आयोजन किया। इस दरबार में भारत के तत्कालीन प्रसिद्ध राजाओं ने भाग लिया। वे राजा मत्स्य, मदिरा, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति, गांधार और कीर थे। राजा धर्मपाल का राज्य 770 ई० से 810 ई० तक रहा।

बैजनाथ मन्दिर की प्रशस्ति में भी कीरों का वर्णन है तथा बैजनाथ का पुराना नाम 'किरग्राम' है।

भरमौर में प्रचलित आम कहावत घर-घर में और हर एक छोटे-बड़े में प्रचलित है—'कीरा री खेती'—अर्थात् कीर लोग खेती तो करते थे परन्तु उन्हें खेती करने का अच्छा ढंग नहीं आता था।

'कीरा री खेती' व्यंग्य से विदित होता है कि कीर भरमौर के आसपास बसने वाली जाति थी जो खेती करने का पिछड़ा ढंग अपनाते थे।

लक्ष्मण वर्मन् पर सुअवसर पाकर एकदम आक्रमण करना भी ऐसा ही विदित होता है कि यह जाति गद्दी जाति के आसपास पहाड़ों और पर्वतों पर पहले से ही गूजरों की तरह अवस्थित और अधिकतर कश्मीर में बसी होगी।

बैजनाथ का 'किरग्राम' नाम भी इसी तथ्य को पुष्ट करता है।

धर्मपाल के दरबार में उन्होंने एक राजा की भांति भाग लिया है। अतः वे अपने राजा के अधीन एक राज्यसत्ता में पिरोए थे। वे भले ही बाद में धीरे-धीरे अन्य स्थानों पर चले गए हों या काल की चपेट में आकर आर्य जाति के प्रभाव में

उन्हीं में लुप्तप्राय हो गए हों। राजा साहिल वर्मन् को भी उनसे लड़ना पड़ा था अतः उनका अधिक केन्द्र कश्मीर के आसपास ही होगा। क्योंकि साहिल वर्मन् के चम्बा के आसपास उनसे लड़ना पड़ा।

राजा साहिल वर्मन् —राजा साहिल वर्मन् भी ब्रह्मपुर का शक्तिशाली राजा था। उसके समय की घटना है कि साहिल वर्मन् काफी समय तक निस्संतान था। उसने संतान प्राप्ति के लिए पर्याप्त तपस्या की। सौभाग्य से चौरासी सिद्धों ने उसके घर दस पुत्र होने की भविष्यवाणी की। कहा जाता है कि राजा ने भविष्य-वाणी सत्य प्रमाणित होने तक चौरासी सिद्धों को भरमौर में ही ठहरने के लिए विवश किया। अतः यह चौरासी सिद्धों की पावन भूमि बनी। तब से भरमौर विशेष को 'चौरासी' के नाम से पुकारने लगे। राजा के दस पुत्र हुए और एक लड़की हुई जिसका नाम चम्पा था। चम्पा के नाम पर ही बाद में साहिल वर्मन् ने ब्रह्मपुर से विदा होकर 'चम्बा' राजधानी बसाई।

राजा साहिल वर्मन् वीर और योद्धा था। इसने राज्य का विस्तार रावी नदी के निचले भाग की ओर चम्बा नगर के आसपास तक किया तथा धौलाधार के उस पार बीड़ भगांहल तक अपनी सीमा का विस्तार किया। उन्होंने चम्बा नगर बसाने पर कीराओं को लड़ाई में पराजित किया। कहा जाता है कि कीरों ने राजा साहिल वर्मन् के साथ भी युद्ध किया। राजा साहिल वर्मन् का युद्ध कांगड़ा के राजा से भी हुआ जिसके परिणामस्वरूप धौलाधार की तलहटी का भाग चम्बा के अधीन हुआ। राजा साहिल वर्मन् का युद्ध एक मुसलमान आक्रामक जाति तुर्कश से भी हुआ जिसमें तुर्कश को पराजय का मुंह देखना पड़ा।

राजा साहिल वर्मन् के समय कुल्लू राजा से भी युद्ध की घटनाओं का वर्णन मिलता है। एक वर्णन के अनुसार रोहतांग को लांघकर राहला के समीप उस समय मनकोट किले का निर्माण हुआ। लम्बे अर्से के बाद कुल्लू और चम्बा में शांति स्थापित हुई। कुल्लू की सेना ने फिर भी कूटनीति से काम लेना चाहा। उन्होंने ब्रह्मपुर की सेना को दावत दी और दावत का समय रात को रखा। व्यास नदी पर लांघने के लिए घास-फूस से ढका पुल बनाया। जब चम्बा की सेना दावत पर जा रही थी काफी अंधेरा हो चुका था। एक-एक कर काफी सेना व्यास नदी में गिर पड़ी। भेद उस समय खुला जब एक व्यक्ति ढोल लिये था और पुल पार करते समय नदी में गिर पड़ा। ढोल की आवाज आने पर भेद खुला और अन्य सेनानी सतर्क हुए। इस प्रकार काफी सेना नष्ट हुई।

एक अन्य अनुश्रुति है कि चम्बा की सेनाओं ने गद्दीपद्धर के किले को घेरा। राणा मनाली की सेना किले में काफी देर तक घिरी रही। चम्बा की सेना घेरा नहीं उठाती थी अतः मनाली के राणा की सेनाओं ने एक युक्ति से काम लेना चाहा। उन्होंने किले में एक कुत्ती को दूहा। दूध में चावल मिलाए और भरमौर की सेना पर फेंके। इससे ब्रह्मपुर की सेना को आश्चर्य हुआ कि किले में काफी भोजन सामग्री पड़ी है अतः घेरा उठा लिया गया।

राजा साहिल वर्मन् ने राजपाठ अपने लड़के युगाकार को सौंपा। वह स्वयं वापस भरमौर आकर साधुवेश में रहने लगा तथा शांति से जीवन-यापन करने के बाद स्वर्ग सिधारा।

प्रवासी जीवन की झांकी

गद्दी जनजातीय लोग अर्द्ध घुमंतु (Seminomads) हैं। गर्मी के मौसम में ये लोग अपनी भेड़-बकरियों को ऊंची-ऊंची पर्वत-श्रृंखलाओं पर चरागाह की तलाश में ले जाते हैं। भेड़-बकरियों के साथ केवल पाहल (चरवाहे) जाते हैं। अन्य लोग अपने डंगर को घर पर चराते हैं तथा खेती-बाड़ी और अन्य व्यवसायों के साथ मजदूरी भी करते हैं। पुहाल जब कभी एक-दो दिन घर आते हैं तो घर की हर सुख-सुविधा का एक-दो दिन में ही आनन्द उठाकर वापस चरागाहों को जाते हैं। वे जब घर आते हैं तो सगे-सम्बन्धियों से आनन्द से मिलते हैं। सगे-सम्बन्धी उनके खान-पान की पूरी सुविधा का ध्यान रखते हैं। जनजातीय लोगों में आमतौर पर सुरा और मदिरा की आदत होती है अतः रात और दिन मदिरा-सुन्दरी का दौर



एक गद्दी परिवार

चलता रहता है। सुरा-सुन्दरी की मस्ती में गाना-बजाना भी चला रहता है। गर्मियों में सारा गदेरन जनपद (गद्दी क्षेत्र) एक जीवन-स्पंदन में गूंजता है।

समस्त जन-जातीय जनता खेती-बाड़ी में भी जुटी रहती। उनके खेत और खलिहान धन और धान्य से भरे नजर आने लगते हैं।

जब सितम्बर मास आरम्भ होता है तो लोग अपनी फसल-बाड़ी को इकट्ठी करना आरम्भ करता है। उस समय तो कच्ची और पक्की फसल का ध्यान ही नहीं रखा जाता। फसल को इकट्ठा करने के बाद 'जांधर' जो जाना होता है अतः प्रतीक्षा की बात ही नहीं। केवल यही तो महीना होता है जिसमें खेत से सारी फसल एकत्रित करनी होती है।

फसल इकट्ठी होने पर उसे खलिहानों में रौंदकर और दाने निकालकर संभालने होते हैं। क्योंकि परिवार चला जो जाएगा इसलिए उसके भण्डारण की समस्या भी प्रायः हुआ करती है। सभी के पास इतने पर्याप्त सन्दूक तो नहीं कि अन्न का भण्डारण जांधर से वापसी तक कर सकें। काफी दाने चूहों द्वारा नष्ट किए जाते हैं। भण्डारण की समस्या के कारण कुछ लोग दानों को उसी समय सस्ते दामों पर बेचकर रास्ते में होने वाले व्यय को पूरा कर लेते हैं।

उधर भेड़पालक अपनी भेड़ों को लाहौल की दुर्गम घाटी तक चराने के लिए ले जाते हैं। अब वे भी वापस होते हैं।

अक्तूबर मास में जांधर के लिए प्रस्थान आरम्भ हो जाता है। जांधर जाने वाले परिवार अपने बाल-बच्चों और सामान और कभी-कभी माल-मवेशी के साथ चल पड़ते हैं। जाने से पहले वे अपने सगे-सम्बन्धियों से गले मिलते हैं और आंसू बहाते हैं। उस समय जब आने-जाने के साधन सुगम नहीं थे। लोग अपने-अपने बोझ को उठाकर दर्रे के कठिनतम मार्ग को कई दिनों में तय करते हैं। कुछ लोग यात्रा की कठिन परिस्थितियों में दम तोड़ दिया करते थे। चन्हौता और क्वार्सी क्षेत्र के लोग धौलाधार के क्वार्सी दर्रे से होकर धर्मशाला, भागसू और खनिहार पहुंचते थे। यदि ईश्वर न करे, रास्ते में मौसम खराब हो जाये तो बहुतों को मार्ग में ही काल-कवलित होना पड़ता था। उस समय सगा भाई अपनी सगी बहन को बिलखते छोड़ जाता था यानी कि इन दुर्गम स्थानों को पार करना कोई आसान नहीं। मौसम की खराबी पर अपना आप संभालना भी कठिन हो जाता है। ऐसे मौके पर एक-दूसरे की सहायता करना कठिन होता है। बाल-बच्चों के साथ इतने कठिन मार्ग को तय कर और गंतव्य-स्थान पर पहुंचना एक दूसरा जन्म लेने के तुल्य था।

होली क्षेत्र के लोग जालसु दर्रा से बैजनाथ पहुंचते थे। कूरा, छत्राढ़ी और रन्हू कोठी क्षेत्र की जनजातीय जनता घप्रोहर, गिरझार और बलेणी दर्रे (जोत) से होकर शाहपुर और रिहलू के इलाकों में पहुंचते थे। जालसू जोत (दर्रा) से उस समय और अब भी भेड़ों को और अन्य मवेशियों को ले जाते हैं परन्तु अन्य जोतों से भेड़-बकरियों को छोड़ अन्य मवेशियों को ले जाना असम्भव था अतः मवेशियों

को साथ रखने वाले लोग सड़क के मार्ग से कई दिन के बाद जांधर पहुंचते थे। कारवां के बाद कारवां चलता जाता था मानो भरमौर की क्रूर प्रकृति के प्रहार से वे लोग भयभीत होते थे। इसीलिए तो भरमौर की कठिन भौगोलिक भू को कइयों ने सदा के लिए छोड़ दिया तथा कांगड़ा की पहाड़ी भूमि में धौलाधार के साथ-साथ अपना बसेरा बना लिया।

भरमौर के क्रूर प्रहारों से डरकर लोग जीवन-यापन करने मैदानी क्षेत्र में जाते थे परन्तु वहां भी जीवन निश्चित नहीं होता था। बाल-बच्चों और बूढ़े लोगों को घर-घर की ठोकरें खानी पड़तीं। पेट भरने के लिए औरतों को दिन-भर धान कूटने पड़ते तथा पुरुष मजदूरी कर पेट पालते। इन सब परिस्थितियों को देखकर कुछ लोगों ने वहीं भूमि खरीदकर बसेरे बना लिये।

अब गद्दी जाति का एक वर्ग तो क्रूर प्रकृति के थपेड़ों से तंग आकर सदा के लिए वहीं बस गया है। उसने गदेरन वापस आने का नाम तक न लिया। लेकिन दूसरा वर्ग वहां भी अपना दूसरा घर बना आया। अत: सर्दियों में वहां और गर्मियों में गदेरन रहने लगा। तीसरा वर्ग उसी क्रम में भटकता रहा। चौथे वर्ग ने भरमौर में ही रहना श्रेयस्कर समझा। न आना और न जाना। लेकिन जब सर्दी अधिक कड़ाके की पड़ती है और प्रकृति के प्रकोप को सह नहीं सकता तो सोचता है सर्दियों में जांधर जाना ही श्रेयस्कर है। पांचवां वर्ग दाल में नमक के बराबर भी नहीं है। उसने अपने आपको सम्पन्न बना लिया है। वह प्रकृति के प्रकोप को भी सह सकता है।

अब जब मैदानी भाग में भी बेकारी ही बेकारी है। धान के लिए मशीनें लग गई हैं। लकड़ी आरों पर चीरी जाती है। ढुलान ट्रकों पर होता है तो अधिकांश लोग यहीं सड़क की मजदूरी कर पेट भर लेते हैं। प्रवास कम होने लगा है परन्तु 80 प्रतिशत जनता अब भी प्रवास पर ही जाती है।

आधुनिक सुविधाएं—स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आधुनिक वैज्ञानिक सुविधाएं उपलब्ध हुई हैं। यातायात के साधनों ने काफी उन्नति की है जिससे प्रवासी जीवन में काफी सुविधाएं प्राप्त हुई हैं। उस समय जब सारी यात्रा पैदल करनी पड़ती थी और वह भी कठिन और दुर्गम दर्रों के द्वारा अब इस प्रकार की कठिन यात्रा को तिलांजलि दी गई है। आज इनके माध्यम से भी यातायात होता है परन्तु थोड़ी संख्या में। अत्यधिक गरीब लोग मोटर की सुविधा का लाभ उटाने में असमर्थ होते हैं क्योंकि पूरे परिवार का किराया वहन करना उनके बलबूते का काम नहीं। दूसरे वे लोग दर्रों का सहारा लेते हैं जिन्होंने अपनी भेड़-बकरियों के रेवड़ के साथ जाना होता है तीसरी प्रकार के वे लोग हैं जो अभी तक यातायात के साधनों से वंचित हैं जैसे कि होली क्षेत्र में उर्णा, धारड़ी, ग्राउंडा और खनार गांव के लोग जो अत्यंत अंदरूनी भाग में होने के कारण अभी आधुनिक

यातायात से पूर्णतया वंचित हैं। वे लोग जोत (पर्वतीय दर्रा) के रास्ते बैजनाथ के क्षेत्र में पहुंचते हैं। चौथी श्रेणी में वे सभी जनजातीय लोग आते हैं जो अपने डंगर (मवेशी-गाय-बैल-भैंस) अपने साथ ही मैदानी भागों को कई असुविधाओं के कारण ले जाते हैं। ऐसे लोगों की संख्या रन्हूं कोठी क्षेत्र कूर, छतराड़ी और पियूहर के लोगों की है जो अपने ढोरों के साथ पैदल चलते हैं तथा दस या बारह दिन की पैदल यात्रा उनके लिए कोई कम नहीं। रण्हूं कोठी (रन्हूं) और कूर क्षेत्र के लोग तो भैंसें भी पालते हैं। उनकी यह यात्रा तो किसी भी तरह कम नहीं की जा सकती।

जो लोग सब झंझटों से परे हैं, मोटर की सुविधा का लाभ उठाते हैं। उनके लिए जहां बस सेवा सीधी कांगड़ा क्षेत्र से जुड़ी है काफी सुविधाजनक है। अन्य परिवहन चम्बा में बदलने पड़ते हैं जो असुविधाजनक हैं। परिवहन की सुविधा ने प्रवासी जनता को काफी राहत दी है।

गदेरनवापसी—चेत मास के शुरू होने पर ये जन-जातीय लोग अपने घर वापसी की सोचने लगते हैं। एक तो बेघर जीवन की कठिनाइयां, गर्मी का आरंभ और गदेरन में पीछे छोड़े घर की याद। कुछ रक्षक के रूप में घर पर तैनात सगे-सम्बन्धी की स्मृति इसी प्रकार की प्रवासी समस्याएं उनके मानस-पटल को विचलित कर देती हैं। बसो (वैशाखी) जो गदेरन क्षेत्र का विशेष सांस्कृतिक पर्व है, उसे याद आना भी तो स्वाभाविक है। सारा परिवार मिलकर इस पर्व का आनंद लेगा इसलिए वापसी के दिन याद आने लगते हैं अतः चैत्र मास के अन्त में वापसी का तांता भी इसी प्रकार आरंभ हो जाता है। अब वापसी में उसी प्रकार के कारवां चलने आरंभ होते हैं। यही सिलसिला सदियों से देखने में आ रहा है।

प्रवासी जीवन की समस्याएं और समाधान—प्रवासी जीवन की हजारों समस्याएं हैं जिनका सांगों-पांग वर्णन हो चुका है। इसके समाधान पर विचार किया जा सकता है।

मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता रोटी और कपड़ा है। अन्य सारी आवश्यकताएं इनके साथ ओत-प्रोत हैं। पानी और ब्यार की भरमौर में विपुलता है। ठंडा पानी मोल नहीं बिकता हवा ईश्वर ने प्रदान की है। यदि पेट भर भोजन मिल जाय और कपड़ा तन ढांपने को हो तो प्राकृतिक विपदाओं का सामना भी सुविधा से किया जा सकता है। ये सभी धनाभाव के कारण ही तो है। यदि निर्धन जनता के मकान भी तिमंजले हों और तन ढांपने और रात को ओढ़ने के लिए खूब कपड़े हों, अन्न से भंडार भरे हों, पशुओं के लिए खूब चारा हो तो सर्दियों में घर छोड़ने की क्या आवश्यकता। "पराधीन सपने सुख नाहीं"—अक्सर आम जनता को जांधर जा कर भी तो दूसरों का मुंह ताकना पड़ता है। कितने से लोग हैं जिनके अपने निवास स्थान कांगड़ा या अन्य मैदानी क्षेत्र में हैं। केवल साधन सम्पन्न मुट्ठी-

भर लोग ही तो ऐसे हैं जिनको यह सुविधा उपलब्ध हो गई। अन्य साधारण जनता के पास तो यह सुविधा उपलब्ध नहीं। जिनके दोनों स्थानों पर आवास हैं वे भरमौर को इसलिए नहीं छोड़ते कि गर्मियों में उनके रेवड़ भरमौर चराह की खोज में आ जाते हैं। अन्य कुछ लोग ऐसे भी तो होंगे जो गर्मी सहन नहीं कर सकते अतः दोनों ओर सुविधाजनक हैं परन्तु अधिकांश जनता धनाभाव के कारण रोजगार की खोज के लिए अपने घरों को छोड़ते हैं। अब जब कि कुछ रोजगार सड़क के काम के कारण मिलने लगे हैं प्रवास का बोझ कुछ कम होता नजर आता है। यदि उद्योग धंधे की सुविधा मिल जाय और लोग साधन सम्पन्न हो जाएं तो प्रवास (Migration) की समस्या तुरंत हल हो सकती है।



धारड़ी गांव (भरमौर) का एक गद्दी परिवार

लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं—

1. भेड़पालन पेशा सदियों से आ रहा है जिसे सुधारा जा सकता है। इसके लिए चरागाह की सुविधाओं के विषय में सोचना अनिवार्य है। भेड़ की नस्ल को सुधारा जा सकता है।

2. खेती की सुविधा के लिए सिंचाई की सुविधा होना अनिवार्य है।

3. सेब और बादाम की बागवानी को विकसित किया जा सकता है।

उपरोक्त तीन समस्याओं के विषय में सरकार पहले से ही अग्रसर है केवल इस पर हुए काम का सर्वेक्षण कर इसे आगे बढ़ाया जा सकता है।

4. उनके उद्योग को विकसित किया जा सकता है। इससे बने सामान को उचित दाम मिल सकें इसकी सुविधाएं प्रदान करना आवश्यक है। इस समय

जनजातीय लोग कच्चा माल ठेकेदारों को बेचते हैं तथा कारखानों में इस माल का प्रयोग किया जाता। आम जनता इससे वंचित रह जाती है। घर-घर में सुधरे हथकरघे लगाए जा सकते हैं। ऊनी उद्योग और ऊन की बिक्री पर सरकार का नियंत्रण होना चाहिए ताकि कच्चे माल का लाभ हथकरघों के माध्यम से उठाया जा सके।

5. जब लाहौल क्षेत्र में 'कुठ' की खेती की जाती थी लोगों की आर्थिक दशा में सुधार हुआ था लेकिन उसकी खपत में इन दिनों कमी आ गई है अतः उन लोगों की आर्थिक दशा पिछड़ गई है। भरमौर में चरागाहों में धूप और अन्य जड़ी-बूटियां होती हैं जिनकी मांग अधिक होने के कारण ये वस्तुएं काफी मंहगे दाम पर बिकती हैं यदि वैज्ञानक ढंग पर इसकी खेती का परीक्षण किया जाय तो लोगों की आर्थिक दशा में सुधार हो सकता है। ये वस्तुएं जंगलों में भी उगाई जा सकती हैं जिसका उचित लाभ आम जनता को पहुंचाया जा सकता है।

इसी प्रकार ज़ीरा, केसर और न्योज़े की खेती का भी परीक्षण किया जा सकता है। इन फसलों को जंगल में ही विकसित किया जा सकता है। यदि इसे सरकारी नियंत्रण में भी रखें, इनका लाभ आम जनता को पहुंचाया जा सकता है। न्योज़ा, देवदार और कैल की तरह का वृक्ष है। इसके जंगल विकसित किए जा सकते हैं जिनका लाभ स्थानीय जनता उठा सकती है। कोई बात नहीं कि यह वृक्ष काफी अरसे बाद फल देने शुरू करता है। अखरोट की सुधरी नस्लें भी उगाई जा सकती हैं। कुछ नस्लें जंगल में भी उगाई जा सकती हैं।

6. यातायात को सुधारा जा सकता है। इस जनपद को अन्य क्षेत्रों से बारह मास यातायात सुलभ कराने के लिए धौलाधार के किसी क्षेत्र से सुरंग निर्माण की सुविधाओं पर विचार किया जा सकता है। सुरंग के बनने से प्रवास को पूर्णतया समाप्त किया जा सकता है।

वेश-भूषा

गद्दी वेश-भूषा विद्वानों के लिए ही नहीं अपितु साधारण व्यक्ति के लिए भी आकर्षण का केन्द्र रहा है। गद्दी भेड़पालक हैं अतः ऊन काफी मात्रा में अपने ही घर प्राप्त हो जाती है अतः जनजातीय लोगों की वेश-भूषा आम तौर पर ऊनी ही रही है। सर्दी हो या गर्मी झड़ी हो या मेघ, ये लोग ऊनी वस्त्र ही पहनते हैं केवल मात्र स्त्री का पहरावा अंशतः कपास के कपड़े का है। जिनका वर्णन इसी स्थान पर किया जा रहा है।



गद्दीजन-परम्परागत वेश-भूषा में

पुरुष आम तौर पर एक ऊनी चोळा, जिसे वे चोळी भी कहते हैं, चूड़ीदार (ऊनी या कभी-कभी सूती) पाजामा जिसे वे सुथण कहते हैं, सिर पर टोपु तथा चोले को कमर पर बांधने के गात्री (काली ऊन का लम्बा रस्सा) जिसे कभी-कभी वे डोरा भी कहते हैं, पहनी जाती है। गात्री उनके लिए काफी उपयोग की वस्तु है। यह एक बैग का काम देती है। गात्री पहनने से जिसके साथ एक खुली कोख बन जाती है जिसमें (स्थानीय भाषा में खोख) वे चलते-फिरते अपनी आवश्यक वस्तुएं

रखते हैं जैसे कि पैसे, तम्बाकू का खल्हड़ू (एक प्रकार छोटा-सा चमड़े का थैला) तथा आवश्यकता पड़ने पर तीन-तीन या चार-चार उर्णू (भेड़ के बच्चे) डाल लिये जाते हैं। डोरे के साथ ही रुणका (लोहे का बना छोटा साधन जिससे चक-मक पत्थर से टकरा कर आग तैयार की जाती है। मंदुआ (चमड़े का बना बटुआ) लटका रहता है जिसमें भुजलु (एक जंगली बूटी के पत्ते का रेशा जिसे रुणके और चकमक पत्थर से टकरा कर कालख लगा कर आग पकड़ी जाती है) और चकमक पत्थर पड़ा रहता है। साथ ही भेड़-बकरी चराते ऊंची पर्वत-शृंखला पर जो किया तो बांसुरी की तान छेड़ दी। इसलिए बांसुरी तो साथ ही रहनी चाहिए। इसलिए इसे ढाक (कमर) में ही बांधा रहना चाहिए अतः इसे भी कमर में बांधे डोरे में ही बांधे रखा जाता है। अब जहां कहीं जो किया तो तम्बाकू का दम लगा लिया इसलिए नरेल (छोटा हुक्का) भी साथ ही लटका रहता है। चिलम तो कोख (खोख) में पड़ी ही होती है। युवा गद्दी बंगाली बाल रखने का शौकीन होता है अतः मदुएं में स्थाई फिट किए आइने में मुंह देख कर कोख से कंघी निकाल कर बालों को भी संवार लेता है। इस प्रकार चलता-फिरता शृंगारदान और सारा सामान डोरे और कोख की कृपा से साथ ही चलता है।



गद्दीजन—परम्परागत वेशभूषा में

चलते समय बोझ भी तो लेना होता है अतः डोरा या गात्री के कारण बोझ को पीठ आसानी से थाम लेती है।

गात्री काली ऊन की बनी होती है अतः रास्ते में कभी खाए बासी भोजन को पचाने में भी तुरन्त सहायता करती है। किसी अंग्रेज डॉक्टर के संस्मरण हैं कि वह कश्मीरी लोगों को जब ठण्डे चावल खाते देखता था तो आश्चर्यचकित रह जाता कि वे ठण्डे चावल कैसे पचा लेते हैं। लेकिन जब डॉक्टर ने उन्हें हर समय 'कांगड़ी' को पेट के साथ रखे देखा तो उनको विश्वास हुआ कि यह सब चमत्कार कांगड़ी का है अतः यही बात गात्री की भी है। यह तो हर तरह से उपयोगी है।

वे चोले, पायजामे, गात्री को अन्य साज-सज्जा के साथ स्वयं बनाते हैं। चोले को स्वयं सीते हैं और सीने के लिए भी ऊनी धागों का प्रयोग किया जाता है। पट्टु (ऊनी कपड़ा) काटने के लिए भी कैंची के स्थान पर स्वदेशी कैंची जिसे वे स्थानीय भाषा में 'झुमणी' कहते हैं—का प्रयोग किया जाता है। झुमणी स्थानीय लुहार द्वारा बनाया गया औजार है जिसे ऊन काटने के काम में भी लाया जाता है। टोपु और सुथण भी स्वयं सीकर तैयार किये जाते हैं। बर्फ में चलने के लिए बकरी के बाल से तैयार 'जड़लू' का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार हर वस्तु मानो स्वदेशी है। पुराने समय में जब यातायात कठिन थे तथा दूर से वस्तु लाना आसान नहीं था, जीवन की कम-से-कम जरूरतें होती थीं। पाहल या पुहाल अर्थात् चरवाहों ने अब तक इसी वेशभूषा को अपनाया है भले ही इस समाज के इने-गिने पढ़े-लिखे लोगों ने स्वयं को आधुनिकता के अनुसार ढाल लिया हो।

गद्दी समाज समय-समय पर मनाये जाने वाले पर्व और उत्सवों में बड़े शौक से भाग लेता है। उसे नाचने और गाने में अधिक रुचि है। ऐसे उत्सवों पर पुरुष आकर्षक परम्परागत वेश-भूषा में सुसज्जित होता है। इस अवसर पर वह चोले के स्थान पर चोली पहनता है। चोली बहुत ही परिश्रम से तैयार की जाती है। उसके लिए चुन-चुनकर बढ़िया सफेद ऊन अलग की जाती है और इसे बड़े प्रेम से बुना और सिया जाता है। यह लम्बाई में भी चोले की अपेक्षा अधिक लम्बी होती है। पहनने पर कलात्मक लगती है। इस पर और डोरे पर तिल्ले का काम भी किया जाता है। मंदुआ भी तिल्ले से सजा रहता है। सिर पर या तो सफेद साफा या नोकदार ऊनी टोपी पहनी जाती है। उस पर नील-पक्षी की जड़ाऊ कलगी पहनी जाती है। पुरुष भी गले में माला और कलाई पर चांदी के कंगणु पहनते हैं जो अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। नृत्य करते समय सबकी एक समान वर्दी होती है। पुरुष कानों में सोने की 'नंती' भी पहनते हैं।

स्त्री की वेशभूषा भी कम आकर्षक नहीं। महिलाएं एक लम्बी और आकर्षक ऊनी या सूती चोळी पहनती हैं। आमतौर पर प्रिंटेड सूती चोली पहनी जाती है जिसे दोहड़, लुआंचड़ी या चोली की संज्ञा दी जाती है। टांगों में सुत्थण या सलवार

पहनने का रिवाज है । सिर पर पुरानी औरतें साधारण मोटा सूती दुपट्टा पहनती हैं जबकि युवतियां तिल्लेदार सिलकन दुपट्टा पसन्द करती हैं । गले में विभिन्न प्रकार की मालाएं—डोडमाळ, जौमाळा, कीमती पत्थरों के मणकों की माला, चांदी का ताबीत तथा अन्य आधुनिक सज्जा पहनी जाती है । सिर पर आधुनिक आभूषणों के अलावा परम्परागत चौंक, चौंकड़ी, माथे पर मानटिक्का के स्थान पर चांदी की चिड़ी पहनी जाती है। नाक में सोने की बलाक, लौंग और बालु पहना जाता है । कलाई पर आधुनिक साज-सज्जा के अलावा चांदी के कंगणु पहने जाते हैं । पैरों पर आम तौर पर पंजेब सदा ही सजी रहती है ।

पांव में साधारणतया देसी तिल्लेदार चरमराते जूते पहने जाते हैं । पुराने विशेष प्रकार के जूतों को 'मोछड़ू' कहा जाता है । जिनका वर्णन प्राय: लोकगीतों में स्थान-स्थान पर मिलता है ।

कानों में बाली और आधुनिक कांटे सजे रहते हैं ।

बच्चों के पांव में पीतल के कंगननुमा कड़े पहने जाते हैं जिन्हें 'फुल्लु' कहते हैं ।

खान-पान

लोगों की खाने-पीने की आदतें कृषि, जलवायु तथा वहां उपलब्ध साधनों और उपज पर निर्भर करती हैं। जैसे कि भौगोलिक परिवेश में स्पष्ट हुआ है कि विभिन्न क्षेत्रों में क्या-क्या उपज होती है। विशेषतः इसी पर खाने-पीने की आदतें निर्भर भेड़ व्यवसाय उपलब्ध होने के कारण दूध की विपुलता है। भेड़ के साथ-साथ बकरी पालन भी उतना ही है अतः बकरी के दूध की अधिकता होती है जिसे भोजन के प्रयोग में लाया जाता है। मांस की अधिकता से उनका मांसाहारी होना स्वाभाविक है। अन्न और दानों में मक्की, गेहूं, जौ और दालें हैं। एक विशेष प्रकार का बारीक अन्न चणियां या चणै अधिक मात्रा में उपजाया जाता है अतः इसका भात भोजन की आदतों में शामिल है। जब आवागमन कठिन थे उस समय चावल पहुंचाना कठिन होता था। उस समय विवाह-शादी और अन्य विशेष उत्सवों पर चणियां के भात का प्रयोग किया जाता था। अब यातायात सुगम होने के कारण ऐसे अवसर चावल के भात का प्रयोग अन्य स्थानों की तरह ही प्रचलित हो गया है। अब हर वस्तु सुलभ है अतः खान-पान में अन्य लोगों से कोई भिन्नता नहीं रह गई है। जब कठिन परिस्थितियां थीं उस समय जीवन की भी न्यूनतम आवश्यकताएं थीं। बाहर से केवल गुड़ और नमक की जरूरत होती थी जिसे पीठ पर उठाकर पहुंचाना कठिन होता था। जैसे कि पहले कहा गया है ऊनी वस्त्र-व्यवस्था से सूती कपड़े की आवश्यकता नहीं होती थी। भेड़पालक भरमौर वापसी पर जीवन की कुछ आवश्यकताएं साथ लाते थे जिन्हें वे स्वयं न उठाकर उन लोगों से बोझ उठवा लेते थे जिनको एवज में उनके खेत में अपने रेवड़ों से खाद की सुविधा देते थे। अन्य साधारण लोग जोत के रास्ते पीठ पर सामान ले आते थे अतः कठिन परिस्थितियों में कठिन जीवन को सरल बनाना आवश्यक था। एक प्रकार का अन्य अन्न भी उपजाया जाता है जिसे कोदा (कोद्रा) कहा जाता है। इसे प्रायः एक प्रकार का नशीला पेय—'सुर' तैयार करने के काम में लाया जाता है। जब इस अन्न का आटा खमीरे की अवस्था (Furmentation) में आता है तो इसके द्रव को छानकर पीने के लिए रखा जाता है। अधिक मात्रा में प्रयोग करने से यह नशीली वस्तु है। थोड़ी मात्रा में इसका उपयोग लाभप्रद है। इस दशा में

केवल शरीर को गर्मी मिलती है। कड़ाके की सर्दी में प्रायः इसका प्रयोग किया जाता है। विवाह-शादी के उत्सव पर इसके प्रयोग के लिए इसका परमिट लिया जाता है।

कोदे को मक्की के साथ मिलाकर रोटी बनाने के लिए भी उपयोग में लाया जाता है।

सियूल, फुल्नन और भरेस नकदी फसलें हैं अतः इनका प्रयोग आम खान-पान में कम किया जाता है।

भेड़-पालन--इसकी समस्याएं

गद्दी जनजातीय लोगों का मुख्य व्यवसाय भेड़पालन था। रेवड़ के रेवड़ चलते-फिरते दिखाई देते थे। अब यह व्यवसाय कम होता दिखाई दे रहा है। अतः इस का—'तब और अब' के आधार पर सर्वेक्षण किया जाये तो अब इस व्यवसाय में काफी गिरावट आई है। इसके कई कारण हैं जैसे कि—

1. भेड़ पालन व्यवसाय काफी कठिन कार्य है—जंगल और ऊंचे पर्वतों पर कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। वर्षा और झड़ी में भीगना, अपने सगे-सम्बन्धियों से कोसों दूर रहना इत्यादि—इसीलिए आज का पढ़ा-लिखा युवक तो क्या एक साधारण युवक भी इससे कोसों दूर भागता जा रहा है। यद्यपि इस व्यवसाय में काफी धन लाभ होता है फिर भी आम लोग इससे उदासीन हैं।

2. रेवड़ पालक इससे स्वयं उदासीन हैं। इसका सबसे बड़ा कारण चरागाहों की कमी है। जहां भेड़पालक खुले वातावरण में रहकर भेड़ को चुगाता था अब उससे वह वंचित हो गया है। अधिक भूमि खेती-बाड़ी और बागवानी के तहत आने से उसको हर स्थान पर टोह-टोहकर कदम रखना पड़ता है। यदि गलती से उसका रेवड़ कहीं तारों को लांघकर बागवानी या अन्य फसल में घुस गया तो इसका उसे भारी जुर्माना देना पड़ता है। गाली-गलौज तो रोज का ही काम है। स्थान-स्थान पर जंगल लग जाने की भी वह रुकावट समझ अनुभव कर रहा है। अतः धीरे-धीरे यह व्यवसाय क्षीण होता जा रहा है।

इन कठिनाइयों के होने पर इस व्यवसाय के विषय में नए तरीके पर सोचना पड़ेगा जिससे यह लुप्तप्राय न हो जाये। इसे भी वैज्ञानिक ढंग से ही चलाना अधिक लाभप्रद होगा। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण चरागाहों की कमी स्वाभाविक है। जंगलात लगने से कभी-न-कभी भेड़पालक को लाभ पहुंचेगा ही। यदि चरागाहों में चौड़ी पत्ती के सदाबहार वृक्ष उगाए जायें तो चरवाहों को और भी लाभ पहुंच सकता है। वे वृक्ष जो इन पशुओं को चारा दें, अधिक-से-अधिक उगाए जाने चाहिए। देवदार, कैल, तोष और चीड़ के वृक्ष जंगलात विभाग के अधीन क्षेत्र में ही उगाने चाहिएं क्योंकि इनसे पशुओं को चारा नहीं मिलता। चरागाहों का घास नष्ट हो जाता है। चरागाहों में करूं, बान, काहू, रबीनियां और अन्य

इसी प्रकार के पशुओं के चारे के उपयोगी वृक्ष लगाकर और बड़ा होने पर, उस क्षेत्र को चरागाहों के लिए खोल देना चाहिए। चरागाहों के क्षेत्र को इन वृक्षों के अधीन क्रमशः लाना चाहिए। कहीं-कहीं तो केवल एक-एक वृक्ष को तार लगाकर बन्द किया जा सकता है। अन्य क्षेत्र को चरागाह के लिए खुला छोड़ देना चाहिए।

वृक्षों का उगाना उतना ही जरूरी है जितना भेड़पालन परन्तु इनका एक-दूसरे का विरोधी होना दोनों के लिए हानिकारक है। दोनों का उन्नत होना भी जरूरी है। एक-दूसरे पर नियन्त्रण भी आवश्यक है। इसके लिए भेड़पालकों की सहमति से नियमित होना अनिवार्य है। यदि वृक्षारोपण के कार्य को भेड़पालक अपने हाथ में लेकर इसको सफलता का सेहरा पहनाएं तो कितना अच्छा हो!

भाषा

गद्दी जिस भाषा का आपस में प्रयोग करते हैं उसे गादी बोली या गदयारी या भरमौरी बोली कहते हैं। डॉ० ग्रीयर्सन ने अपने सर्वेक्षण के समय इस बोली को चम्बयाली (जिला चम्बा, हि० प्र० में बोली जाने वाली बोली) की उप-बोली कहा है। उस समय की रियासत चम्बा में भट्‌यात, चुराह, पांगी, लाहौल और भरमौर के क्षेत्र शामिल थे जिनमें क्रमशः भट्‌याली, चुराही, पंगवाली, लाहोली और भरमौरी बोलियां बोली जाती थीं। ये सब बोलियां चम्बयाली की शाखाएं मानी गई हैं। चम्बा केन्द्र क्षेत्र विशेष की बोली चम्बयाली है, यह पश्चिमी पहाड़ी की बोली के अन्तर्गत आती है।

भरमौरी (गादी बोली) न केवल भरमौर क्षेत्र-विशेष में ही बोली जाती है अपितु इसका प्रचलन हिमाचल के विभिन्न भागों में विस्तार से हुआ है जहां गद्दी जनजाति इस समय निवास करती है। इस भाषा का क्षेत्र इस समय चम्बा की तहसील भरमौर, चम्बा तहसील में छतराढ़ी, पियूहर, बस्सु, लिल्ह, बेलज, साहो, बकानी, मैंहला का ऊपरी भाग, कडेड का पूर्ण भाग, खज्यार, कोल्हड़ी तथा भट्‌यात के समस्त ऊपरी भाग सम्मिलित हैं। कांगड़ा और पालमपुर में धौला-धार की तलहटी में इस बोली का प्रचलन है। चम्बा जिला का बनीखेत और डलहौजी क्षेत्र अधिकतर गादी भाषा-भाषी हैं। असल में गद्दियों का मूल क्षेत्र तो भरमौर ही है परन्तु जो लोग वहां की कठोर प्रकृति से संघर्ष करते और जूझते थक गए उन्होंने इस संघर्षमय क्षेत्र को छोड़ देना ही श्रेयस्कर समझा तथा अन्यत्र कहीं इसी प्रकार के मिलते-जुलते क्षेत्र को अपना घर अपना लिया। निजी वेश-भूषा और भाषा को अपनी थाती समझकर अपने साथ स्नेह भाव से सँजोये रखा।

गद्दी बोली अन्य पहाड़ी बोलियों की तरह सीधे संस्कृत से सम्बन्ध रखती है। यह बोली कम परिवर्तनशील रही है तथा अपनी ठेठता को साथ लिये है अतः इस बोली में संस्कृत के मूल शब्दों की भरमार है।

निम्नलिखित शब्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जा सकते हैं जो संस्कृत के मूल शब्द से ज्यूं-के-त्यूं मिलते हैं।

शब्द	अर्थ
अंण	लाना
अंस	अंश
कंठी	गले का हार
कंठ	हार या गला
कण	कण
कन्या	अविवाहित पूजने योग्य लड़की
कन्यादान	विवाह
कंद-मूल	कंद-मूल
गण	समूह
अम्बर	आकाश

कुछ और शब्द दिए जाते हैं जो अपभ्रंश रूप में प्रयुक्त होते हैं।

गादी अपभ्रंश	संस्कृत
अमला	अम्ल
आसरा	आश्रय
उर्नू	उर्ण
कतराणा	कातर
कबट	कपट
कंया	काया
कळह	कलह
ही	ह्यः
गो (गया)	गम्
ग-आ (जाओ)	गम्
गच्छूरा	गम्
अग्गु	अग्र

गादी भाषा की कुछ प्रवृत्तियां

क्षेत्र भिन्नता के कारण इस बोली में कुछ भिन्नता आ गई है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके बोल-चाल में अन्तर आया है। जाति विशेष की बोली में भी कुछ भिन्नता आई है। इसी कारण एक क्षेत्र की भाषा दूसरे क्षेत्र की भाषा से ध्वनि और सर्वनाम के आधार पर भिन्न-सी लगती है। कहीं-कहीं तो केवल बोल-चाल के ताल और लय में ही अन्तर पड़ा है। यह सब बारीकी से अध्ययन करते समय पता लगता है।

भाषा-प्रवृत्ति के आधार पर गादी भाषा को निम्नलिखित क्षेत्रों में

विभक्त किया जा सकता है।

1. भरमौर क्षेत्र—इस क्षेत्र में पूरी भरमौर तहसील, छतराढ़ी, कूर, पियूहर तथा भटयात तहसील तथा कांगड़ा का पूर्ण गद्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र सम्मिलित है। यह सारा क्षेत्र ठेठ गादी-भाषी है। यद्यपि यह सम्पूर्ण क्षेत्र समूह भौगोलिक दृष्टि से आपस में भिन्न है लेकिन भाषा की दृष्टि से आपस में मिला है। वास्तव में सम्पूर्ण भरमौर क्षेत्र की जनता सर्दियों में भटयात और कांगड़ा क्षेत्र को चली जाती है अतः आपसी सम्पर्क के कारण वेशभूषा और भाषा उसी तरह अपने मूल ठेठ रूप सुरक्षित है। यहां स्थायी रूप से बसे गद्दी जन भी भरमौर से आकर बसे हैं अतः भाषा में समानता अवश्य है। जहां अन्य गद्दी-क्षेत्र सर्दियों में स्थायी रूप से अपने ही क्षेत्र में बसे रहते हैं और उन दिनों अपने घरों को नहीं छोड़ते उनकी भाषा में भिन्नता आना स्वाभाविक है।

2. दूसरा क्षेत्र—बेलज, गूं, बकानी तथा मैहला का ऊपरी भाग तथा कड़ेड इत्यादि सम्मिलित हैं।

3. तीसरा क्षेत्र—बस्सु और उसके आस-पास का क्षेत्र है।

4. चौथा क्षेत्र—लिलह और साहो परगने हैं।

इन अन्तिम तीन क्षेत्रों में गद्दी लोग सम्पूर्ण वर्ष अपने घरों में रहते हैं तथा अधिकांश भाग राठी जाति से सम्बन्धित है अतः उनकी भाषा में ध्वनि और लय के आधार पर भिन्नता आई है। सर्वनामों के प्रयोग में भी भिन्नता नजर आती है। उच्चारण में भी अन्तर मालूम होता है।

गद्दी क्षेत्र में मूर्धन्य 'ष' की ध्वनि विशेष है। इसे विद्वानों ने असाधारण ध्वनि बताया है। ग्रीयर्सन महोदय ने भी इसे असाधारण ध्वनि बताया है। इस ध्वनि को लेखक ने अपनी पुस्तक में 'ष' से प्रकट किया है। कई विद्वानों ने इस ध्वनि को 'ह' से प्रकट किया है। कइयों ने इसे 'ख़' से लिखना उचित समझा है। चम्बियाली में यह अक्षर ध्वनि दन्तय 'स' से उच्चरित की जाती है। लिलह और साहो गद्दी क्षेत्र में यह ध्वनि 'श' से बोली जाती है।

इस ध्वनि को निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है।

गादी शब्द	**अर्थ**	**प्रथम तीन क्षेत्र**	**अन्तिम क्षेत्र**
षाग	शाक	उच्चारण स्थान कंठ	'श' उच्चारण
षाप	शाप	और तालु का मध्य भाग	
षिंग	सींग	,,	,,
षुक्का	सूखा	,,	,,
षैरी	सैरी का त्यौहार	,,	,,
षुकारा	सूखे में पैदा होने वाल धान	,,	,,
षंढ	बांझ	,,	,,

		उच्चारण स्थान कंठ और तालु का मध्य भाग	'श' उच्चारण
वषां	विश्राम	,,	,,
कष	मधुमक्खी के छत्ते की टुकड़ी	,,	,,
कष्ट	कष्ट	,,	,,
कष्ड़ा	कठिन	,,	,,
नहष	भागना या नाखून	,,	,,
षांत	तरसा कर मारना	,,	,,
षौण	सावन मास	,,	,,
षुन्ना	पेटू या शून्य	,,	,,
षुणाना	सुनना	,,	,,
षणकण	सां-सां की ध्वनि करते उबलना	,,	,,

इसी प्रकार अन्य शब्दों का अध्ययन क्षेत्रीय भिन्नता को स्पष्ट करने हेतु निम्न उद्धृत सारणी में दिया जाता है—

शब्द	अर्थ	प्रथम क्षेत्र	दूसरा क्षेत्र	तीसरा क्षेत्र	चौथा क्षेत्र
आहे	हम	आहे	असे	अह्से	आहे
अहु	हमने	अहु	असु	अह्सु	अहु
तुहु	तुमने या आपने	तुहु	तुसु	तुह्सु	तुहु
तुहे	आप	तुहे	तुसे	तुह्से	तुहे
अजुंह	अभी	अजुंह या हजुंह	अब्बे	एब्बे	अजुंह
गाहणा	जाना	गाहणा	गणह	घणा	गाहाणा
पढ़ना	पढ़ना	पढ़ना	पढ़ना	प्हड़ना	पढ़ना
तेरा	तेरा	तेरा	तेरा	तेरा	तेरा
अऊं	मैं	अऊं	अऊं	अऊं	अऊं
तिढ़ी	वहां	तिढ़ी	तिढ़ी	तिहड़ी	तिढ़ी
कढ़ी	कहां	कढ़ी	कढ़ी	क्हड़ी	कढ़ी
आग	आग	आग	अग	ऐग	आग

उपरोक्त उदाहरण में सर्वनाम की भिन्नता भी स्पष्ट हो गई है।

गादी उप-भाषा मुहावरों से समृद्ध है। कुछ एक मुहावरे, उदाहरणार्थ, अर्थ सहित नीचे दिए जाते हैं—

1. खोलुए लाणा—मृत्यु होने पर अर्थी को जलाने के लिए जिन मशालों को प्रयोग में लाया जाता है उन्हें 'खोलु' कहते हैं अतः इस मुहावरे को किसी को गाली देने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

2. बिबड़ी कोरना—यह एक प्रकार का ताहना है। किसी के डर से छिपने के अर्थ में है। बिबड़ी का अर्थ तूंबी से है। किसी से इतना भय है कि तूंबी कोर कर उसमें छिपे ?

3. हड़ी पाणा—पुराने समय सजा देने का भी अच्छा तरीका था। किसी को हवालात करने के लिए एक प्रकार के वृक्ष के तने को खोखला कर उसमें अपराधी को बन्द किया जाता था ताकि वह भाग न जाए। जब कोई व्यक्ति बुलाने पर जल्दी न आए तो इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है—

"कै तु हड़ी हा पौरा ?" अर्थात् क्या तुझे बांध रखा था ? 'हड़' को घर की दीवारों में चिना जाता है। उसमें बाहर की ओर छोटा-सा छेद रखा जाता है। उसमें मधुमक्खियां पाली जाती हैं। कभी-कभी एक ही छत्ते से चालीस-पचास किलो शहद प्राप्त किया जाता है। इस साधन का दूसरा नाम 'गंदाढ़' है। परन्तु मुहावरे के प्रयोग में 'हड़' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है।

4. मुंह मांगी लगणा—बहुत निराश होना।

5. लकड़ेरना—यह मुहावरा भी गाली-गलौज के समय प्रयुक्त होता है। जब कोई दुर्घटना से मर जाए तो उसे लम्बी और मजबूत लकड़ी से बांध कर घर पहुंचाया जाता है इसलिए इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है।

6. कोदरा कुटणा—किसी को अधिक मार पड़ना। कोदरा एक प्रकार का अन्न है जिसे खेत से खलिहान में लाकर खूब कूट-कूट कर दाने निकाले जाते हैं। यदि किसी को निर्दयता से मारा जाय तो इस मुहावरे का प्रयोग होता है।

7. गाहण पाणा—कोई काम संयोजित ढंग से न करना। किसी काम में खलबली डालना। ऐसा काम करना कि परिणाम तक न पहुंचे। खलिहान में जब गेहूं या जौ इत्यादि की फसल एकत्रित की जाती है तो उसे रौंदने के लिए चार या छः बैल काम में लाए जाते हैं। वे जैसे चाहें घूमते जाते हैं इसी से इस मुहावरे की उत्पत्ति हुई है। 'गाहणा' इसी क्रिया को कहते हैं।

8. चीरा साही पकणा—'चीर' एक जंगली खुरमानी का फलदार वृक्ष है इसे हिमाचल के अन्य स्थान पर 'चूली' भी कहते हैं। जब यह पकता है तो दूर से ही लाल दिखाई देता है। फल की खूब भरमार होती है। अतः 'बहुतायत' के लिए इस मुहावरे का प्रयोग हुआ है।

9. काला भूण—रंग उड़ना। "जां भैईए गल्ल षुणाईं तां ओ काळा

भुचीगो"—जब मैंने उसे यह बात सुनाई तो उसका रंग उड़ गया।

10. पमारे गाहणा—मग्न होना। होश खोना।

जब कोई व्यक्ति अधिक बीमार पड़ता है तो कभी-कभी घंटों बेहोश हो जाता है। लोक विश्वास के अनुसार वह दरगाह। (धर्मराज की कचहरी) पहुंचने से पहले कई प्रकार की यातनाएं झेल फिर वापस आ जाता है। वह व्यक्ति अपनी यात्रा का वृत्तांत सुनाता है। इस प्रकार की मनोदशा को 'पमारे गाहणा' कहते हैं। इसीलिए इस मुहावरे का प्रयोग हुआ है।

11. औखी पैणा—अधिक गरीबी की दशा में होना।

12. हत्थे चुम्हटू दीणा—इस प्रकार का मुहावरा भी गाली-गलौज के समय प्रयोग में लाया जाता है।

मरते समय व्यक्ति से गो-दान कराया जाता है। गाय या बछड़ी की पूंछ को व्यक्ति के हाथ में दिया जाता है तब मन्त्र पढ़कर दान क्रिया पूरी की जाती है। पूंछ को लोक-भाषा में 'चुम्हट' कहते हैं। इसीलिए इस मुहावरे का प्रचलन हुआ।

13. षिढ गाहणा—लुप्त होना या किसी का भाग जाना।

14. पाप कमणा—पाप का फल।

15. धोई-धुप्पा पाणा—खूब खरी-खोटी सुनाना।

16. दंदेरा मुल्ल न भूणा—बहुत सुन्दर।

17. हत्थ षुक्का न भूणा—सदा गाय या भैंस का दूध देते रहना।

18. दाही चारा जळना—दया से छाती फटना।

19. छिच्छी न बच्छी—घर धन-धान्य रहित।

20. बिज्ज-पैणा—बिजली गिरना। अचानक कोई घटना होना।

21. उडारकू करना—बाल-बच्चे का पाल कर बड़ा करना।

22. फुरड़ मारना—डींग मारना।

23. उमला तौआ होना—उल्ट काम या तौए की तरह काला।

24. भ्राड़ दांद होना—अर्ध-खस्सी किए बैल को भ्राड़ दांद की उपमा दी जाती है।

25. उलके मुंह काळा—दुर्घटना किसी समय भी हो सकती है।

26. त्रिकड़ी-रे-त्राणे पैणा—कमर टूटना।

27. नक चुकणा—नाक चढ़ाना।

28. षुक्कण पाणा—किसी कार्य को जानबूझ कर विलम्बित करना।

29. दाढ़ी छुन्ही करना—मिन्नत करना।

30. सुरगाषिढ़ लाणा—स्वर्ग की पौड़ी लागान।

31. गंड़ेरा ता—केवल मात्र बहाना। गंड—एक प्रकार का फोड़ा जिससे

'ता' (बुखार-कवट) होता है ।

32. पिट्ठा-कुट्ठा करना—झंजट में पड़ना ।

33. जंधा लगणा—अपने पैर पर खड़े होना ।

34. चैं न छड़णा—जड़-मूल से उखाड़ना ।

35. षेल्हण पैणा—मुसीबत में पड़ना । कार्य करने में कठिनाई में पड़ना ।

36. षैल्हा साही कुदीणा—'खैल्ह' एक जंगली जंतु होता है जो फसल को हानी पहुंचाता है । इसके जिस्म पर चितकबरे रंग के सूए-से होते हैं । पैर पैने होते हैं अतः इन्हें वह जमीन खोदने के काम में लाता है । दांत भी मजबूत और पैने होते हैं । वह ज़मीन को जगह-जगह खोदता रहता है अतः मुहावरे का प्रचलन हुआ ।

37. मिरका दीणा—आंख दबाना ।

38. बिबड़ी कुटणा—बादल फटना । एकदम भारी वर्षा होना ।

39. टटरी जलना—अधिक गर्मी होना ।

40. कौळ कमळाणा—कमलाणा=मुरझाना

कौळ=कमल

प्यास लगना ।

41. ठंडी रोटी खाणा—जेल होना ।

42. थिंधी रोटी मुलणा—घी चूरी मिलना ।

43. खुत्थी लाणा—चुगली करना ।

44. भगत दीणा—बलि देना ।

45. खिल्ल पैणा—बरबादी होना ।

46. हिक्का जो बट्टा—मुसीबत मोल लेना ।

47. नाड़ेरा कच्चे भूणा—चरित्रहीन ।

48. कंडे बाणा—कांटे बोना ।

49. अम्बर त्रुटणा—तूफानी वर्षा होना ।

50. नषांह गाहणा—रोते चिल्लाते समय सांस रुक जाना ।

51. पोचा फेरना—लीपा-पोती करना ।

52. बिजी करी हां करना—आना-कानी बिना हां कर देना ।

53. सेत दीणा—सफाया करना ।

54. हिक कुटणा—छाती पीटना ।

55. अन्ने उत्तर दीणा—अवधी पूरी होना ।

56. अकल पैणा—वर्षा से ज़मीन दलदली होना ।

57. ढुंध चुकणा—बहाना करना ।

58. डैंरा भूणा—सोजश आना ।
59. दळी पाणा—आनाकानी करना ।
60. ढिमरी कसणा—काबू में लाना ।
61. त्राक पैणा—अधिक मात्रा में होना तथा मांग कम होना ।
62. बुजका बन्हणा—कसूरवार ठहराना तथा मुसीबत में डालना ।
63. मुग्गा लगणा—अधिक मात्रा में होना ।
64. मून पाणा—खूब लूटना ।
65. जुरड़ दीणा—घुड़की देना ।
66. सगळा मुळना—धन हाथ लगना ।
67. घुरांटी लैणा—लड़ने के लिए ललकारना ।
68. काळी रात ईणा—बरफानी रात ।
69. चम्हट फुलणा —फुसलाहट में आना ।
70. छैरा पैणा—डर जाना ।
71. धूं दीणा—तंग करना ।
72. टणाकी लाणा—धीरे-धीरे काम करते रहना ।
73. नाटी गाहणा—इन्कार कर देना, अकड़ जाना ।
74. घरेरा ध्राहण करना—बरबादी करना ।
75. फालछड़ी धूणा—खूब वश में होना ।
76. फिळह साहीढुकणा—डर कर कोई बात न करना ।
77. ब्रख लाणा—हराना ।
78. बांगा दीणा—सब में बात फैलाना ।
79. बैंग लाणा—घाटे में पड़ना, कठिनाई में डालना ।
80. भन्नी खाणा—डराना ।
81. लंका भूणा—बहुत दूर या लम्बा ।
82. ल्हास करना—जान से मार देना ।
83. सिकबाहण भूणा—अधिक मात्रा में होना ।
84. सीर परखणा—जाइज़ा लेना ।
85. सेक भूणा—संकट में पड़ना ।
86. सैन्हा लाणा—लगातार रोते रहना ।
87. सौका भूणा—अनचाहा व्यक्ति बीच में आना ।
88. हाटा करना—किसी को नुकसान पहुंचाना ।
89. हिड़म पैणा—अनावृष्टि होना ।

लोकोक्तियां (उपनाण)

गादी भाषा में लोकोक्तियों की भरमार है । आम बोलचाल में कुछ शब्दों के बाद लोकोक्ति अवश्य आती है। बच्चा हो या बूढ़ी लोकोक्ति अनायास ही मुंह से निकलती है । लोकोक्ति को (उपनाण) कहते हैं। 'उपनाण' यानी उपनयन उन्हें 'सियाणे' (जानकार-वयोवृद्ध) व्यक्तियों से उपलब्ध हुए हैं । साधारण जनता को उपदेश की आवश्यकता नहीं। 'उपनाण' ही उनके लिए उपदेश का काम करते हैं। कुछ शब्दों के बाद 'उपनाण' दृष्टांत का काम करते हैं।

कुछेक 'उपनाण' उदाहरणार्थ नीचे दिये जाते हैं—

1. बकरेरी जान गच्छा खाणे वाले मौज उड़ान : कोई तो मुसीबत में पड़ा हो और दूसरों के लिए मनोरंजन बने ।

2. न्हुषा जो बलणा—सब किछ तेरा—पर हथ मत लांदी : किसी को झूठा ढाढस देना । न्हुष (नुंह=पुत्र वधु) ।

3. फागुण लंघी गण चेत्र लंघी धणा : मधुमक्खियों को फागुन मास में डाइसैंटरी का शिकार होना पड़ता है। यदि इस महीने को लांघ जाए तो मधु-मक्खियां बच जाती हैं। भेड़-बकरियों के लिए चेत-मास कष्टदाई होता है । इस मास माल-मवेशी दुर्बल हो जाते हैं और कुछ तो मर भी जाते हैं ।

4. दाळी मल्ली, मासे डोई, षाग रिन्हा हर कोई : दाल पकाते समय 'मल्ली' (हंडु के लिए मिट्टी का ढक्कन) आवश्यक है । मांस पकाते समय 'डोई' (काष्ठ की कड़छी) आवश्यक है । बार-बार कड़छा मारने पर मांस जलता नहीं और जल्दी पक जाता है। 'षाक' (शाक) जैसे मरजी पका लो। इसके लिए कोई विशेष तकलीफ की आवश्यकता नहीं।

5. हाखीरा अंधा ना नैणसुख : आंख का काना नाम नयन सुख ।

6. जम्मे पुत्रे औत्री बिजन बड़े सराध : पुत्र के होते हुए भी उसका काम न आना। सराध (श्राध) देते समय बड़े (एक प्रकार का पकवान) का होना अनिवार्य समझा जाता है ।

7. बिल्ले जो घिड न पचणा : बिल्ले को घी दें तो उसे नहीं पचता अतः जिसको जो चीज भाय उसकी सहायता उसकी सामर्थ्य और आवश्यकतानुसार होनी चाहिए ।

8. घिऊ उप्पर मखीर पड़्डे : शुद्ध घी ऊपर होता है और शुद्ध शहद हमेशा बर्तन के पैंदे में होता है ।

9. नुहें इयाणिये मखीर जाय ठंडे पाणिए : कहते हैं एक बार किसी सास की पुत्र-वधू ने किसी बर्तन में रखे शहद में हाथ डाल कर शहद निकाला और खा लिया इतने में उसकी सास भी आ गई। नुंह (पुत्र-बधू) ने जल्दी से हड़बड़ाते हुए अपने हाथ वहां पड़ी ऊन से पोंछ लिए। उसके हाथ से ऊन चिपट गई। चोरी

पकड़ी गई। अब सास ने उसे उपरोक्त लोकोक्ति कही। शहद हमेशा ठंडे पानी से धोया जाता है। अनजान व्यक्ति के लिए इस सूक्ति का प्रयोग करके व्यंग्य किया जाता है।

10. कायेरी चुक्के भुख अते म्हीरी चुक्के लुक : जब कौवा भैंस पर बैठकर उसकी जुएं चुनता है तो भैंस बड़े आराम से बैठी रहती है। उसकी खुजली (लुक) दूर होती है। कोई घृणित काम दोनों के लिए उपयोगी हो तो इस लोकोक्ति को कहा जाता है।

11. खखटे जुट्टे छेड़ बड़ी, नंगड़ा मणुए चैड़ बड़ी : टूटी-फूटी सूखी जूती बड़ी आवाज (छेड़) करती है। इसी प्रकार नंगड़ आदमी अपने आपको बड़ा दर्शाता है (चैड़)। आधा घड़ा हमेशा छलकता है।

12. सब-सब जोगी मरन, मेरे खपरा भरन : इस लोकोक्ति में स्वार्थ की भावना पर गहरी चोट है।

13. हिल्कंदा कुंडा, हंसदी नार, कदी न भली बार : इस लोकोक्ति में भी गूढ़ रहस्य छिपा है।

14. नंगड़ा-नंगड़ा साथ, दीहा तचणी धुप, राती लाणी बाष : यह सूक्ति भी स्वतः स्पष्ट है। नंगड़ को नंगड़ का साथ मिल गया है। दिन भर तो बेकार पड़कर धूप सेंकते हैं और रात को आग सेंकते रहते हैं।

15. जम्मे पुत्रा औत्री, विजन बड़े श्राद्ध : बड़े (माश को पीस कर टिक्कियों का पकवान) बनाये जाते हैं। श्राद्ध में बड़े का अर्पण अवश्य समझा जाता है। इसी प्रकार पुत्र का होना भी जरूरी समझा जाता है। परन्तु नालायक पुत्र न होने के बराबर है। इसलिए इस लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है।

16. अक रोज भत्ते-मासे भिरी खड़े उपासे : कोई दिन खूब आनन्द लेना परन्तु साधारणतया भूखे रहना पड़ता है। सूझ-बूझ से खर्च करना चाहिए।

17. माखीरा ठुट्ठा दरिया : मक्खी के लिए तो ठूठे का पानी ही नदी है। थोड़े में ही खुश हो जाने के लिए या किसी साधारण बात पर घमंड करने के लिए इस लोकोक्ति का प्रयोग किया जाता है।

18. बकरी खड़के पतींदी : 'खड़क' एक छोटी-छोटी पत्तियों वाला वृक्ष होता है। बकरी के लिए इसका चारा काफी नहीं। परन्तु बकरी इसे जरूर खाएगी। अच्छा काम छोड़कर ऐसा काम पकड़ना जो लाभप्रद न हो।

19. बगड़ी रुट्टुए छुट्टुए : छाछ पीने से जल्दी खत्म होती है। इसी प्रकार बगड़ी (खेत) में काम करना हो तो छोटे-छोटे भाग कर (रुट्टु) लेने चाहिए। एक भाग समाप्त करने के बाद अगला पकड़ना चाहिए। काम करने की तकनीक में इस सूक्ति का प्रयोग किया जाता है।

20. जिहड़ी-जिहड़ी सहरूरी डाळी तिढ़ी-तिढ़ी पाणीरी आळी : सहरू

(एक झाड़ी) उसी स्थान उगता है जहां पानी की 'आळ' (छोटी-सी स्थिर पानी की झील या खड़ा पानी) होगी। किसी बात का अंदाजा लगाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

21. काठेरी हंडी भत्त रिन्हणा : असम्भव काम।

रिन्हणा का अर्थ पकाने से है। काठ का अर्थ काष्ट है। हंडी का अर्थ हांडी से है।

22. बाहरे सीस चट्टे । अंदरे जूंए छराटे : बाहर तो श्रृंगार किया है परन्तु अंदर जुएं भरी हैं। यह लोकोक्ति विशेष आडम्बर और दिखावे पर गहरी चोट करती है।

23. पल्ले न लिद्द थाणेदारा सिते जद्द : अपनी क्षमता से अधिक स्वप्न लेना।

24. चमार गो पमारे तेह जो मकोड़ी मुळी बगारू : जब छोटा व्यक्ति भी बड़प्पन दिखाए तो इस लोकोक्ति का प्रयोग होता है।

25. जड़ चली गच्छा पर तढ़ न गच्छा : अक्खड़पन दिखाना।

26. बड़ी नेड़ ता बड़ी दूर, बड़ी चिक्कड़ ता बड़ी धुप्प : बड़े नजदीक (नेड़) होने दूरी संभावित होती है। इसी प्रकार बारिश अधिक हो ता कीचड़ फैल जाती है। परन्तु उतनी धूप संभावित होती है।

27. चक्षणा न ता अंगण ढेरा, बसणा न ता घर कसेरा : नाच न जाने आंगन टेढ़ा।

28. धेला हत्थ इंदा बेला हत्थ न इंदा : गया समय हाथ नहीं आता।

29. खिंधेरी मरजी बिलंगणी जो : कपड़े लटकी रस्सी (बिलंगणी) पर रखे जाते हैं। अतः टूटे-फूटे कपड़े से बनाई तलाई (खिंध) चाहती है कि उसे रस्सी पर लटकाया जाए अर्थात् हर वस्तु अपना-अपना स्थान मांगती है । उचित वस्तु के लिए उचित स्थान अपेक्षित है।

30. कोटारा लाणा दिने जो बाबु राती जो साधु : गद्दी जन ऊनी चोला पहनते हैं। चोला उनके लिए बहुत काम की चीज है। इसके मुकावले कोट का पहरावा कुछ नहीं।

31. हत्था छुए ता मैली होए, पत्ता छुहे ता सैली होए : अधिक कोमल और सुन्दर महिला के लिए यह लोकोक्ति उपमेय है।

पहेलियां

लोक साहित्य में पहेलियों का अपना विशेष स्थान है। अपनी बोल-चाल की भाषा में विशेष कर बच्चे इसमें बहुत रुचि लेते हैं। सर्दी के दिनों आग के आस-पास बैठे नर-नारी और बाल-वृद्ध इसमें रुचि लेते हैं। एक पहेली,

(लोक भाषा में फणूहणी या फलूहणी) बोलता है/अन्य उस पहेली की वर्णनात्मक शैली पर विचार करते हैं। कल्पना की दौड़ कितनी सत्य उतरेगी यह तो पहेली-वक्ता ही जांच करता है । इस प्रकार बुद्धि की कसौटी पर कसने के लिए यह अच्छा मनोरंजन समझा जाता है। कुछ पहेलियों उदाहरणार्थ नीचे उद्धृत की जाती हैं। हर एक पहेली का क्रमशः उत्तर अन्त में दिया जाता है।

1. हुंडी, हुंडी उप्पर डंडी, डंडी उप्पर मल्ली,
   मल्ली उप्पर षाग (साग), षाग उप्पर आग ?
2. बत्ता माह मुळ, (मिला)
   भुआ-'हा दैया'?
3. अक्खेभित, बक्खेभित, मंझ भरे सोनेरीलित ?
4. अक्की घरे अग्य लगूरी
   दूर गराएं रौळा पैऊरा
   तरीय धरे धूं निकलंदा ?
5. काळी कुत्ती, अंगण सुत्ती ?
6. चार खड़ियां
   चार फिरियां
   चार सुरगे सारणियां
   अकाश तोते बोलंदे
   कल फौजा अणियां ?
7. चीखां पत्र, जमहीखा दांणा
   जेहड़ा मेरी फोलणी न बुज्झे
   तिसेरा बब्ब ल्बाणा ?
8. सुरगे लग्गी ढोलकी
   पताळे लग्गा वियाह
   अपाणे, याणे, सियाणे, जो पुच्छा
   जे बिना बीए भुंदा कँ ?
9. बाईं कौड़ी, जम्मी सुपारी
   बुड्ढा पेटे, पुत्र विपारी ?
10. हेढ़ी चल्ले हेढ़ा
    बंदूक बाही पेड़ा
    मरूरा मास न खाणा
    जींदेरा मास खाणा ?
11. दागी दागी लकड़ी चली
    थम्मण बाळा कौन ?

12. इन्दा तां गण
बैंधा ता राजा
गंधा ता गीदड़ ?

13. अग्गे जम्मी अंऊ बचारी
पिच्चे जम्मु बापु
अम्मा मेरी लुट परान्दा
काल्हड़ियविच दादु ?

14. अक अन्ही
तिनो दो खस्ता रक्खे बन्ही ?

15. वत्तरीह कोठे, छत्तरीह द्वार
बब्बे पुत्रे इक बुहार ?

16. डिक-डिक डंडी डिकंदाडाळ
सुन्नेरा कटोरु, रुप्पेराथाळ ?

17. चौर थम्ह, चौर दिए जळंदे
कीड़ा मुंडी लेकंदा,
लोक तमासा हेरंदे ?

18. नीला, हच्छा, लाल, पियूळा
फलूहणी बुज्झां, भागा बाळा ?

19. बाई तिल्ली, जम्मी सुपारी
बब, बेटे, पुत्र पुजारी ?

20. अट्ठ हड्डी, किरड़ आंदरा ?

उत्तर—1. हुक्का, 2. कांटा, 3. आग, 4. हुक्का, 5. जूता, 6. वेद, 7. धनिया, 8. गुच्छी (Mushroom), 9. बीज, 10. मेंढे का अण्डकोष, 11. बंदूक, 12. बर्फ, 13. कपास, 14. दरवाजे का हैंडल, 15. मधुमक्खी का छाता, 16. नरगिस का फूल, 17. हाथी, 18. मिर्च, 19. पोस्त, 20. चारपाई।

देवी-देवता

सदियों से गद्दीजन बीहड़ क्षेत्रों में रह रहे हैं। उनका एकमात्र सहारा देवी-देवता रहे हैं। आधुनिक चिकित्सा-सुविधाएं आज कहीं-कहीं उपलब्ध हैं परन्तु कठिन क्षेत्रों में तो अब भी देवी-देवता, जादू-टोने और जड़ी-बूटी पर ही विश्वास है। आदिमानव की अगाध श्रद्धा देवी-देवता पर ही निर्भर थी। ईश्वर विश्वास और देवी-देवता में आस्था ने उनके कठिन जीवन को सुगम बनाने में सहायता की है। अन्य हिन्दू देवी-देवताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य देवता भी हैं जो उनके अपने क्षेत्र की विशेषता हैं जिनका विवरण यहां दिया जा रहा है।

उन देवी-देवताओं को पांच वर्गों में विभक्त किया गया है जिनका क्रमशः वर्णन निम्नलिखित है—

प्रथम वर्ग

देवी-देवताओं के प्रथम वर्ग में पुरुष वर्ग में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नाग, गणेश और वीर हैं तथा स्त्री वर्ग में काली, सती और ब्रह्माणी हैं।

ब्रह्मा—अन्य पौराणिक देवताओं की तरह इस देवता की मान्यता यहां भी समानता से है। किसी भी पूजन के समय इसका नवग्रहों और अन्य देवताओं के साथ पूजन होता है।

विष्णु—विष्णु विभिन्न रूपों में पूजा जाता है। इसके ठाकुर और लक्ष्मी-नारायण के कहीं-कहीं मन्दिर हैं। चन्हौता ग्राम में विष्णु का मन्दिर है। मूर्ति में विष्णु को गरुड़ की सवारी पर दर्शाया गया है।

शिव—आदिवासी गद्दी जनता अधिकतर शिव-उपासक है। शिव को ही महादेव, कैलाशवासी, त्रिलोचन महादेव, चन्द्रशेखर और मणिमहेश कहा जाता है। इनके विभिन्न स्थानों पर मन्दिर हैं जिनका विवरण अन्यत्र इसी पुस्तक में हुआ है।

नाग—केलंग, बासुकि, पढ़ोल, मंदौर, काति, डळ-नाग, इन्द्रु इत्यादि हैं जिनके विभिन्न स्थानों पर मन्दिर हैं। केलंग नाग का मन्दिर कुगति में है। इन्द्रु नाग के मन्दिर क्वार्सी, चन्हौता में वणी के अलावा अन्य स्थानों पर भी हैं।

बासुकी नाग का मन्दिर सामरा परगना में स्थित है । मूर्तियां मानवाकार के अतिरिक्त निशान रूप में सांपाकार भी हैं । मन्दिर आमतौर पर छोटे-छोटे हैं । कहीं-कहीं चरागाहों में छोटे-छोटे मन्दिरों की स्थापना भी हुई है । नाग वर्षा का देवता है । इसका अधिकार चरागाहों पर माना जाता है । अतः पशुधन की रक्षा इसी के हाथ मानी गयी है । गाय का प्रथम बार दूहा दूध नाग को चढ़ाना अनिवार्य समझा जाता है । छाछ और घी से भी प्रथम बार नाग-देवता को पूजा जाता है यदि नाग का मन्दिर अधिक दूर हो तो घी किसी बर्तन मे रखा रहता है और किसी शुभ दिन को वहां जाकर नाग के मन्दिर में चढ़ाया जाता है । इस प्रकार के नाग प्रायः अमांसी (मांस भक्षण न करने वाला) समझे जाते हैं । अन्य वर्ग के नाग मांसाहारी समझे जाते हैं । इनको नर-भेड़ की बलि दी जाती है । अकाल या सूखा पड़ने पर उपवास रखे जाते हैं तथा लोग मन्दिर में जा बैठते हैं ।

जनजातीय लोगों में नाग और शिव का पूजन समान रूप में चलता है । शिव हर प्रकार का रक्षक समझा जाता है । नाग को पशुधन का रक्षक और वर्षा का देवता माना जाता है ।

गणेश—गणेश शिव परिवार का देवता माना जाता है । कोई पूजन करने के आरम्भ में गणेश पूजन किया जाता है । गणेश की मूर्ति प्रवेश द्वार के चौखटे पर प्रायः उकीरी देखी जाती है । मन्दिर में गणेश की मूर्ति देखी जाती है ।

कार्तिकेय—गद्दी क्षेत्र में कार्तिकेय का समान रूप से पूजन होता है । भरमौर में होली क्षेत्र में कळेठ नामक स्थान में कार्तिकेय का मन्दिर है । इस मन्दिर में कार्तिकेय की छःमुख की सुन्दर प्रस्तर की मूर्ति है । छतराढ़ी शक्तिदेवी के मन्दिर और भरमौर में महिषासुर-मर्दिनी (लक्षणा) देवी के मन्दिरों में कार्तिकेय की मान्यता है । द्वार के चौखटों पर भी गणेश के साथ कार्तिकेय की मूर्तियां उकेरी गई हैं ।

वीर—वीर देवताओं में गुग्गा, मंडळैक, अजियापाल, लखदाता, कैलु, नारसिंह (नृसिंह) इत्यादि हैं ।

लखदाता की समानरूप से हिन्दू, सिखों और मुसलमानों (गुज्जरों) में मान्यता है ।

कैलु की मान्यता स्त्रियों में है । जब औरत बच्चे को जन्म देती है तो कैलु की स्थापना की जाती है । एक वृक्ष के नीचे एकाध गोल पत्थर या सफेद चकमक का पत्थर रखा जाता है जिस पर सिन्दूर छिड़की जाती है तथा सफेद कपड़े से ढक दिया जाता है । एक या दो लोहे के सांकल रखे जाते हैं । समय-समय पर कैलु का पूजन किया जाता है । गुग्गे की मान्यता भी प्रचलित है । जिसका वर्णन इसी पुस्तक में कहीं अन्य स्थान पर किया गया है ।



लक्षणा देवी की सातवीं शताब्दी की बनी कांस्य प्रतिमा (भरमौर-चम्बा स्थित)
विद्वान इसे महिषासुर मर्दिनी के नाम से जानते हैं ।

स्त्री देवता—इस वर्ग में स्त्री देवताओं में कालि, आदिशक्ति, चौंड़, शीतला बन्नी, कलहौली, वणास्थ, जालपा और बणखण्डी हैं। सती और ब्राह्मणी भी स्त्री देवता हैं।

वणस्थ और वणखंडी वन में रहने वाले देवता हैं। वन में पशुओं की रक्षा में इनका बड़ा हाथ समझा जाता है अतः इनका पूजन धूप-दीप, सिन्दूर, लाल कपड़ा (साल्हु) और पकवान से किया जाता है। जालपा का मन्दिर कहीं नदी या नाले के समीप होता है। शीतला हर बीमारी का निवारण करती है। बन्नी देवी का मन्दिर तुंदाह क्षेत्र में है। इसकी मान्यता जनजातीय क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र के लोगों में भी है। कलहौली देवी त्रेठा परगना में है। चौंड की मान्यता विभिन्न क्षेत्रों में है। आदि-शक्ति का मन्दिर छतराढ़ी और गूं क्षेत्र में है।

सतीप्रथा पहाड़ों में भी प्रचलित थी अतः कहीं-कहीं सती के मन्दिर भी स्थापित हैं।

ब्रह्माणी—ब्रह्माणी का केवल मात्र मन्दिर भरमौर में हैं।

द्वितीय वर्ग

द्वितीय वर्ग में अर्धमानव आकृति में उकीरे अर्धमानव देवता हैं। ये देवता भैरों (भैरव) और नारसिंह (नृसिंह) हैं। नृसिंह का मन्दिर भरभौर में है। भैरव को घर या मन्दिर के बाहर एक चबूतरे पर गोल पत्थर रखकर दर्शाया जाता है।

नारसिंह रात को श्वेत वस्त्र धारण किए घूमता बताया जाता है। इसको यौन क्रिया का सशक्त देवता माना जाता है। विश्वास है कि यह अकेली औरत की खोज में रहता है। भैरव स्त्रियों को हानि पहुंचाता है। जादू-टोने में भी भैरव और नारसिंह हानिकारक कार्य में प्रयोग किया जाता है। ये दोनों देवते शान्ति-विरोधी हैं। बने-बनाये कार्य में बाधा डालना इनका मुख्य कार्य है।

तीसरा वर्ग

तीसरा वर्ग राक्षस देवताओं का है। ये राक्षस देवते ही स्त्री और पुरुष दो श्रेणियां हैं। पुरुष श्रेणी में जल बताळ, चुंधु, लौंकड़ा तालङ, मतड़ा, रागस, जटीधार, तोरल इत्यादि हैं।

जल बताळ—जल पर रहने वाला देवता है। यह मनुष्य को हानि पहुंचाता है।

चुंधु—यह देवता भी भले कामों में बाधक है। इसे जादू-टोने से वश में करके गाय के दूध को चोरने में लगाया जाता है। यह गाय के दूध को पी जाता है। दांतों से गाय के स्तनों को भी हानि पहुंचाता है। इसका कद बहुत ही छोटा बताया जाता है। सिर पर लम्बी और नोकदार टोपी पहनता है। लम्बी और

सफेद दाहड़ी बताई जाती है। शरीर पर लम्बा ऊनी चोला पहनता है।

लौंकड़ा—यह भी जल में निवास करता बताया जाता है तथा स्त्रियों को हानि पहुंचाता है।

तालङ—तालङ भी राक्षस वर्ग का देवता है। इसकी मान्यता के लिए कही-कहीं मन्दिर हैं। भरमौर में अंदराळ नामक गांव में इसका मन्दिर है।

मतड़ा—कहीं-कहीं नाग के मन्दिर के साथ इसके मन्दिर हैं। चन्हौता की बणी में इन्द्रु नाग के साथ ही इसका भी मन्दिर है। इसको ऊनी भेडु (मेंढा) की बलि दी जाती है इसे सत्तू भी चढ़ाये जाते हैं।

रागस—रागस के भी मान्यता के लिए मन्दिर हैं। चन्हौता के लामु गांव में इसका मन्दिर है।

जटीधार—जटीधार भी राक्षस का देवता है इसका 'जांधर' में कहीं मन्दिर है।

तोरल—इस देवता का जोत पर मन्दिर है। इसकी मान्यता इतनी व्यापक है कि इस देश का जोत पर अपना क्षेत्र है जिसमें पवित्रता रखना अनिवार्य है। यहां कूड़ा-करकट और अन्य प्रकार के गन्द को एक जगह रखकर दफ़ना दिया जाता है। जूठन को उसी समय साफ किया जाता है। मनुष्य की तो बात ही क्या कुत्ते के मुंह को भी खाने-पीने के बाद पानी से साफ कराया जाता है। उस क्षेत्र में जूता तक ले जाना विवर्जित है। गाली-गलौच करना भी वर्जित है। इस प्रथा को 'छहोत' प्रथा कहते हैं।

नारी श्रेणी में जोगनी, बळा और चुड़ैल हैं।

चौथा वर्ग

पितृ-देवता—चौथे वर्ग में पितृ देवता हैं। पितृ देवता में 'औतर' मुख्य हैं। औतर निःसन्तान मरे मनुष्य की भटकती आत्माएं हैं। इनकी मूर्तियों को उकीरा जाता है तथा समय-समय पर पूजन किया जाता है ताकि वे अपने परिवार को शान्ति पहुंचाये। इनका पूजन घी-दूध से किया जाता है।

पांचवां वर्ग

पांचवें वर्ग में 'नौण' देवता हैं। पानी के पनिहार पर बावली के झरने के ऊपर या आस-पास बड़ी पत्थर-शिलाओं पर विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियां उकीरी रहती हैं। इनका भी पूजन किया जाता है। 'नौण' मूर्तिकला के विषय प्रायः पौराणिक हुआ करते हैं। इनमें विष्णु भगवान् के दस अवतार, नवग्रह, सूर्य, वरुण, पांच पाण्डव, लव तथा कुश, राम-लक्ष्मण तथा सात नदियां या गंगा यमुना।

पनिहार पर लगी शिला के ऊपर प्रायः सूर्य या वरुण की मुर्ति उकीरी होती है। उसके नीचे के विभिन्न खण्डों में उपरोक्त देवी-देवताओं को विषय अनुसार दर्शाए जाने की प्रथा है। छतराढी के नौण पत्थरों पर इन देवी-देवताओं की उकीरी मूर्तियां एक उत्कृष्ट उदाहरण है। बस्सु परगना के तागी गांव के पनिहार प्रस्तर शिला पर विष्णु के दस अवतारों को मूर्तरूप दिया गया है। तुर गांव में भी इस प्रकार के नौण उकीरे गए हैं। चम्बा के भूरिसिंह संग्रहालय में इस प्रकार के नमूने देखे जा सकते हैं।

गद्दी त्यौहार और उत्सव

गद्दी उत्सवों और त्यौहारों में प्रसिद्ध वर्गीकरता के आधार पर निम्नलिखित हैं।

सामाजिक त्यौहार	: ढोलरु, बसो, पुत्रोड़ु, सैरी, लोहड़ी
धार्मिक त्यौहार	: होली, शिवरात्रि, जन्माष्टमी और गुगैहळ।
जात्रा उत्सव	: विभिन्न यात्राएं और उत्सव।
अन्य धार्मिक उत्सव	: नवाळा, कथा, ऐंचली, गुसैंतण।
पैत्रिक श्रद्धा के लिए	: श्राद्ध और चौवर्षी।

इनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है।

ढोलरु—चैत मास की संक्राति को यह त्यौहार मनाया जाता है। गद्दी क्षेत्र में हर सक्रांति को महत्व दिया जाता है। ढोलरु भी इसी तरह मनाया जाता है परन्तु प्रवासी क्षेत्र में इसकी अधिक महत्ता नहीं। इसका कारण स्पष्ट है कि अधिकांश गद्दी जनता अपने घरों में नहीं होती अतः इस उत्सव का विशेष महत्व नहीं। दूसरा बड़ा कारण यह भी है कि डूमणा जाति के लोग चम्बा तहसील के निचले भागों और भटियात तहसील में अधिक पाये जाते हैं। चैतमास का नाम वे गाकर सुनाते हैं तथा अन्य वीरगाथाओं का वर्णन करते हैं अतः इसकी धूमधाम कहीं-कहीं गद्दी अप्रवासी क्षेत्र में दिखाई देती है।

बसो—समूचे गद्दी क्षेत्र का बसो (वैशाखी) त्यौहार बहुत महत्व का है। इस दिन गद्दी जनता हर्ष व उल्लास मनाती है। इस दिन की प्रतीक्षा उत्सुकता से की जाती है। प्रायः सारा प्रवासी क्षेत्र यही इच्छा करता है कि यह दिन गदेरन क्षेत्र में जाकर अपने घर में मनाया जाय। गृहणी इस दिन के लिए अपने घरों को लीप-पोत कर सजाती है। घर की 'मकोल' से सजावट की जाती है। मकोल एक प्रकार की सफेदी मिट्टी होती है जो घरों को सफेदी करने के काम लाई जाती है। पिदंड़ी, एक प्रकार की कोदे की टिकियां है जिन पर छाछ छिड़क कर एक टोकरी में ऊनी कपड़े से ढांपकर रख लिया जाता है।

दो या तीन दिन के बाद इन टिकियों पर सफेदी छा जाती है तथा चखने पर थोड़ी खटास देने लगती है। टिकियों को साफ-सुथरे ढंग से विशेष वृक्षों के पत्तों की तह में रखा जाता है। इस प्रकार टोकरी में पत्तों की तीन-चार परतों में रखा जाता है। दो-तीन दिन बीतने पर 'बसो' के दिन इसे दूध में मिट्ठा मिलाकर खाया जाता है। इस दिन का यह विशेष खाद्य पदार्थ होता है इसे सगे सम्बन्धियों में बांटा जाता है।

इस दिन विवाहित लड़कियां और बहनें अपने मायके पहुंचती हैं तथा मिल-जुल कर इस त्योहार को मनाया जाता है। लड़कियां गिद्धा और 'डंगी' डालती हैं। डंगी एक प्रकार का औरतों का समूह नृत्य है। डंगी दायरे में नाची जाती है। साथ-साथ में गाना भी गाया जाता है। लोकगीतों में सर्वप्रथम गाया जाने वाला गीत ब्रषेड़ी (बरहेड़ी) है जो विरहगान है। किस प्रकार एक लड़की मायके से अपने भाई के आने की प्रतीक्षा करती है और अपनी सास द्वारा ढाए जुल्मों का वर्णन करती है जिसका वर्णन लोकगीतों के सन्दर्भ में इसी पुस्तक में किया जाएगा।

पुत्रोड़ु और सैरी—पुत्रोड़ु भादो मास में मनाया जाने वाला एक त्योहार है। इस दिन लोग कचालु के पत्तों के पुत्रोड़ु (एक विशेष प्रकार की रोटीनुमा तवे पर तैल से तली सब्जी) बनाते हैं। उन्हें आपस में बांट कर खाया जाता है तथा पितरों से निमित्त अर्पित किया जाता है। गद्दी लोग इस त्योहार को धूमधाम से मनाते हैं। सैरी की अपेक्षा प्रवासी क्षेत्र में इसका विशेष महत्व है। इसका बड़ा कारण यह है कि प्रवासी लोगों को जांधर जाने की जल्दी होती है अतः वे इस त्योहार से अपनी फसलें काटना भी शुरू करते हैं। सैरी तक तो कई लोग प्रस्थान भी कर जाते हैं। अतः इस दिन इस दिवस को खूब धूमधाम से मनाया जाता है।

सैरी—यह त्योहार असूज मास की सक्रांति को मनाया जाता है। यह फसल काटने का त्यौहार है। इस दिन हर फसल के सिट्टों को लेकर एक थाली में डाला जाता है। उसमें धूप-दीप और अन्य पूजन सामग्री डाली जाती है। कौवा बोलने से पहले प्रातःकाल इससे बैलों का पूजन कराया जाता है। इस थाली को बैलों के माथे से लगाया जाता है। इसका यही अर्थ हुआ कि फसल के उपजाने से बैलों का प्रमुख सहयोग होता है। इसका पूजन परिवार के सभी सदस्य बारी-बारी से करते हैं। फिर इसे बाजदार (बादक) को दाने और रोटी डालकर दिया जाता है। पितरों से निमित्त रोटी और दानों का पूजन होता है जिसे पुरोहित आकर ले जाते हैं। सैरी को विशेष महत्व अप्रवासी क्षेत्र में दिया जाता है। 'बसो' के बाद यह विशेष त्योहार है।

लोहड़ी—जनजातीय लोगों में यह त्यौहार भी कम महत्व का नहीं। इस दिन जहां प्रवासी-जन अपने परिवार से बिछड़े रूप में होते हैं। वहां अप्रवासी-जन

अपने घरों में इकट्ठे होते हैं। यह त्योहार हर वर्ग में विशेष महत्व का है। यह सर्दियोंकात्यौहार है अत: इसे हर स्थान पर गर्म खाद्य पदार्थों की तैयारी से मनाया जाता है। हर घर में चावल और माश की खिचड़ी तैयार की जाती है। इसे घी से खाया जाता है। यह माघ मास की संक्रांति का विशेष दिवस है अत: इस मास का नाम 'बासबारो' द्वारा सुना जाता है। 'बासबारे' भाटड़े की तरह की वेशभूषा में घर-घर जाकर माघ-मास का नाम सुनाते हैं तथा इवज में अन्न के दाने, नमक, घी और माश की दालें लेते हैं। वे दशरथ द्वारा मारे गये श्रवण कुमार का वर्णन करते हैं। यह गाथा इस बात का संकेत देती है कि घोर पाप का भी मकर-संक्राति नहाकर और दान देने से मोक्ष प्राप्त होता है। ये बासबारे जोगी जाति के लोग ही होते हैं। ये आठ दिन घर-घर घूमकर 'श्रवणकुमार' की गाथा सुनाते हैं। माघ मास का नाम सुनाते हैं तथा दाने मांगते हैं। बहुत से लोग अपने मृतक परिवारों की अस्थियां हरिद्वार जाकर इसी दिन बहाते और मकर-संक्रांति का स्नान करते हैं।

होली—'गदयार' क्षेत्र में होली का भी विशेष महत्व है। इस दिन हर गांव में लकड़ियां एकत्रित कर होला जलाया जाता है। संध्या समय इस होले को प्रज्वलित किया जाता है। आग की लपटें निकलने पर धूप-दीप और जल से आग का पूजन किया जाता है। आग में मक्की के खड्डे (भूनी मक्की, सिपूल के खड्डे और भुने अन्य अन्न की आहुति दी जाती है। खड्डे का प्रसाद एक-दूसरे में बांटा जाता है। इस दिन चूल्हे के ऊपर की कालिख (करा) साफ की जाती है। उसे होली में डाल दिया जाता है। आग की लपटें जलने पर ज़ोर-ज़ोर की तुमुल ध्वनि की जाती है। 'हियूंद गो वसंद आ···' इत्यादि हर्ष-ध्वनि से प्रकट होता है कि जनजातीय जनता सर्दी से तंग आई होती है तथा अब बसंत (गर्मी के मौसम) की कामना करती है। सर्दी के मौसम को गाली-गलौच से विदा किया जाता है।

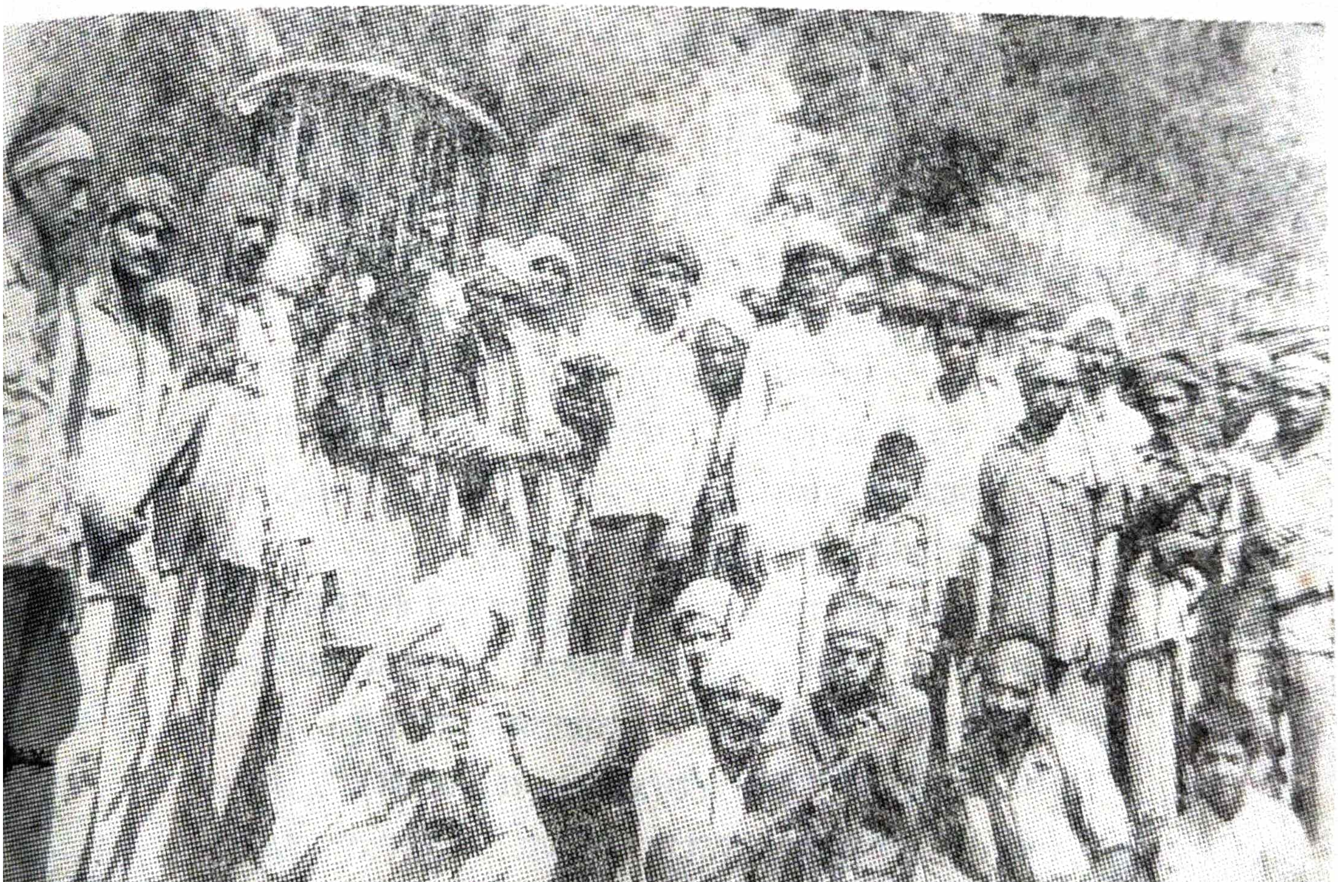
हरणात्र—आग के बुझते ही गांव के युवक किसी देवालय में जाकर हरणात्र के स्वांग सजाते हैं तथा जुलूस के रूप में घर-घर जाकर स्वांग नचाते हैं। हरणात्र का विस्तार से विवरण इसी पुस्तक में अन्यत्र 'लोकनाट्य' के अंतर्गत किया जाएगा।

शिवरात्रि—शिवरात्रि का त्यौहार होली से पूर्व मनाया जाता है। गद्दी-जन शिव अराधक हैं अत· गदेरन क्षेत्र के लिए यह विशेष महत्व का त्यौहार है। लोगों का विश्वास है कि इस दिन शिवजी पाताल-लोक से कैलाश पर्वत पर आ जाते हैं इसलिए इस दिन जन-जातीय लोग व्रत रखते हैं। इस दिन एक विशेष प्रथा प्रचलित है। इस दिन सायंकाल 'कंरगोरे' की कांटेदार टहनी दरवाजे के ऊपर लगाई जाती है। ऐसा विश्वास है कि इस दिन जोगनी (योगिनी) या डायन दरवाजे को खोले तो उससे उंगली का छेदन हो जाता है अत: बिना हानि

पहुंचाये भाग जाती हैं। इस कांटे को होली के अवसर पर आग में जला दिया जाता है।

जन्माष्टमी—यद्यपि लोग शिव-भक्त हैं फिर भी श्रावण-भादों में पड़ने वाली जन्माष्टमी को समानरूप से मनाते हैं। विष्णु भगवान का पूजन होता है तथा व्रत रखा जाता है।

गुगैहळ—जन्माष्टमी के आठ दिन पूर्व गुगैहळ का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। लोक-विश्वास और लोकगीतों के आधार पर प्रकट होता है कि गुग्गा जिसे राणा मंडलीक भी कहा जाता है राजस्थान की रियासत गढ़मालु का राजा था। उसकी बहन गुगड़ी थी। यह शूरवीर था तथा कई लड़ाइयां लड़ीं। कई राजाओं को एकछत्र के अधीन लाया था। कहीं-कहीं गुग्गे की मूर्ति को बिना सिर के दर्शाया जाता है। छत्र को गुग्गे की मढ़ी से निकालकर आठ दिन तक गांव-



गुगैहळ—एक दृश्य

गांव में घुमाया जाता है। लोग बड़ी श्रद्धा से गुग्गे के जुलूस में शामिल होते हैं। उसका 'चेला' धूप-दीप तो कर सदा ही उसके साथ-साथ चलता है। कहीं-कहीं कांपता है और श्रद्धालुओं को 'वाक' देता है। उसका चेला जोगी जाति का होता है। कभी-कभी गुगड़ी को (एक लोहे की छड़ी जो उसकी बहन का प्रतीक माना जाता है) को राणा की खोज के लिए छोड़ा जाता है। कहा जाता है कि एक दिन गुग्गा बंगाल गया। उसे वहां की औरतों ने मोह लिया, उधर उसकी राजधानी पर दुश्मनों ने आक्रमण किया। गुगड़ी ने सेना का संचालन किया तथा गुग्गे की खोज की। यह छत्र आठ दिन तक गांव-गांव और घर-घर घुमाया जाता है। जन-माष्टमी के दिन आठ घर मांगकर इसे 'मढ़ी' में पुन: स्थापित किया जाता है। सारी रात जागरण और पूजन किया जाता है।

जात्रा उत्सव

गद्दी क्षेत्र में जात्रा-उत्सव विभिन्न स्थानों में विभिन्न अवसर पर मनाया जाता है। 'जात्रा' शब्द विशेष उत्सव से सम्बन्धित है जिनका वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

1. प्रथम श्रृंखला में वे मेले आते हैं जो निश्चित तिथि को मनाये जाते हैं। हर वर्ष निश्चित तिथि आने पर इस प्रकार का जात्रा-उत्सव कालान्तर से मनाया जा रहा है। इस प्रकार के जात्रा-उत्सव को भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(क) दिन को निश्चित तिथि को मनाये जाने वाले उत्सव।

(ख) रात को मनाए जाने वाले जात्रा उत्सव जिन्हें पुन: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

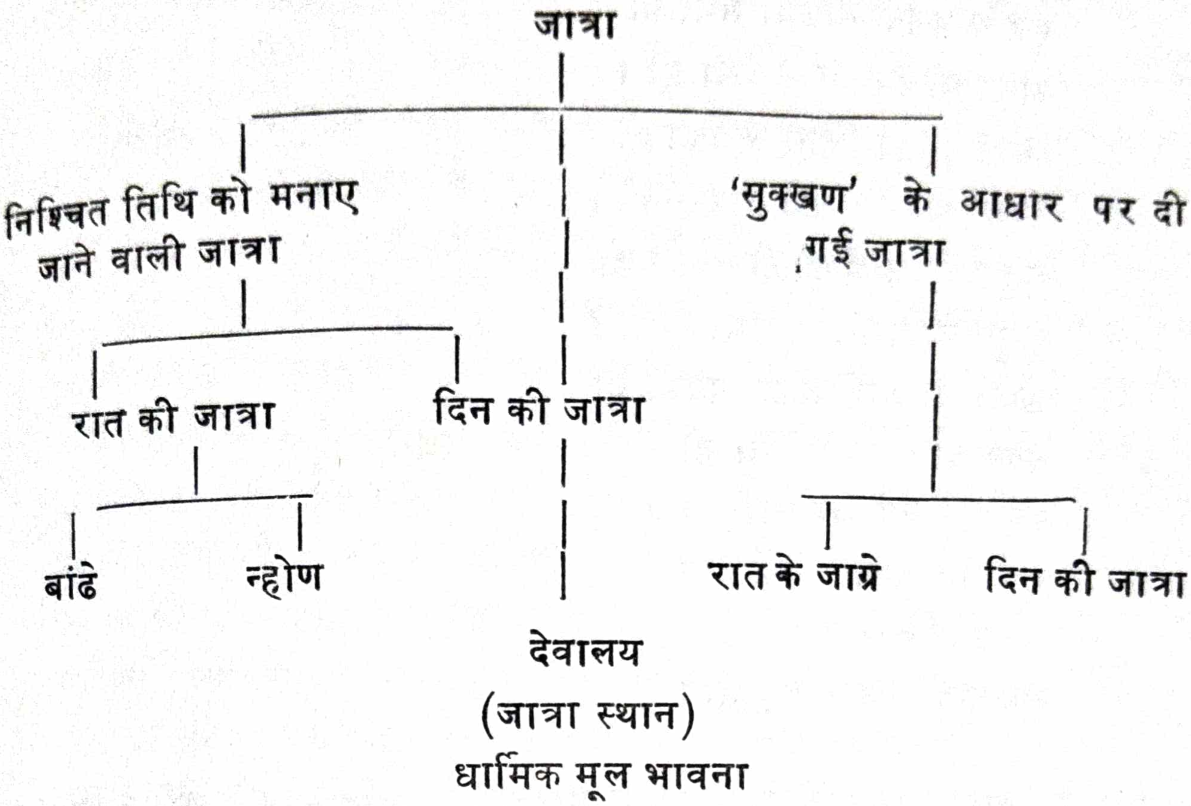
1. बांढा उत्सव और 2. न्होण उत्सव।

2. दूसरे प्रकार के जात्रा-उत्सव दु:ख और सुख के समय लोगों द्वारा मुसीबत को टलने या आन्तरिक आनन्द के उपलक्ष्य में मनाये जाते हैं। इस प्रकार के जात्रा-उत्सव को भी दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) रात के समय के जागरे (रतजगे या जागरण)

(ख) दिन की यात्रा (जात्रा)

उपरोक्त जात्रा विभाजन को अग्रलिखित चित्र-वृक्ष द्वारा दर्शाया जा सकता है—



उपरोक्त जात्रा-उत्सव विशेषकर गदेरन क्षेत्र में मनाया जाता है—

1 (क) अब प्रथम शृंखला में दिए गए निश्चित तिथि को होने वाले जात्रा-उत्सव का वर्णन किया जाता है। सर्वप्रथम इस प्रकार के उत्सव अप्रवासी क्षेत्र में मनाए जाने का ढंग और तिथि का वर्णन किया जाता है। जहां प्रवासी क्षेत्र के लोग इन दिनों अपनी वापसी यात्रा में तत्पर होते हैं वसो के बाद वैशाख मास के आरंभ में ऐसे जात्रा-उत्सव का मानो तांता-सा लग जाता है। अप्रवासी क्षेत्र गूं में पांच वैशाख से नौ वैशाख तक लगातार विभिन्न स्थानों पर देवालयों में यात्रा-उत्सव मनाया जाता है। कुछ समय पूर्व ये मेले सारे क्षेत्र के लिए आकर्षण के कारण थे परन्तु धीरे-धीरे इनकी महत्ता कम होती जा रही है। पूरे पांच दिन लोग इसी उत्सव में लग जाते थे। प्रतिदिन वाजदार (वाद्ययंत्री) ढोल और शहनाई से जात्रा ले जाते थे। दिन भर लोग नाचते और कूदते थे। शाम को उसी तरह बाजे-गाजे सहित अपने-अपने घरों को वापस होते थे। नौ वैशाख को स्थानीय शक्ति मन्दिर में मेला लगता था। क्षेत्र के लोग अपनी स्थानीय वेशभूषा में नाचते और गाते थे। लोग पंघूड़े पर झूटते थे। दुकानदार बाजार लगाते थे। सांयकाल को चेला कांपता और देवी की ओर से 'वाक' देता था। आजकल यह जात्रा-उत्सव केवल मात्र मनाया जाता है। मेले के अन्तिम दिन शहनाई में निम्न लोकगीत की धुन अलापी जाती थी जिसे सुन हर जवान और बूढ़ा झूम उठत था।

गुड़ के चमके भाइया मेघा हो
राणी चम्बयाळी रे देसा हो।
किहां गुड़का-किहां चमका हो
अम्बर भरोरा घणे तारे—हो।
कुतुए दी आई काळी बदळी हो
कुतुए दा वार्षिया मेघा—हो ?
छाती दी आई काळी बदली हो
नैणा दा वर्षिया मेघा हो।
सुकरात कुड़ियो चिड़ियो हो
सुकरात राजे रे बेढ़े हो।
सुकरात कुड़ियो.........
सुकरात राजे रे बेढ़े हो।

यह गान चम्बा की रानी के बलिदान सम्बन्धी है। चैत मास के अंतिम दिनों रानी के बलिदान के उपलक्ष में 'सूही' के मेले का आयोजन होता है। जूं ही यह मेला समाप्त होता है गूं क्षेत्र की जात्रा आरम्भ होती है मानो वही गाना चम्बा से प्रतिध्वनित होकर यहां पहुंच जाता है।

जब रावी नदी के इस ओर का जात्रा उत्सव समाप्त होता है तो रावी नदी के उस पार वस्सु क्षेत्र में जात्रा के समय शहनाई और ढोल की मधुर ध्वनि गूंजित होने लगती है। अब वहां क्रमश: पन्द्रह वैशाख तक मेले का आयोजन होता है। सर्वप्रथम वस्सु के मनालीनुमा गांव कुंडी में जात्रा-उत्सव आरम्भ होता है। लोग शहनाई और ढोल की तान में झूम उठते हैं। वैसे ही उनके पैरों की थिरकन से नृत्य आरम्भ होता है लोग रंग-बिरंगी पोशाक में गाते और नाचते दिखाई देते हैं। इस परगने का अन्तिम जात्रा-उत्सव सतोहर जात्रा है जो अब भी कुछ आकर्षण लिये है।

लोगों से बातचीत करने पर पता लगता है कि इन मेलों के मनाए जाने की भी विशेष भूमिका थी। ऐसा कहा जाता है कि पुराने ज़माने में अधिक बर्फ पड़ती थी। लोग घरों में पड़े रहते थे। जूं ही मौसम खुलता लोग जात्रा-उत्सव के माध्यम से एक-दूसरे से मिल लेते थे। मेले समाप्त होने पर खेती-बाड़ी का काम जोरों से आरम्भ हो जाता अत: वे फिर अपने काम में व्यस्त हो जाते। काफी वर्ष पहले इस समय अप्रवासी क्षेत्र के लोग भी जांधर जाते होंगे अत: वापस आने पर जात्रा-उत्सव के माध्यम से आपस में मिल लेते होंगे।

अब धीरे-धीरे यह जात्रा उत्सव लुप्त होता जा रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण जीवन में जटिलता का आ जाना और धार्मिक भावना कम होना है। अन्य

साधन तो शहरों की तरह उपलब्ध नहीं हुए जो इन जात्रा-उत्सव में शिथिलता लाएं।

इसी श्रेणी में आने वाले जात्रा-उत्सवों में प्रवासी क्षेत्रों के छोटे-छोटे उत्सवों के अतिरिक्त प्रसिद्ध मेले जैसे छतराढ़ी जात्रा, भरमौर जात्रा और कुगती की केलंग जात्रा की जात्रा है जो विशेष प्रसिद्ध जात्रा उत्सव है और अपने महत्व को कालान्तर से बनाए हुए हैं। प्रवासी क्षेत्र का पूर्ण जात्रा-उत्सव मणिमहेश जात्रा-उत्सव से ओतप्रोत है। यह सकल यात्रा उत्सव मणिमहेश मेले से इस प्रकार आगे या पीछे निश्चित है ताकि मणिमहेश आने वाले श्रद्धालु इन जात्रा-उत्सवों का भी आनन्द उठा सकें। दूसरा सबसे बड़ा कारण यहां की जनता का प्रवासी होना है। इन उत्सवों को मनाकर यहां के निवासी अपनी फसलों को एकत्रित कर 'जांधर' को प्रस्थान कर जाते हैं। इस उत्सव की महत्ता बने रहने का सबसे बड़ा कारण मणिमहेश यात्रा का होना और सरकार की देखरेख भी है। साथ ही सरकार की ओर से कई प्रकार के कार्यक्रम मेले की रौनक बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। यही कारण है कि दूर-दूर से व्यापारी, फोटोग्राफर और

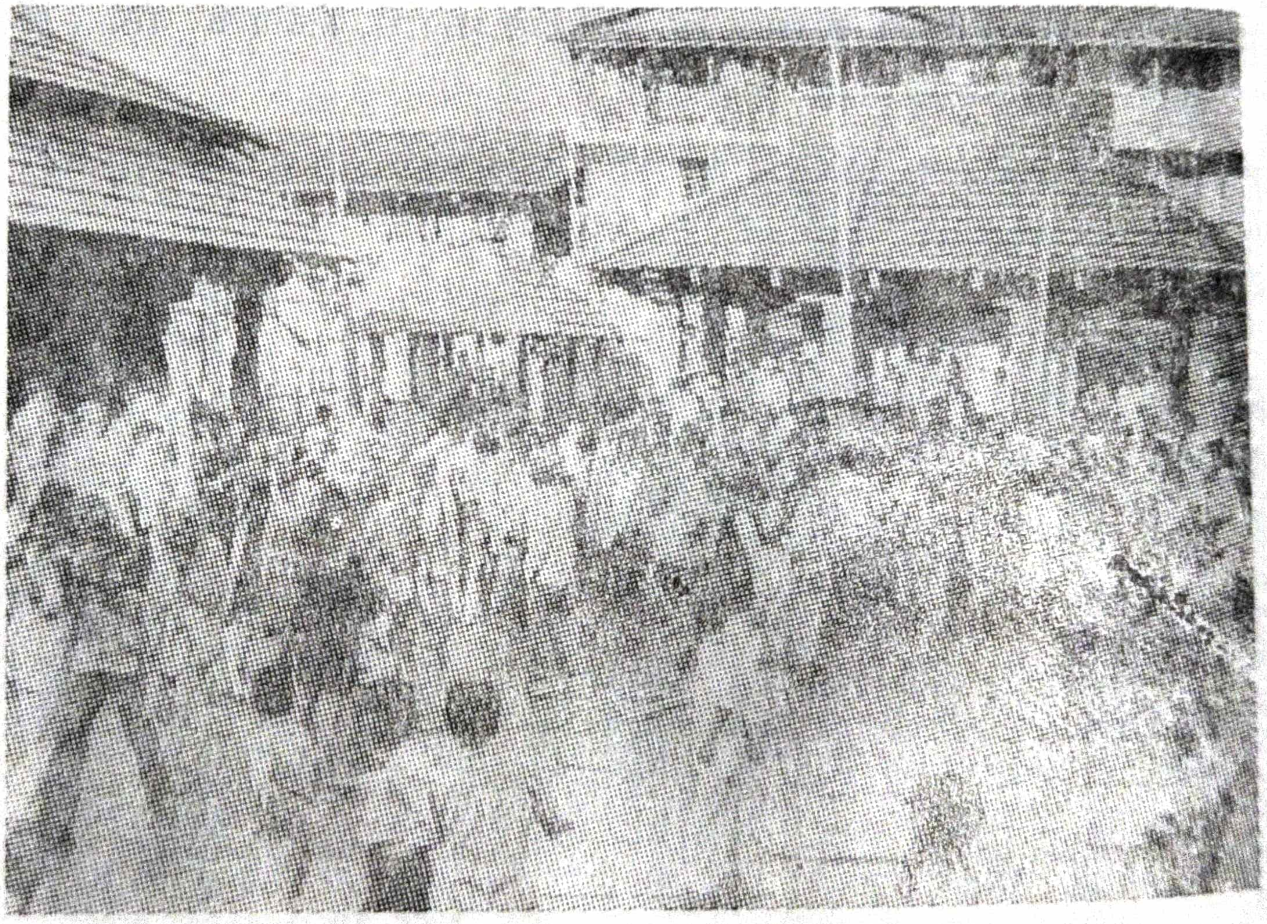


छतराढ़ी गांव की मेले के समय रथयात्रा

अन्य व्यावसायिक संस्थाएं भी इन जात्रा-उत्सवों की शोभा बढ़ाती है।

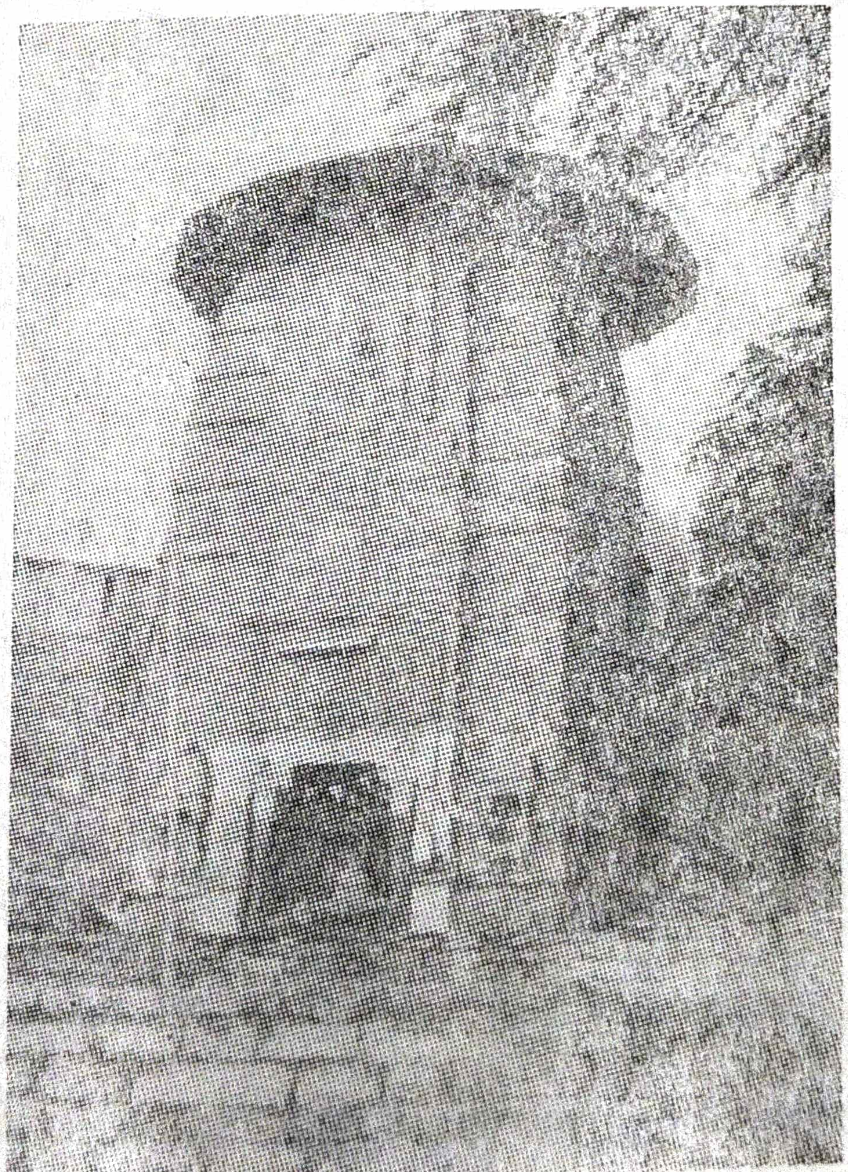
संक्षिप्त से इन जात्रा-उत्सवों का क्रमशः विवरण प्रस्तुत है।

छतराढ़ी जात्रा—छतराढ़ी एक सुरम्य स्थान है। यह अंशतः प्रवासी क्षेत्र है। चम्बा से लगभग 80 कि० मी० की दूरी पर मोटर सड़क पर लूण नामक स्थान पर यात्री बस से उतरकर 4 मील की पगडण्डी के द्वारा पैदल छतराढ़ी पहुंचता है। अब जीप से भी छतराढ़ी पहुंचते हैं। छतराढ़ी एक ऐतिहासिक स्थल है। यहां पर सातवीं शताब्दी का राजा मेरुवर्मा द्वारा बनाया शक्तिदेवी का मन्दिर है। मन्दिर में उसी समय की बनी अष्टधातु की मूर्ति है। देवी का मन्दिर भी कलात्मक है। मन्दिर, लकड़ी की बनी वस्तु कला की एक अनुपम कलाकृति है। चारों ओर लकड़ी पर बनी चित्रकला हुई है। देवी-देवताओं, यक्षों और गन्धर्वों के चित्र खुदे हैं।

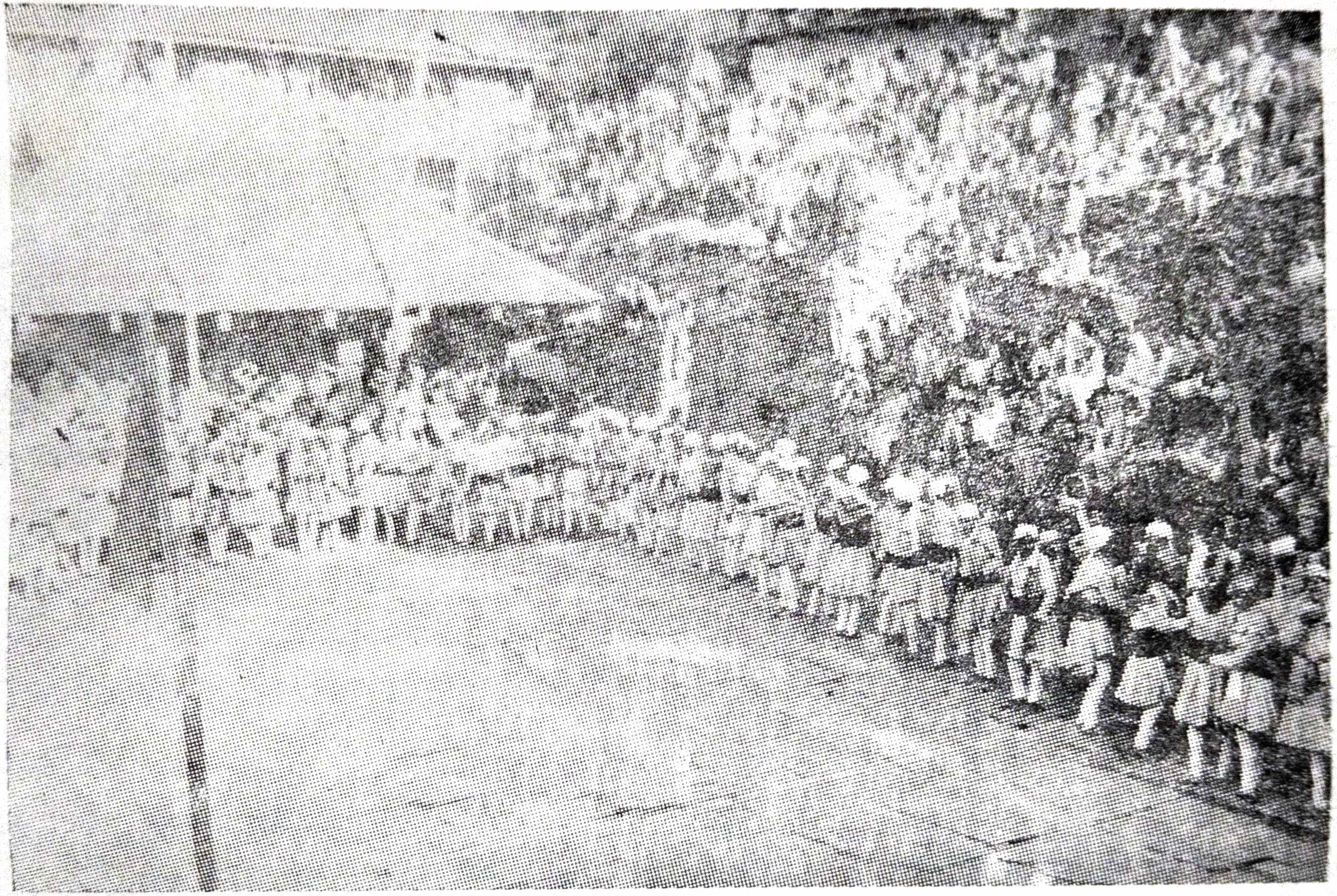


छतराढ़ी मेले के आरम्भ में देवी-राक्षस युद्ध।
मुखौटेधारी राक्षस और देवी मुद्राओं में गद्दीजन

जब मणिमहेश जात्रा भाद्रपद राधाष्टमी को सम्पन्न होती है तो उसी दिन प्रातः एक पुजारी मणिमहेश झील से पानी का कमंडलु भर कर लाता है और उसी दिन उसी जल से देवी की मूर्ति को स्नान कराया जाता है। तत्पश्चात् मूर्ति को विभिन्न परिधानों और आभूषणों से अलंकृत किया जाता है। दूसरे दिन प्रथम मेला आरंभ होता है तथा उसी दिन सायं बटुक महादेव का रथ निकाला जाता है। मन्दिर के प्रांगण में चार मुखौटेधारियों का नृत्य होता है। इन चार मुखौटे-धारियों में एक मुखौटेधारी स्त्री के वेश में देवी का प्रतिनिधित्व करता है। अन्य तीन राक्षसों के प्रतिनिधि होते हैं। देवी का राक्षसों से युद्ध दर्शाया जाता है जिसमें देवी की विजय दिखाई जाती है। इस प्रकार सत्य की असत्य पर विजय होती है।



मणिमहेश का 1200 वर्ष पुराना मन्दिर (भरमौर)



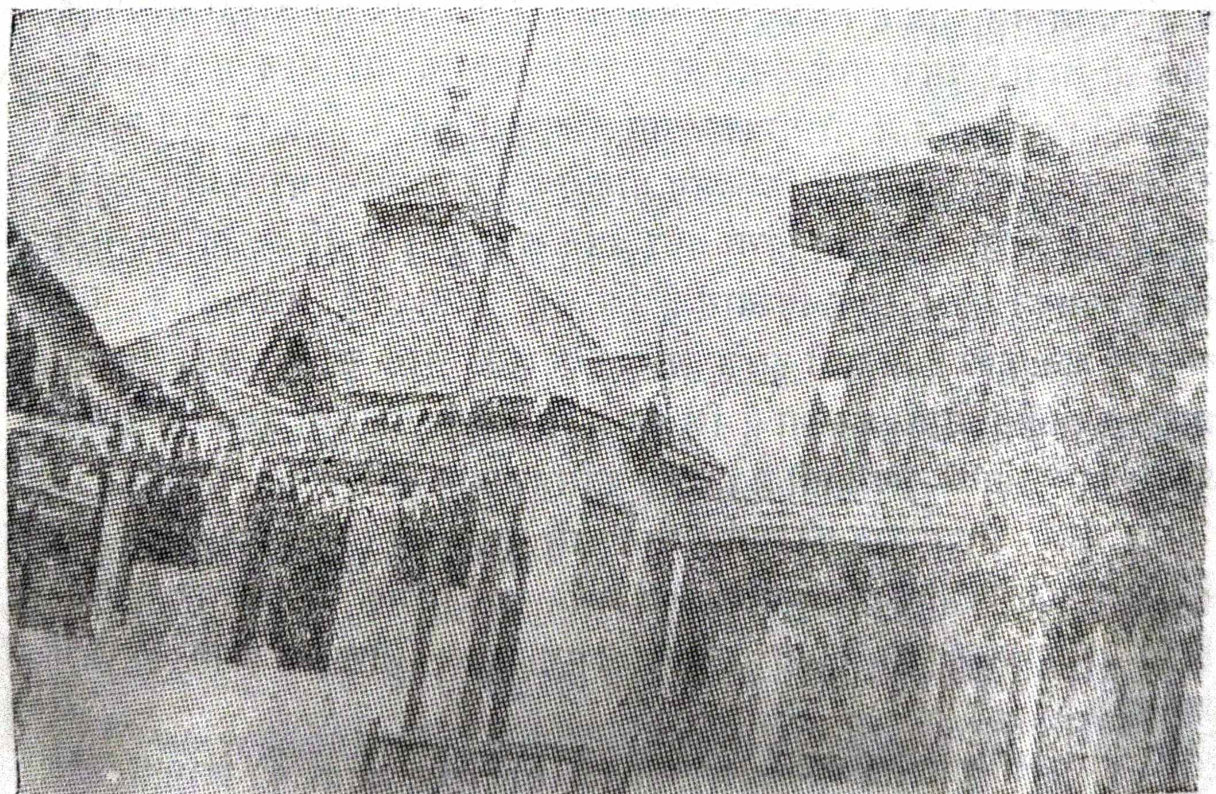
गद्दी-नृत्य—छतराड़ी मेले के समय

तीसरा और चौथा मेला काफी बड़ा होता है जिसमें असंख्य लोग भाग लेते हैं। प्रांगण में गद्दी नृत्य देखने योग्य होता है। स्थानीय लोग गद्दी-वेशभूषा में पूरे अनुशासन में नृत्य करते हैं। वे गद्दी चोला, चूड़ीदार पायजामा, नोकदार ऊनी टोपी जिस पर मोर की कलगी सजी होती है, दायरे में नृत्य करते जाते हैं। साथ ही बजंत्री अपने यंत्रों: नगारे, शहनाई और ढोल पर धुन अलापते जाते हैं। अनुशासन भंग करने वाले नर्तक या अन्य विघ्न डालने वाले व्यक्ति को बाहर निकाल दिया जाता है। यही कारण है कि छतराढ़ी नृत्य अपनी विशेषता लिये है। यह नृत्य भारत के नृत्यों में से एक है।

महिलाएं जात्रा के पांचवे दिन स्थानीय वेशभूषा में सामूहिक नृत्य के साथ-साथ लोकगीत की कड़ियां भी गाती जाती हैं।

पुराने समय जब आने-जाने के साधन कठिन होते थे, हजारों यात्री मणिमहेश यात्रा के बाद इसी रास्ते वापस जाते थे अतः छतराढ़ी जात्रा भी देख लेते थे। उस समय छतराढ़ी चम्बा-भरमौर मार्ग पर थी।

भरमौर जात्रा—भरमौर मणिमहेश जाने वाले यात्रियों के लिए मुख्य द्वार है। अतः जन्माष्टमी के आरंभ से ही यहां जात्रा उत्सव आरंभ होता है। क्रमबद्ध छः उत्सव मनाए जाते हैं। जैसे पहले लिखा गया है कि प्रवासी क्षेत्र का जात्रा-



भरमौर चौरासी का नृसिंह मन्दिर (दायें) नांगा बाबा की समाधी (बायें)

उत्सव मणिमहेश यात्रा से किसी-न-किसी तरह सम्बद्ध है । मणिमहेश यात्री अपना यात्रा क्रम इस प्रकार तैयार करते हैं कि जन्माष्टमी से आरंभ होने वाले इस जात्रा का भी लाभ उठा सकें । कहा जाता है कि कुछ वर्ष पूर्व केवल पांच मेले ही लगते थे परन्तु वहां रमे एक महा तपस्वी महातमा श्री श्री 108, श्री हरिकृष्णगिरि जी महाराज, जिन्हें लोग प्राय: नांगा बाबा से जानते थे, के समाधिस्थ होने पर उनकी स्मृति में छठी यात्रा का समारंभ हुआ ।

यहां का गद्दी नृत्य भी छतराढ़ी की तरह कम आकर्षक नहीं । सफेद ऊनी चोली, कमर में काला डोरा और सिर पर सफेद पगड़ी और कलगी कम शोभायमान नहीं । चूड़ीदार सफेद पायजामे और पैर की थिरकन से आनंदविभोर यात्री वहां ठहरने के लिए विवश हो जाते हैं ।

इसी जात्रा-श्रृंखला में भद्रवाह से आए मणिमहेश यात्रियों का एक अलग-सा मेला लगता है । वे भी वहां नृत्य करते हैं । उनका नृत्य अपनी प्रकार का हुआ करता है ।

मणिमहेश मेले की समाप्ति पर भरमौर के समीप स्थित ब्रह्माणी देवी जात्रा भी स्मरणीय है ।

कुगति जात्रा—कुगति भरमौर से मणिमहेश जाने वाले मार्ग पर सोलह मील की दूरी पर है परन्तु मणिमहेश जाने वाले यात्री भरमौर की आठ मील की दूरी से मणिमहेश चले जाते हैं । हड़सर नामक गांव से एक ओर का रास्ता मणिमहेश झील को जाता है दूसरा मार्ग कुगति को । कुगति यहां से आठ मील के फासले पर है । इन्हीं दिनों कुगति में भी यात्रा उत्सव होता है । कुगति में केलंग नाग मन्दिर है । लोगों में ऐसा विश्वास है कि केलंग नाग एक मेंढे के सींग पर कुगति पहुंचा जिसने वहीं रहने का निश्चय किया तथा अपने श्रद्धालुओं से मन्दिर निर्मित करने की इच्छा प्रकट की । लोक विश्वास है कि यह देवता कई व्याधियों का नाश करता है अत: गदेरन निवासी इसके मन्दिर जाकर लाल रंग का ऊनी पहरावा धारण करते हैं । ऐसी धारणा है कि केवल मात्र ऐसा पहरावा पहनने से ही कई प्रकार की व्याधियां नष्ट होती हैं । केलंग कलिहर नाग श्रेणी में लिया जाता है ।

1. (ख) में दिए रात को मनाए जाने वाले उत्सवों में (1) वांढा उत्सब और (2) न्होण उत्सव हैं । वांढा उत्सव का वर्णन इसी पुस्तक में विस्तार से 'लोक नाट्य' के अंतर्गत हुआ है अत: इस स्थान पर केवल न्होण का वर्णन ही किया जाएगा ।

मणिमहेश (स्थानीय मनिमहेश) न्होण—मणिमहेश जात्रा को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है : मणिमहेश जात्रा, मनिमहेश न्होण, डलन्होण तथा कैलाश जात्रा इत्यादि । कैलाश पर्वत भरमौर उपतहसील का चम्बा कैलाश है । जिसके दामन में एक झील है जिसे मणिमहेश या 'डल' कहते हैं । न्होण का अर्थ

रात को जागरण के बाद प्रातः स्नान करने से है अतः इस उत्सव को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। यह प्रसिद्ध उत्सव भाद्रपद राधाष्टमी तथा जन्माष्टमी को मनाया जाता है। जन्माष्टमी का पर्व, राधाष्टमी से पूर्व आता है अतः जन्माष्टमी का मेला वर्षा ऋतु से आरंभ होता है। इस उत्सव में दूर-दूर से श्रद्धालु सम्मिलित होते हैं। विशेषतः साधु-संत और जम्मू-कश्मीर की भद्रवाह तहसील के यात्री इसी पर्व पर आते हैं। इस उत्सव की सुविधा यह है कि सर्दी अधिक नहीं होती परन्तु असुविधा यह रहती है कि वर्षाऋतु होने के कारण रास्ते खराब हो जाने की सम्भावना बनी रहती है तथा वर्षाऋतु में बादल छाए रहने के कारण कैलाश पर्वत के दर्शन नहीं होते। मौसम ठीक हो तो पर्व बढ़िया रहता है। पक्ष परिवर्तन के कारण राधाष्टमी और जन्माष्टमी के पर्व जल्दी या देर से आते हैं अतः इसी कारण न्होण ठंडा और गर्म हुआ करता है। कभी राधाष्टमी पर्व भाद्रों मास के प्रथम सप्ताह को आरंभ होता है तो किसी साल असूज मास के प्रथम सप्ताह में। इतना अन्तर पड़ने पर स्वभावतः इस पर्व का अधिक ठंडा और अधिक गर्म होना स्वाभाविक है। यदि राधाष्टमी का न्होण अधिक ठंडा हुआ तो श्रद्धालु जन्माष्टमी को ही यह यात्रा करना श्रेयस्कर समझते है। जब कभी राधाष्टमी का पर्व गर्म हो तो श्रद्धालुओं की संख्या पचास-साठ हजार से भी अधिक हो जाती है। साधारणतया यात्री भरमौर में मणिमहेश के मन्दिर में अपनी श्रद्धा के फूल अर्पित करते हैं तथा 'चेले' द्वारा यात्रा की सफलता के लिए शुभकामनाएं प्राप्त करते हैं। भरमौर पहुंचने के चम्बा नगर से कई प्रकार के वाहन उपलब्ध हो जाते हैं। सरकार की ओर से बसों का विशेष प्रबन्ध होता है। अब मणिमहेश जाने वाले मार्ग पर भी कुछ किलोमीटर तक हड़सर गांव की ओर जीप चलने लग पड़ी हैं। कुली भी प्राप्त हो सकते हैं। मणिमहेश तक खच्चर रोड़ भी निर्माणाधीन है लेकिन अधिकांश यात्री भरमौर से आगे पैदल चलना ही श्रेयस्कर समझते हैं। ऐसी यात्रा पर व्यक्ति को स्वयं-निर्भर होना अत्युत्तम होता है। झील पर लकड़ी का प्रबन्ध होता है लेकिन इतने यात्रियों के लिए यह प्रबन्ध अपर्याप्त ही समझो। अतः आत्मनिर्भर लोग लकड़ी के गट्ठे भी सिर पर उठा कर स्वयं ले आते हैं ताकि कष्ट न हो। झील 14000 फुट की ऊंचाई पर स्थित है अतः वहां किसी प्रकार की लकड़ी का उपलब्ध होना असम्भव है।

भरमौर से चल कर यात्री हड़सर नामक स्थान में रात काटते हैं। हड़सर छोटा-सा गांव है। लोग अपने घरों को यात्रियों के लिए खोल देते हैं परन्तु इतने अपार संख्या के लोगों का घरों में समाना असंभव होता है। लोग भजन-कीर्तन में रात बिताते हैं।

दूसरे दिन लोग धनछो नामक स्थान में रात काटते हैं। धनछो एक निर्जन स्थान है। तीसरे दिन लोग झील पर पहुंचते हैं। रास्ते में बन्दर घाटी और भैरव

घाटी जैसे कठिन मार्ग और शिव करोतरी और गौरीकुंड जैसे पवित्र स्थल आते हैं। लोग गौरी कुंड और शिव करोतरी में अत्यंत ठंडे जल से स्नान करते हैं।

मणिमहेश में सारी रात जागरण, श्रद्धा और भजन-कीर्तन में काटी जाती है। प्रातः ही झील (डल) में स्नान कर लोग वापस आ जाते हैं। यदि मौसम अच्छा रहा तो शिव की परम कृपा समझो। मौसम खराब होने पर हल्की सी बर्फ-बारी हो जाना मामूली बात है। कैलाश पर्वत के दर्शन करना लोग अपना परम कर्तव्य समझते हैं। यह शुभकामना किसी-न-किसी तरह पूर्ण हो ही जाती है। प्रायः कैलाश चोटी बर्फ से ढकी रहती है। जब बादल ढलते हैं तो लोग हर्ष-ध्वनि करते हैं। इस प्रकार यह पर्व सम्पन्न होता है।

साहो जात्रा—साहो चम्बा से आठ मील के फासले पर एक प्रसिद्ध गांव है। यहां शिवजी का मन्दिर है। मन्दिर में एक विशाल लिंग है। लिंग के विषय में किंवदंती है कि इसका पार नहीं। यह तथ्य पौराणिक कथा से मिलता-जुलता है। पुराण में कहीं विवरण आता है कि शिव जी ने अपने आपको एक विशाल लिंग-सम प्रकाश के रूप में प्रकट किया। ब्रह्मा और विष्णु दोनों ने इसका पार पाना चाहा। ब्रह्मा ने केतकी के फूल को प्रमाण रूप में दिखाकर इसकी ऊंचाई का झूठा प्रमाण पेश किया। उधर विष्णु सूकर रूप में लिंग की गहराई का पार न पा सके। ब्रह्मा को इसकी असत्यता के कारण अपना सिर कटवाना पड़ा। यही लिंग मानो इसी पौराणिक कथा का प्रतीक है।

साहो में हर वर्ष मणिमहेश न्होण के दिन-रात को जागरण होता है। आस-पास के और चम्बा शहर के लोग अधिक संख्या में एकत्रित होते हैं। प्रातः लोग न्होण नहा कर अपने-अपने घरों को वापस जाते हैं।

त्रिलोचन महादेव न्होण—तीसरा न्होण उत्सव त्रिलोचन महोदव न्होण कम प्रसिद्ध नहीं। त्रिलोचन महादेव चम्बा से 26-27 कि० मी० की दूरी पर रावी नदी के दायीं ओर स्थित है। यहां त्रिलोचन महादेव का मन्दिर है। कहा जाता है कि शिव जी का एक चेला नदी में बहता हुआ इस स्थान पर पहुंचा। उसने लोगों को स्वप्न दिया कि उस स्थान पर शिव जी का मन्दिर स्थापित किया जाए। तब से नदी के किनारे शिव जी का मन्दिर स्थापित किया गया। इस लोक कथा का विवरण इस पुस्तक में लोक कथा के अंतर्गत किया जाएगा। यहां भी मणि-महेश न्होण के दिन न्होण उत्सव का आयोजन होता है। दूर-दूर से लोग उत्सव में भाग लेते हैं और प्रातः स्नान कर वापस जाते हैं।

धौलाधार झीलों का देश है। धौलाधार में 'लमडल', 'कालीरा डल' और 'नागेरा डल' जैसी कई झीलें हैं जिन्हें थोड़े-से व्यक्ति जानते हैं। ये झीलें इतने दुर्गम स्थानों पर हैं कि कुछ ही व्यक्ति यहां पहुंचते हैं। यहां भी श्रद्धालु उसी दिन पहुंचते है तथा स्नान कर वापस जाते हैं। 'लमडल' बलैण जोत (दर्रा) के पास

ही दो या तीन किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। यह झील लगभग तीन किलो मीटर लम्बी तथा पहाड़ी नदी-सी चौड़ी है। चारों ओर धवल श्रृंग पर्वतों से घिरी है। कुछ दूरी पर काली का डल तथा प्रसिद्ध क्वार्सी जोत के समीप ही नाग का डल है। जो मणिमहेश झील के परिमाप से कुछ कम है। गहराई में तो अपार ही प्रतीत होता है। ऐसा उसके नील-गगन पानी से अनुमान लगाया जा सकता है। यहां जात्रा के लिए धर्मशाला के लोग कुछ संख्या में पहुंचते हैं। शायद वह समय भी आएगा कि इन झीलों तक पहुंचने के लिए भी सुविधा होगी।

त्रेठा के दियोल नामक गांव के ऊपर जोत पर संघारू पास के समीप ही एक सुन्दर झील है। यहां भी क्षेत्रीय लोग न्होण नहाते हैं।

इन झीलों के प्राकृतिक दृश्य अवर्णनीय हैं। जो व्यक्ति इन झीलों के दर्शनार्थ पहुंचते हैं। वे अछूती प्रकृति का आनन्द लेते हैं तथा उनके मानस में उस प्रभु की महिमा की छाप अमिट असर कर जाती है जिसका पार किसी ने नहीं पाया। इन गगन-चुम्बी पर्वतों का अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य श्रद्धालुओं को सदा आकर्षित करता है।

2 (क) अन्त में जात्रा के वर्गीकरण के अन्तर्गत 2 (क) में वर्णित ऐसे जात्रा-उत्सव का वर्णन किया जाता है। जो लोगों द्वारा दुःख या सुख के समय सुक्खण (प्रतिज्ञा) रूप में अर्थात् देवताओं के प्रति किसी समय कुछ भेंट देने की प्रतिज्ञा की गई है। मनुष्य अपनी कामना की पूर्ति हेतु ईश्वर या देवता से प्रार्थना करता है कि अमुक कामना यदि पूर्ण हुई तो उस अराध्य देवता को जात्रा देकर मनाएगा। उस अराध्य देवता के लिए उस समय जात्रा के अवसर पर कुछ विशेष वस्तु भेंटें चढ़ाने के लिए प्रतिज्ञा की जाती है। उदाहरणार्थ जात्रा के समय चांदी का छत्र, चांदी की जीभ, सिन्दूर की पुड़िया, बनावटी आंखें या अन्य वस्तु या अन्य किसी पशु की बलि देने का 'सुक्खन' के आधार पर प्रबन्ध होता है। इसी प्रकार उस अमुक देवता को कई प्रकार से प्रसन्न रखने के लिए मनाया जाता है।

ऐसे जात्रा-उत्सवों के लिए घर में पवित्रता से भोजन सामग्री तैयार की जाती है जिसे 'संज' कहा जाता है। उसे बाजे-गाजे के साथ अन्य श्राध्य वस्तु सहित ले जाया जाता है तथा मन्दिर में चढ़ाया जाता है। ऐसा जात्रा-उत्सव मंगलवार या इतवार के दिन मनाया जाता है। कभी-कभी सुक्खन के मौके पर श्रद्धालु अपना हठ कर बैठता है और किसी हरी टहनी को मरोड़ कर रस्सी बना लेता है और देवता की किसी वस्तु जैसे त्रिशूल, मूर्ति, घंटे या मन्दिर के किसी खम्भे इत्यादि को उस रस्सी से बांध आता है और प्रार्थना करता है कि उसकी मनोकामना पूरी होने पर वह उस बांधी वस्तु को खोलेगा। अतः मनोकामना पूरी होने पर ही वह उस बांधी वस्तु को खोलता।

कुछ समय तक ऐसा जात्रा-उत्सव चलता है और फिर चेले के कांपने और

आशीर्वाद देने के बाद ही यह जात्रा उत्सव सम्पन्न होता है ।

ऐसे जात्रा-उत्सव प्रायः नाग मन्दिर में देखने को मिलते हैं । जब गाय बछड़ा या बछड़ी देती है तो उसके दूध का प्रयोग नाग देवता को चढ़ाने के बाद ही किया जाता है । कभी-कभी घर का मुखिया या घर की बड़ी औरत तब तक घी या दूध का प्रयोग नहीं करेगी जब तक इसे नाग को नहीं चढ़ाया जाता । नाग के निमित्त घी संजोने के बाद ही अन्य परिवार के सदस्यों को घी-दूध प्रयोग करने की आज्ञा दी जाती है । लेकिन इस दशा में हर समय जात्रा-उत्सव की जरूरत नहीं पड़ेगी। बड़े प्रयत्न के बाद पुत्र होना, बच्चे के सिर के बाल उतारना, कहीं मौत के मुंह से बच जाना, धन-दौलत की वृद्धि होना, या अन्य हर्ष का कोई कारण होना इत्यादि सभी जात्रा-उत्सव के कारण हैं ।

अनावृष्टि, अकाल या सूखे के समय नाग के मन्दिर में जात्रा-उत्सव की मानो होड़-सी लग जाती है । विवाह के बाद कभी-कभी युगल मन्दिर में जाते हैं । रोग या व्याधि से मुक्ति मिलने के बाद भी जात्रा-उत्सव मनाया जाता है । विवाह या पुत्र उत्पत्ति के बाद अपनी 'कुलज' का पूजन अनिवार्य समझा जाता है । (ख)इसी प्रकार रात के समय ऐसे मनाए जाने वाले उत्सव को जागण (जागरण या रत-जगा) कहा जाता है । ऐसे मौके पर घर से बजंत्री सहित मन्दिर में जाते हैं । सारी रात भजन-कीर्तन होता है तथा चेला कंपाया जाता है । कहीं-कहीं अंचली गीत भी गाया जाता है । दूसरे दिन प्रातः भोजन का प्रबंध किया जाता है । ऐसे मौके पर यदि बलि दी हो तो उस पशु को वहीं भोजन के काम लाया जाता है । यदि ऐसा नहीं तो अमांसी भोज तैयार किया जाता है ।

ऐसे जागरण भी अपने आराध्य देव के मन्दिर में मनाए जाते हैं ।

कैलु औरत का देवता है । इसे रुष्ट होने पर प्रायः जागरण के माध्यम से मनाया जाता है । यह सिद्धों और नाथों का बीर है और शायद उसी समय से इसे मनाने की प्रथा चली आती है । कैलु को जागरण के समय पूर्ण वस्त्र से ढका जाता है । यह श्वेत पत्थर के रूप में केवल स्मारक मात्र है जिसे घर के समीप वृक्ष के नीचे रखा जाता है ।

चेला : एक परिचय—इस पुस्तक में 'चेला' सर्वत्र प्रयोग हो रहा है । पाठकों की सुविधा हेतु इसका विस्तृत परिचय दिया जा रहा है । हर जात्रा उत्सव तब तक अपूर्ण समझा जाता है जब तक चेला नहीं कांपता और अपना 'वाक्' नहीं देता। लोगों की धारणा है कि चेला ऐसा व्यक्ति है जिसे देवता का वरदान प्राप्त है जिससे उसे इतनी आंतरिक शक्ति मिलती है जिसे आम लोग करामात (स्थानीय करमात) कहते हैं । ऐसी दिव्य शक्ति उस चेले को क्षण भर के लिए मिलती है। जब चेला कांपता है तो मानो उसमें उस दिव्य शक्ति का प्रवेश हो जाता है । कांपने के लिए प्रेरणा लेना अनिवार्य समझा जाता है । जब ऐसी शक्ति चेले में अपेक्षतः

होती है तो चेला धूप-दीप लेकर एकाग्रचित हो अपने आराध्य देव की ओर ध्यान लगाता है। उधर बजंत्री ढोल और शहनाई पर एक विशेष राग अलापते हैं। श्रद्धालु जोर-जोर से एक साथ जयकारे बोलने लगते हैं। अब चेले में दिव्य शक्ति का प्रवेश होता है तथा खड़ा होकर कांपने लगता है और फिर प्रथम वाक् (शुभ शब्द) बजंत्री को देता है तत्पश्चात् उस श्रद्धालु को देता है जिसने यह उत्सव रचाया होता है फिर बार-बार ढोल-शहनाई बजती है और बार-बार वह अपने वाक् (स्थानीय भाषा में 'पुछ' भी) देताहै। जो किसी विशेष बात के विषय में भेद लेना चाहे तो वह सन्तोषजनक 'पुछ' देता है। थोड़ी देर के बाद वह कांपना बन्द हो जाता है और एक साधारण आदमी बनकर बैठ जाता है।

कांपते हुए साधारणतया देवालय में रखे लोहे के सांकल से अपनी पीठ को खूब कूटता है। कांपते हुए वह सूढ़े (सूढ़ एक प्रकार का बारीक चांदी का सुआ होता है) से अपनी जीभ को बींध देता है। कभी-कभी तो वह अपनी गाल को एक से अधिक सूढ़ों से बींधता है। इससे एकत्रित भीड़ उसमें असल दिव्य शक्ति प्रवेश किए मानती है तथा हाथ जोड़ भीड़ जोर-जोर से जयकारे बोलने लगती है। इस वातावरण में कभी-कभी भीड़ में एक से अधिक चेले कांपने लगते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ साधारण व्यक्ति भी कांप उठते हैं। अब मुख्य चेला हल्का-सा पानी का छिड़काव करता है अतः अन्य चेले साधारण वेश धारण कर बैठ जाते हैं। जब मुख्य चेला कांपकर बैठ जाता है तो अन्य देवताओं के चेलों को बारी-बारी से कंपाया जाता है। कभी-कभी तो एक ही चेला कंपाया जाता है। यह सब उस समय के वातावरण पर निर्भर करता है।

अब प्रश्न उठता है कि क्या यह चेला पुजारी होता है? नहीं, यह अनिवार्य नहीं कि यह पुजारी हो। कहीं-कहीं पुजारी भी चेला है परन्तु हर स्थान और हर दशा में नहीं। हर देवता का अपना-अपना चेला होता है। कभी-कभी एक ही चेला विभिन्न देवताओं का प्रतिनिधित्व भी करता है। ऐसा वह कांपने पर पहले वाक्य में सम्बोधित कर देता है कि उसमें कौन-सा देवता उस समय कांप रहा है। क्या चेला-वंश परम्परागत होता है? नहीं, यह अनिवार्य नहीं परन्तु कहीं-कहीं ऐसी वंश परम्परागत भी है। चेला सामयिक भी हो सकता है परन्तु प्रसिद्ध चेलों को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। कभी-कभी तो देवता की किसी पर भी कृपा दृष्टि हो सकती है। परन्तु यह प्रथा है कि प्रसिद्ध चेले को अवश्य सुना जाता है। तत्पश्चात् अन्य चेलों को भी सुना जाता है। किसी-किसी परिवार में चेले पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे। कहीं-कहीं तो पुजारी ही ये दोनों कार्य करता है तो कहीं-कहीं ये दोनों क्षेत्र अलग-अलग व्यक्ति के अधिकार क्षेत्र में हैं।

कुछ चेले घर में मनाए जाने वाले उत्सवों पर आमन्त्रित किए जाते हैं। ऐसे चेलों को व्यवसायिक चेले भी कहा जा सकता है। ऐसे चेले जादू-टोने का उपचार

भी करते हैं। वे घर में ऐसे स्थानों का पता लगाते हैं जहां जादू दफनाया होता है। वे उपचार रूप में झाड़-फूंक भी करते हैं।

अन्य प्रकार के चेले जादू-टोनों से प्रभावित औरतों का इलाज भी करते हैं। ऐसे इलाज को डोळी या नल्ली बिठाना कहते हैं।

चेले की एक अन्य श्रेणी है जो अपने घरों में ही मंगल या रविवार के दिन लोगों को पूछने पर खबरें देते हैं। किसी की चोरी गई वस्तु का पता लगाना, किसी रोग के कारण का पता लगाना तथा उपचार बताना, जादू-टोने का पता लगाना इत्यादि।

'चेला' शब्द अन्य स्थानों के 'गूर' या 'ओझा' शब्द का लगभग पर्यायवाची है।

चेले की करामात कहां तक सत्य है और कितनी असत्य इस पर खोज की जा सकती है। लेखक का कार्य संस्कृति के एक पहलू को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करना है।

बलि प्रथा—यहां वर्णित जात्रा-उत्सव बलि प्रथा के आधार पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक जात्रा-उत्सव ऐसा है जिसमें बलि अनिवार्य रूप से दी जाती है। इस पर चेले के कांपने से भेड़ या बकरी की बलि दी जाती है। और कभी-कभी चेला उस पशु के खून को मुंह लगाकर गट-गट कर पी जाता है। ऐसी क्रिया को 'अरूहर पीना' कहते हैं। पशु के सिर को पुजारी को दिया जाता है। आंतों और अन्य पेट के भाग को वहीं भूनकर लोगों में बांट दिया जाता है। परन्तु देवताओं का ऐसा वर्ग भी बताया जाता है जो बलि नहीं लेता। ऐसे देवताओं को अमांसी कहते हैं। कहीं नाग अमांसी है तो कहीं मांसाहारी। मणिमहेश झील में तो हजारों पशु काट दिए जाते हैं परन्तु त्रिलोचन महादेव अमांसी शिव है। इसी प्रकार जहां नाग मांस भक्षण नहीं करता वहां उसका पूजन दूध और घी से किया जाता है।

वास्तव में जहां ऐसे साधु-संत होंगे जो मांसाहारी नहीं थे उन्होंने उन देवताओं को बलि लेने से मुक्त कर अमांसी ठहराया होगा और जहां ऐसा प्रभाव नहीं रहा बलि प्रथा सदियों से चली आ रही है।

शिक्षा के प्रसार और विस्तार के बाद शायद यह बलि प्रथा समाप्त हो जाये।

जहां बलि का व्यय पूरा नहीं हो रहा है वहां स्वत: यह प्रथा समाप्त हो रही है। बलि के व्यय को प्राय: 'ढाळ' (Contribution) रूप में एकत्रित किया जाता है। बलि का अंशदान क्षेत्र के सभी परिवारों को देना पड़ता है। 'ढाळ' का अर्थ ऐसे व्यय से है जिसका अंशदान सभी पर डाला जाता है तथा तदनुसार उगाहा जाता है। यह प्रथा अब धीरे-धीरे ढीली पड़ती जा रही है। फलत: इसका प्रभाव बलि प्रथा पर भी पड़ रहा है। इस प्रकार की कुप्रथा समाप्त होनी चाहिए।

अन्य धार्मिक उत्सव

अन्य धार्मिक उत्सवों में जो प्रायः मनाये जाते हैं—कथा, गुसैंतन और नुआले हैं।

कथा—गद्दी जनजातीय लोग धार्मिक विचार के व्यक्ति हैं। वे समय-समय पर कथा का आयोजन करते हैं। कथाओं में सत्यनारायण की कथा भी है जिसमें कथा सुनाने के बाद भोजन का भी आयोजन किया जाता है। नवरात्रि के दिनों सारे क्षेत्र या गांव में रामायण की कथा का आयोजन भी किया जाता है। इस प्रकार की कथा सप्ताह भर चलती रहती है। गांव के लोग कथा सुनते और ईश्वर को याद करते हैं।

गुसैंतन उत्सव—'नुआळे' की तरह का अन्य उत्सव गुसैंतन भी है। गुसैंतन का अर्थ है—गुसैंया या गुसांई (शिवजी) के प्रति एक सार्वजनिक पूजा का आयोजन। जहां 'नुआला' के आयोजन में पुरोहित और योगी का हाथ रहता है तथा कथा 'अंचली' के माध्यम से चार 'बन्दों' द्वारा गाई जाती है वहां 'गुसैंतन' की पूजा और कथा का आयोजन 'गुराही' द्वारा 'रैबान' और खंजरी बजाकर गाई और सुनाई जाती है। 'गुराही' एक गायक है जिसका परिचय इसी पुस्तक में 'लोकगीत' खण्ड में दिया गया है। ये गायक हरिजन जाति का होता है। इसके पास एक सितार की तरह का वाद्य-यन्त्र रहता है जिसे वह गले में लटकाकर बायें हाथ से बजाता है। एक अन्य वाद्य-यन्त्र 'खंजरी' होता है जिसे वह दायें हाथ से बैठी अवस्था में बजाता है। इसके साथ एक अन्य गायक भी रहता है जो सामान्यतः उसकी पत्नी होती है। कभी-कभी दूसरा गायक पुरुष भी होता है। इस गायक के हाथ में युगल वाद्य यन्त्र होता है जिसे 'कांसा' कहते हैं। कांसे को दूसरे शब्दों में 'टुन-टुनी' भी कहते हैं। इनको अन्य वाद्य-यन्त्रों के साथ बजाया जाता है। कभी जब दूसरा गायक न हो तो एक ही गायक 'रैबान' और खंजरी बजाकर गाता जाता है। एक बार गाता है दूसरी बार साधारण शब्दों में गायन का अर्थ समझाता है। एक व्यक्ति 'हुंकारी' नियुक्त होता है जो 'हां जी', 'जी हां', 'जी भई जी'! इत्यादि शब्दों से गायक को प्रोत्साहित करता जाता है तथा कथा का संचालन करता है। कथा का विषय शिव कथा ही रहता है।

कथा आरम्भ करने से पहले नुआले की तरह पूजन के लिए आटे का मण्डप (मंदळा) तैयार किया जाता है तथा उस पर ऊन या फूल की माला टांगी जाती है।

जहां 'नुआळा' विवाह उत्सव के समय या नया मकान बनाने पर हर कोई सफलता प्राप्त करने पर दिया जाता है वहां गुसैंतन कोई तीर्थ यात्रा सम्पूर्ण करने पर दिया जाता है। हरिद्वार नहाने के पश्चात् लोग प्रायः गुसैंतन का आयोजन

करते देखे गए हैं। बहुत से लोग हर वर्ष 'नुआळा' या गुसैंतन देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

गुसैंतन का आयोजन करने के प्रारम्भ में वाद्य-यन्त्रों की पूजा की जाती है तथा उन सबको अन्न से ढक दिया जाता है। इस प्रथा को 'खंजरी' भरना कहा जाता है। रात को समय-समय पर मध्यांतर में खंजरी को श्रोताओं के मध्य घुमाया जाता है। लोग अपनी श्रद्धा के अनुसार इसमें पैसे डालते हैं। प्रातः गायकों को नए वस्त्र दिये जाते हैं। श्रोतागण निमंत्रित होते हैं जिन्हें दिन को भोजन खिलाया जाता है।

लोक-विश्वास है कि 'नुआळे' और 'गुसैंतन' के आयोजन से शिवजी अन्न और धन की वृद्धि करता है।

इस प्रकार गुसैंतन उत्सव सम्पन्न होता है।

नुआळा उत्सव

जन-जातीय जनता में नुआळे उत्सव का बहुत महत्त्व है। यह उत्सव एक प्रकार का शिवजी के निमित्त पूजन है जो विशेष विधि से आयोजित किया जाता है। सर्वप्रथम नवालय (नुआळे) के शाब्दिक अर्थ के बारे में विचार करें जिसके विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न अर्थ लगाए हैं विद्वानों का मत है कि यह उत्सव नया मकान बनाने पर मनाया जाता है अतः नव-आलय शब्द से 'नवाळा' बना। अन्य विद्वानों का मत है कि नवाळे (नुआळे) में नौ आदमी अनिवार्य हैं जैसे आयोजन के लिए किन्हीं व्यक्तियों में एक को 'कटवाळ' और दूसरे को 'वटवाळ' नामक आयोजनार्थ पदवी दी जाती है। ये दो नियुक्त व्यक्ति 'नुआळे' के आयोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नुआळे में आयोजनार्थ सामग्री को उन्हीं के माध्यम से जुटाया जाता है अर्थात् नुआळे का सारा प्रबन्ध उन दो व्यक्तियों पर निर्भर रहता है। अन्य व्यक्तियों में 'जोगी' (योगी) और परोहि होते हैं। जोगी उत्सव के लिए माला जुटाता है। माला के पूजन की सारी सामग्री और 'चढ़तर' (पूजन के समय चढ़ाए गए पैसे) उसको दी जाती है। पुरोहित मंडप बनाता है। यह सूखे आटे की रेखायें डाल कर तैयार किया जाता है। मंडप (स्थानीय बोली में मंदळा कहा जाता है) के कहीं 36, कहीं 32 और कहीं 84 खाने बनाये जाते हैं जिन्हें 'कोठे' कहा जाता है। उत्सव का आरम्भ शिव पूजन से आरम्भ होता है जिसका मुख्य पात्र 'जजमान' स्वयं सपत्नीक होता है अतः ये नौ आदमी— जोगी, पुरोहित, जजमान, कोटवाल, बटवाल और चार बन्दे (गायक) नुआळे के मुख्य नौ पात्र होते हैं अतः कहावत प्रसिद्ध हुई—'नौ मंण्ह नुआळा' अतः शब्द नुआला या 'नवाळा' बना।

इन दो विचारधाराओं के अतिरिक्त लेखक अन्य विचारधारा की पुष्टि करता है जो अधिक उपयुक्त ठहरती है। 'नुआळे' के आयोजन के लिए बलि देने की प्रथा बहुत पुरानी है। बलि न ही तो बकरे की दी जाती है और न ही बकरी की। इसके लिए केवल ऊन वाला पशु काटा जाता है। यह मेंढा होता है। ऊन वाले पशु को 'उनाळा' कहा जाता है अतः 'उनाळे' से 'नुआळा' शब्द अत्यन्त उचित ठहरता है अतः इसी शब्द से 'नुआळे' शब्द की उत्पत्ति हुई। 'नुआळे' के

लिए जनजातीय क्षेत्र में माला भी ऊन की गूंथी जाती है। साथ ही पूजन सामग्री के लिए ऊन का होना अनिवार्य है। मेंढे के सिर को 'पूजन' सामग्री में सारी रात रखा जाता है। अब कहीं-कहीं बलि प्रथा समाप्त कर दी है। पशु को नहीं काटा जाता। केवल नारियल को सिर के बजाय पूजन सामग्री में रखा जाता है। यह वास्तव में 'नुआळे' उत्सव में सुधार हुआ है। चार 'बन्दे' सारी रात अंचली गीत गाते हैं तथा दर्शक बारी-बारी से माला को धूप देकर और कुछ पैसे चढ़ाकर नाचते हैं। औरतें 'घुरैही' गान करती हैं। जोगी के 'एकतारे' को दस माणी अन्न डालकर ढका जाता है इस प्रथा को 'दसौंध' कहते हैं। 'दसौंध' डालते समय महिलाएं 'दसौंध गीत' गाती हैं जिसमें कहा जाता है फलां जजमान ने शिव जी को 'दसौंध' देकर अपने को उऋण किया। 'अंचली' लोकगीत में शिवजी की स्तुति गाई जाती है जिसके प्रारम्भिक बोल इस प्रकार हैं—

'दक्खण देसेरा सिद्ध जोगी आया
औंदे जोगी अलख जगाया
बहुंदे जोगी चौंका पाया
बहुंदे जोगी बैसक पाया
बहुंदे जोगी धूणी धुखाई
लौंग लाइचीरी धूणी धुखाई
बहुंदे जोगी मंदळा लिखाया
लै सैंया अपणे उधारा
आटे-कूटे तेरा मंदळा लिखाया
तिल्ले चौळे तेरे कोठे भराये
लै सैंया अपणे उधारा
बड़े बबरुए तेरे कोठे भराय
लै सांया अपणे उधारा
दिआ लाई तेरा मंदळा रचाया
लै सैंया अपणे उधारा
कलस-मगरु डाही तेरा मंदला भराया
लै सैंया अपणे उधारा
चार बन्दे डाही तेरा जग रचाया
लै सैंया अपणे उधारा

अर्थ—जैसे पहले लिखा गया है कि पुरोहित जोगी की सहा-मंडप तैयार करता है। यह सारा कार्य आटे की रेखाओं द्वारा आयोजित होता है। मंडप में अन्य देव-

ताओं के लिए भी उपयुक्त स्थान बनाए जाते हैं। शिवजी के साथ अन्य देवताओं का विधिवत् पूजन किया जाता है। हर देवता के स्थान पर 'बड़े' और 'बबरु' पकवान् रखे जाते हैं। साथ ही हर 'कोठे' में तिल और चावल भी रखे जाते हैं। इसका विस्तृत विवरण उपरोक्त अंचली लोकगीत में शिव स्तुति के रूप में किया गया है। दक्षिण देश का कोई सिद्ध जोगी आया है। उसने अपने पूजा के स्थान को गोबर से लिपा है। उस पर 'बैसक' बिछाया है। धूप-द्वीप किया है फिर मण्डप बनाया है। मण्डप आटे से लिखा है। मंडप के हर 'कोठे' को तिल, चावल, 'बड़े' और 'बबरु' से भर दिया है। यह सब सैंया (शिवजी) का उधार है जो वापस किया गया है। मण्डप पर 'जोगी' ने दिया जलाया है, कलस (कुम्भ) रखा है। इस सब सामग्री को लगाकर शिवजी के ऋण से उऋण होता है। शिवजी की स्तुति करने चार 'बन्दे' (चार गायक) बैठ गए हैं इत्यादि।

इसी प्रकार सारी रात शिवजी की स्तुति 'शिवीण' लोकगीत गाकर की जाती है जिसका विस्तृत वर्णन इस पुस्तक में लोकगीत खंड में किया गया है।

चार बन्दों, कोटवाल, बटवाल, जोगी और पुरोहित का आरम्भ में पूजन किया जाता है तथा उनको नए वस्त्र पहनाए जाते हैं। यदि पूर्ण वस्त्र नहीं तो हर एक को साफा अवश्य दिया जाता है।

प्रातः सभी निमंत्रित सज्जनों को भोजन दिया जाता है। इस प्रकार नुआळा उत्सव सम्पन्न होता है।

गद्दी नृत्य

गद्दी नृत्य अपनी विशेषता लिये है। यह नृत्य मनमोहक और कलापूर्ण है। इस नृत्य का कई प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है :— (1) अकेले का नृत्य (2) दो-दो का नृत्य (3) सामूहिक नृत्य (4) घुरैही या डंगी नृत्य (5) गिद्धा इत्यादि।

इस नृत्य का क्रमशः वर्णन इस प्रकार दिया जाता है :—

(1) अकेला व (2) दो-दो का नृत्य—जब कभी उत्सव के समय घर के अन्दर अंचली गान आरम्भ होता है तो गद्दी लोग विशेष वेशभूषा में नहीं अपितु अपनी साधारण वेशभूषा में अंचली की तान पर बारी-बारी से एक-एक या दो-दो कर नाचने शुरू करते हैं। गाने वाले चार पुरुष होते हैं जिन्हें 'बन्दे' कहते हैं। उनके पास ढोल और घड़े पर रखी कांसे की थाली वाद्य-यन्त्र होते हैं। दो व्यक्ति गाना आरम्भ करते हैं तत्पश्चात् दूसरे दो व्यक्ति उसी गीत की कड़ियों को दोहराते हैं। नाचने वाले बारी-बारी से एक-एक या दो-दो की संख्या में नाचते जाते हैं। बे नाचते हुए विभिन्न भंगिमाएं बनाते जाते हैं। उत्सव में बैठे सभी लोग उन के नृत्य का आनन्द लेते हैं। अंचली के कथानक 'रामायण' या 'शिवीण' (शिव की गाथा) कोई भी हो सकता है। इस प्रकार के नृत्य को केवल 'नाच' कह कर पुकारते हैं। ऐसे तथ्यों में केवल पुरुष ही भाग लेते हैं।

(1) घुरैही या डंगी नृत्य

वास्तव में घुरैही या डंगी नृत्य एक ही प्रकार के नृत्य हैं। विशेषक अप्रवासी क्षेत्र में घुरैही नृत्य का रिवाज है। किसी उत्सव पर औरतें अलग से एक दायरा बना लेती हैं तथा कई घुरैही (महिलाओं द्वारा गाया जाने वाला गाना) आरम्भ की जाती है। दो-तीन महिलाएं घुरैही के बोल बोलती है तथा अन्य औरतें उसे दोहराती जाती हैं। साथ-साथ नाचती भी जाती हैं। नाचने के साथ-साथ अभिनय भी किया जाता है। घुरैही का कथानक लोकगीतों के आधार पर कोई भी हो सकता है। कहीं-कहीं प्रेमगीत गाया जाता है तो कहीं धार्मिक। कभी सामाजिक विषमता का गाना है तो कहीं दुखांत विरहगान। एक ही दायरे में इस प्रकार का

नाच और गाना घंटों तक चलता रहता है। यही नृत्य भरमौर के प्रवासी क्षेत्र में रंगीन स्थानीय वेशभूषा में नाचा जाता है। वहां इसी नृत्य को 'डंगी' नृत्य कहा गया है। डंगी नृत्य की आकर्षक वेशभूषा के कारण अधिक आकर्षक और अनुशासित है। इसमें नृत्य-पक्ष अधिक उभर कर औरनिखर कर सामने आया है। डंगी और घुरैही नृत्य खुले प्रांगण या मैदान में नाचे जाते



गद्दी युवतियां—नृत्य मुद्रा में

हैं। इस नृत्य समूह में युवतियों से लेकर बूढ़ी औरतें तक शामिल होती हैं। गाने के लिए किसी वाद्य यन्त्र का सहारा नहीं लिया जाता केवल चलते-फिरते और नृत्य करके इस गान की कड़ियों को गाया और दोहराया जाता है।

(2) गिद्धा नृत्य

गिद्धा नृत्य भी प्रसिद्ध नृत्य है। यह नृत्य पंजाबी गिद्धे से मिलता-जुलता है परन्तु स्थानीय वेशभूषा के कारण इसमें स्थानीय रंग-रूप दिया गया है।

(3) सामूहिक नृत्य या 'डंडारस'

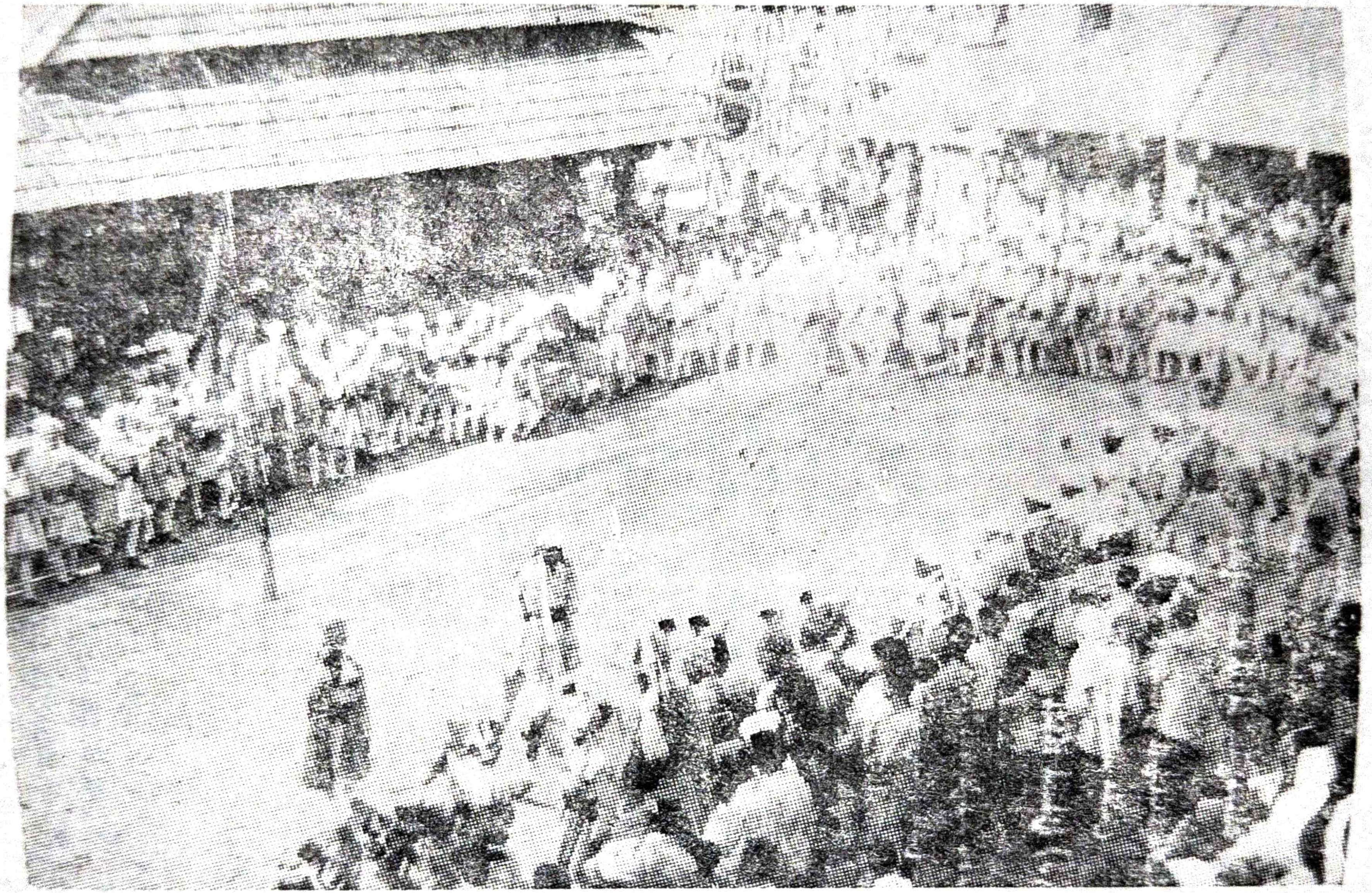
गद्दी नृत्य में सामूहिक पुरुष नृत्य अत्युत्तम और कला की दृष्टि से श्रेष्ठ है। जहां महिला नृत्य 'डंगी' अपनी विशेषता लिये है वहां पुरुष नृत्य डंडारस भी अपनी स्थानीय विशेषता लिये है। यह नृत्य डंगी की तरह खुले प्रांगण में नाचा जाता है। इसके वादक विशेष जाति से सम्बन्ध रखते हैं जिन्हें बजंत्री, बाजदार या बैंषी कहते हैं। वाद्य-यंत्री प्रांगण में एक ओर अपनी मंडली बना कर बैठ जाते

हैं। वे ढोल, नगारे और शहनाई पर एक विशेष तान शुरू करते हैं। और कभी-कभी साथ-साथ गाते भी जाते हैं। नर्तक अपनी स्थानीय आकर्षक वेश-भूषा; सफेद चूड़ीदार पायजामा, लम्बी सफेद ऊनी चोली, तिस पर डोरा बांधे, सिर पर नोकदार सफेद ऊनी टोपी और टोपी पर मोर की जड़ाऊ कलंगी, कंधे पर गुलाबी से रंग का गुलाबंद जो डोरे के साथ लटका रहता है, गले में कीमती पिरोजे और चांदी की मालाएं, कलाई पर चांदी के कंगन पहनकर यह नृत्य किया जाता हैं। पांव एक साथ ही उठते और भूमि पर पड़ते हैं। कभी-कभी वे भी लोकगीत की कड़ियां गुनगुनाते जाते हैं। इस नृत्य में वेशभूषा का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसके नियम का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को पिढ़ (नाचने का प्रांगण) से निकाल दिया जाता है। इसका कड़ाई से पालन करने के कारण ही इस नृत्य को राष्ट्रपति पुरस्कार मिला था। इस नृत्य की विशेषता छतराढ़ी नृत्य ने कायम रखी है। छतराढ़ी जात्रा-उत्सव पर इस नृत्य की शुद्धता को देखा जा सकता है। जहां भरमौर के नर्तक सिर पर पगड़ी पहन कर नाचते हैं वहां छतराढ़ी के नर्तक नोकदार टोपी पहन कर नाचते हैं।



डंडारस नृत्य के समय नर्तक आळी-माळी मुद्रा में

यह नृत्य भी डंगी की तरह दायरे में नाचा जाता है। आरम्भ में वाद्ययंत्र की मंद गति पर यह नृत्य शुरू होता है पर जूं-जूं ढोल और नगारे की गति बढ़ती



गद्दी-नृत्य—एक दृश्य

है नाचने की गति भी बढ़ती जाती है। नृत्य जब अपनी चरम सीमा पर पहुंचता है तो ढोल की गति को अति तेज किया जाता है अब नृत्य की गति की भी अधिक तेज हो जाती है। अब धीरे-धीरे नर्तक वृत्त से टूटते जाते हैं। जो अच्छा उत्साह रखते हैं, वे वृत्त में अंत तक नाचते जाते हैं। वे भी धीरे-धीरे वृत्त छोड़ते जाते हैं। अब अन्त में एक व्यक्ति नाचता रहता है। अन्त में ढोल की ध्वनि समाप्त होने पर इस समूह-गान का अन्त होता है।

यदि समय हो तो थोड़े अन्तराल के बाद दूसरा 'डंडारस' भी आरम्भ हो जाता है परन्तु प्राय एक ही 'डंडारस' उत्सव को सम्पन्न करता है।

गद्दी-नाट्य

मानव आरम्भ से ही मनोरंजन की प्रवृत्ति रखता है जब नाटक और आज के चलचित्र जैसे साधन उपलब्ध नहीं थे तो मनुष्य कई प्रकार के मनोरंजन उत्सव और त्योहार के अवसर पर कर लिया करता था इन मनोरंजनों में हास-उपहास के अतिरिक्त अपने प्रकार के स्वांग और नाट्य प्रचलित थे जिनमें लोग बड़ी उत्सुकता से भाग लेते थे तथा उन्हें देखकर अत्यंत प्रफुल्लित होते थे तिस पर कुछ पात्र बिदूषक का काम करते थे। जिनके रसिक सम्बादों को सुन कर हंसी के फव्वारे उठते थे। आज भी कई स्थानों पर इसी प्रकार का प्रचलन है। हिमाचल के अन्य स्थानों पर इस प्रकार के हास-परिहास के लिए 'करियाला' अत्यंत आकर्षक है। इसका स्थान चम्बा में 'हरण' ने लिया है। स्वांग और 'हरण' गद्दी-नाट्य के मूल स्रोत माने जा सकते हैं। हिमाचल के दूसरे कई क्षेत्रों में बांठड़ा नाट्य भी प्रसिद्ध है जिसका वर्णन श्री मौलूराम ठाकुर ने अपनी पुस्तक 'हिमालय के लोक नाट्य और लोकानुरंजन' में विस्तार से किया है। इसी प्रकार से मिलता-जुलता नाट्य गद्दी क्षेत्र में होली नाला के विभिन्न तिथियों को आयोजित किया जाता है जिसे वहां की स्थानीय जनता बांढा कहती है जिस का वर्णन इसी पुस्तक में आगे किया जाएगा।

स्वांग : गद्दी क्षेत्र में स्वांग का उत्कृष्ट उदाहरण छत्राढ़ी क्षेत्र में देखा जा सकता है। छत्राढ़ी क्षेत्र में शिव शक्ति देवी का मन्दिर है जिसकी मान्यता हर स्थान पर है। मणिमहेश जात्रा भाद्रपद राधाष्टमी को सम्पन्न होती है। उसी दिन से यहां तीन मेले आयोजित किये जाते हैं। मेला शुरू होने पर यहां स्वांग निकालने की प्रथा है। स्वांग देवी के मन्दिर से निकाले जाते हैं। स्वांगों में तीन मुखौटेधारी पुरुष होते हैं जिन्हें स्थानीय लोग 'खप्पर बड्ढे' कहते हैं। चौथा मुखौटेधारी स्त्री पात्र होता है। पुरुष पात्र राक्षस के द्योतक हैं तथा स्त्री पात्र देवी का स्वांग माना जाता है। जब स्वांग निकलते हैं तो दर्शक तुमुल ध्वनि करते हैं। राक्षस पात्रों को ऐहण (बिच्छु बूटी) से पीटा जाता है। जब उनको इस प्रकार पीटा जाता है तो वे विभिन्न भाव-भंगिमाओं से अभिनय कर अपनी पीड़ा को प्रकट करते हैं जो दर्शकों के लिए बड़े मनोरंजन और उत्सुकता का विषय बन जाता

है। वे सभी खड्ग धारण किए होते हैं तथा देवी के स्वांग पर कई प्रकार के प्रहार करते हैं। देवी भी खड्ग धारण किए होती है अतः उनसे खूब लड़ाई लड़ती है। अंततः देवी की विजय होती है। राक्षस पराजित होकर शर्म के मारे भागते दिखाई देते हैं।

उसी दिन स्वांग सहित बटुक महादेव की रथ यात्रा भी दिखाई जाती है।

यह स्वांग-खेल बच्चों और बूढ़ों के लिए धार्मिक भावना का प्रेरक और मनोरंजन का उत्तम साधन है। यह नाट्य का मूल स्रोत माना जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

हरण—गद्दी नाट्य का दूसरा उत्कृष्ट उदाहरण हरण या हरणात्र है।

हरणात्र का आयोजन होली के दिन किया जाता है। लोग वर्ष भर होली की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं। जहां अन्य स्थानों पर होली रंग का त्योहार है वहां गद्दी क्षेत्र में होली 'घियाणे' और 'हरण' का त्योहार माना जाता है। जब सायंकाल को होली जलाई जाती है तो पहाड़ी गांव आग की लपटों में थोड़ी देर के लिए ऐसे चमक उठते हैं जैसे चांद और तारे सभी भू-तल पर अवतरित हुए हों। झिलमिल करतीं सभी घाटियां चमक उठती हैं। एक-दूसरे की होली को देखा जाता है कि किसका घियाणा कितना बड़ा है। सारा वातावरण हो ! हो ! हो ! की ध्वनि से गूंज उठता है। फिर 'हो ! हो ! हो ! हियूंद गो बसंद आ-सत फटा जुहेरी खांदा गो' इत्यादि 'हियूंद' (सर्दी का मौसम) के प्रति गालियां बकी जाती हैं मानो 'हियूंद' से सारी पहाड़ी जनता तंग आ चुकी हो। अब एक गांव या घर से दूसरे घर या गांव के विशेष व्यक्ति पर फब्तियां भी यूं कसी जाती हैं—"हो ! हो ! हो ! व्यक्ति के ढालुए वरड़ हो।" इस प्रकार से गाली-गलौज का आदान-प्रदान होता रहता है।

अब जल्दी से गांव के लोग अपने गांव के देवता के मन्दिर में एकत्रित हो जाते हैं। वहां 'हरण' बांधना होता है। विभिन्न व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि और अभिनय का योग्यता के अनुसार स्वांग बनते हैं। स्वांग की रुचि और वेश-भूषा निम्न प्रकार से है :

खप्पर (मुखौटेधारी)—खप्परों की संख्या जनसमूह के अनुसार छोटी-बड़ी होती है। वे मुंह पर 'खप्पर' (मुखौटे), सिर पर पगड़ी, कमर में डोरा तथा चोला तथा डोरे और चोले को आपस में ऊपर और नीचे इस प्रकार बांध लेते हैं कि वह पात्र वास्तव में ही स्वांग लगे तथा दर्शक उत्सुकता से हर्ष-उल्लास में चीख उठे। हाथ में डंडा लिये वह नाचते समय 'हो ! हो !' की ध्वनि करता है तथा डंडे को इधर-उधर घुमाते हुए नाचता जाता है।

चन्द्रौळी—दूसरा पात्र चन्द्रौळी है। इसकी संख्या भी खप्परों की संख्या पर निर्धारित होती है। इसका अभिनय पुरुष पात्र ही स्त्री-वेशभूषा धारण करता है।

वेश-भूषा में चोली या लुआंचड़ी, कमर में डोरा, स्त्री आभूषण और मोटा दुपट्टा तथा सलवार या सफेद चूड़ीदार पायजामा। चन्द्रौळी 'खप्पर' के साथ नाचती है और समय पड़ने पर अभिनय भी करती है।

गद्दी—हरण का तीसरा महत्त्वपूर्ण स्वांग गद्दी है। यह सिर पर नोंकदार टोपी, चोला तथा डोरा पहनता है। चेहरे पर सफेद बनावटी दाढ़ी और मूंछ लगाता है। हाथ में त्रिशूल धारण किए होता है। यह शिव जी के चेले का भी अभिनय करता है। जब कभी-कभी 'खप्पर' मरने का अभिनय करता है। चन्द्रौळी उसके तथाकथित मृत शरीर को बार-बार हिलाती और डुलाती है तथा रोने का अभिनय करती है। तब गद्दी चेला बनकर कांपता है। कई प्रकार के हास और परिहास के मध्य वह उस खप्पर को जीवित कर देता है। गद्दी 'रौळु' या विदूषक का काम करता है।

गद्दन—एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्वांग गद्दन है। गद्दन और गद्दी आपस में सारा समय हंसी-मज़ाक करते रहते हैं तथा दर्शकों का मन बहलाते हैं।

हरण—एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्वांग 'हरण' हुआ करता है। यह किसी पशु का चर्म बांधे हुआ होता है। सिर पर सींग लगाये होता है। सारे शरीर को डोरे से बांधा होता है। इस पर कई लोग सवारी करते हैं तथा पैसे देते हैं। इस पर सवारी की जाती है। अतः यह स्वांग किसी निम्न वर्ग के व्यक्ति को ही स्वीकार्य होता है। हरण या हिरण उसी प्रकार चलने का अभिनय करता है जिस प्रकार एक चौपाया जानवर चलता है।

साहब—कभी-कभी शरीर और मुंह पर आटा मलकर और टोप पहने 'साहब' के स्वांग का भी आयोजन किया जाता है।

अब 'हरण' के स्वांग बांधने के बाद बाजदार (वाद्य यंत्री) ढोल शहनाई के साथ आगे-आगे चलते हैं। उनके पीछे सभी स्वांग चलते हैं तत्पश्चात् 'हरणात्र' का सारा जुलूस चलता है। जुलूस देवी-देवता के जयकारे लगाता जाता है तथा गाता जाता है—

हरण आया हरणोटा, राजे रामेरी प्रौळी।
हरना दे सिंगड़ु सहोणे, जिहां मोती रे दाणे।
डक वजंदे डकडोंरु, राजे रामारी प्रौळी।
हरन आया हरनोटा, मंगदा बकरोटा।
तुरत करे मंजिहाणिये, असां जाणा दूरड़े।
हरन आया हरनोटा, राजे रामारी प्रौळी!

साथ ही हो! हो! हो! की ध्वनि करते जाते हैं और साथ-साथ हियून्द

(सरदी का मौसम) को बिदा करते समय पूर्वकथित गाली भी दोहराते जाते हैं। 'हरणात्र' घर-घर जाकर अभिनय और नाट्य करती है। घर का हर सदस्य बड़ी प्रसन्नता से अपने बिस्तर को छोड़कर खुले प्रांगण में आ जाता है फिर घर के मुखिया से भी हास्य-विनोद का सम्वाद चलता है। हर घर उनको 'बरू' (दाने और पैसे) देकर बिदा करता है। घर के कुछ पुरुष सदस्य उनके साथ भी हो लेते हैं।

इस प्रकार सारी रात वे जितने घर मांग सकें मांगते हैं। प्रातः होने पर हरण का उसी स्थान पर विसर्जन होता है जिस देवालय से उसका शुभारंभ हुआ था।

लड़ाई-झगड़ा—यदि अभाग्यवश कहीं दो 'हरणों' का टकराव हो गया तो आपस में झगड़ा हो जाने की संभावना रहती है। ऐसे समय पर आपस में गुत्थम-गुत्था भी हो जाता है। कभी-कभी एक हरणात्र दल दूसरे के निशान (मुखौटे आदि) छीन लेता है तथा दाने पैसे भी ले जाता है। कभी-कभी रक्तपात तक की नौबत आ जाती है अतः समझदार व्यक्ति हरण के टकराव से छुटकारा पाने के लिए अपना मार्ग बदल लेते हैं ताकि दोनों दलों के युवक आपस में भिड़ न जाएं।

फगोल—अब प्रातः हरणात्र उत्सव का विसर्जन होता है तथा एक दिन निश्चित किया जाता है ताकि एकत्र अन्न और पैसे से फगोळ (सहभोज के लिए निश्चित दिन) का आयोजन किया जा सके। अब सभी लोगों को उस दिन के लिए आमंत्रित किया जाता है। उस दिन अन्न और पैसे के अनुसार सहभोज किया जाता है। उस दिन भी स्वांग-नृत्य होता है।

झांकी—हरणात्र तो केवल होली के दिन ही आयोजित होती है। यदि इसी हरणात्र को आठ दिन के लिए विस्तृत किया जाये तो इसे झांकी कहते हैं। झांकी में भी स्वांग, नाट्य और सम्वाद वही होते हैं जो हरणात्र में हुआ करते हैं। झांकी का आयोजन घर-घर में दिन के समय आठ दिन तक किया जाता है।

जन-जातीय क्षेत्र भरमौर का लोक-नाट्य बांढा

भरमौर क्षेत्र में जहां हरण नाट्य अपनी विशेषता रखता है वहां बांढा नाट्य भी प्रसिद्ध है। जहां हिमाचल के अन्य स्थानों—मंडी, बिलासपुर और कांगड़ा में यह नाट्य दशहरे और दीवाली के उत्सवों के दौरान मनाया जाता है भरमौर क्षेत्र में इस नाट्य को मनाने का समय असूज मास की आरंभिक तिथियां हैं। असूज मास में भरमौर की जन-जाति अपने प्रवास की तैयारी में लगी होती है। इसीलिए असूज मास में इस उत्सव को मनाने के लिए उपयुक्त समय माना जाता है। पुराने जमाने में जब प्रवास की यात्रा सुगम नहीं थी। प्रवास यात्रा के लिए बाल-बच्चों और माल-मवेशी के साथ सारे परिवार को चलते-चलते कई सप्ताह लग जाते थे। ऐसी परिस्थिति में लोग अपने सगे-सम्बन्धियों के जाने के पूर्व भेंट-वार्ता करते थे जिसके लिए ऐसे उत्सव आपसी मेल-जोल के लिए अच्छे साधन थे।

ऐसे समय पर अतिथि-सत्कार और सगे-सम्बन्धियों की खातिर आव-भगत करने का उपयुक्त समय मिल जाता था।

भरमौर के बांढे, कांगड़े के बांढे और मंडी, बिलासपुर के बांकड़े में सांगो-पांग समानता पाई जाती है। क्षेत्र भिन्नता के आधार पर थोड़ी-बहुत असमानता स्वाभाविक है।

डॉ० एम० आर० ठाकुर ने अपनी पुस्तक 'हिमाचल के लोकनाट्य और लोकानुरंजन'—में मंडी और बिलासपुर के बांठडा नाट्य पर सम्वाद सहित विस्तृत वर्णन किया है। इन्होंने इसी पुस्तक के 78 पृष्ठ पर इस शब्द की उत्पत्ति पर अपनी कलम उठाई है। उनके अनुसार—"बांठड़ा शब्द का सम्बन्ध भाण्ड शब्द से जुड़ता है। भाण्ड शब्द स्वयं संस्कृत शब्द भाण से उत्पन्न हुआ है। संस्कृत साहित्य के अनुसार 'भाण' दृश्य काव्य का एक रूपक है जिसमें हास्य की प्रधानता रहती है और प्रायः एक अंक का होता है। इस दृष्टि से भाण, सट्टक और प्रहसन को लोक-शैली के नाट्य रूपक कहा जा सकता है।"

बांढा नाट्य उत्सव भरमौर में चण्हौता, क्वार्सी, शुटकर और दियोल गांव में असूज मास की विभिन्न तिथियों को मनाया जाता है।

चण्हौता क्षेत्र का बांढा नाट्य उत्सव—यह नाट्य उत्सव असूज मास की प्रथम तिथि (सैरी) से आरंभ होता है। यह उत्सव पहले दिनों नौ तिथि तक नौ दिन बड़े धूम-धाम से मनाया जाता था। उस समय इस उत्सव को बड़ा महत्त्व दिया जाता था। परन्तु समय के थपेड़ों के साथ-साथ इसकी महत्ता अन्य उत्सवों की तरह कम हो गयी है। अब यह उत्सव केवल एक दिन मनाया जाता है। इस उत्सव की दिन में ही तैयारियां आरंभ हो जाती हैं। दिन को एक वृक्ष खींचने की प्रतियोगिता होती है। यह परम्परा पुराने समय से ही चली आ रही है। कहा जाता है कि रजवाड़े के समय भी इस प्रतियोगिता को इतना महत्त्व दिया जाता था कि लोगों को इसके लिए कोमल और लम्बे चील या देवदार वृक्ष को काटने की अनुमति थी। यदि गिरते समय वृक्ष की टहनी टूट जाये तो अन्य वृक्ष काटने की आज्ञा दी जाती थी। यहां तक कि इसी प्रकार यह टहनी की चोटी (सिरा) टूटती रही तो नौ वृक्ष तक काटने की आज्ञा थी। अब यदि उसी नियम का अनुसरण किया जाता है। परन्तु यह सावधानी रखी जाती है कि वृक्ष का सिरा न टूटे। प्रायः एक ही वृक्ष को काटा जाता है। वृक्ष के सिरे टूटने की कम ही संभावना रहती है। अब वृक्ष को रस्से की तरह खींचने की प्रतियोगिता होती है।

प्रतियोगी दल का चुनाव बड़ी सावधानी से किया जाता है। एक दल चण्हौता क्षेत्र से लिया जाता है तथा दूसरा दल अन्य किसी गांव से लिया जाता है। विजयी दल हर्ष-ध्वनि और जय-जयकारे से सारी रावी घाटी को गुंजायमान करता है। इस प्रतियोगिता को भी मनोरंजन का एक बहुत बड़ा साधन समझा जाता है। जहां

मनोरंजन के लिए आधुनिक साधन उपलब्ध हैं। वहां पुराने समय में इस प्रकार के साधनों से काम लिया जाता था। कुश्ती और कौड़ी खेलना भी ग्रामीण मनो-रंजक के प्रचलित साधन हैं। कई साधनों पर कुश्ती भी इस प्रकार मनोरंजन और शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखने का साधन है। वृक्ष खींचने की प्रतियोगिता भी शारीरिक स्वास्थ्य को परखने का उत्तम साधन है। आज अन्य मनोरंजन के साधन उपलब्ध होने का भी इसका प्रचलन परम्परागत ढंग से प्रथा के तौर उसी तरह चला आ रहा है।

बांढे का आयोजन मन्दिर में किया जाता है। चण्हौता गांव में लक्ष्मी-नारायण (विष्णु), शिव और नाग के मन्दिर हैं। अतः बांढ़े का आयोजन मन्दिर के खुले प्रांगण में किया जाता है। लोगों का कथन है कि बांढे का आयोजन नौ दिन तक लगातार किया जाता था। अतः प्रकाश की व्यवस्था की अत्यधिक आवश्यकता रहती थी। अतः हर परिवार का व्यक्ति एक जंगणी का गट्ठा ले आता था इस प्रकार से ऊपर चिना जाता था ताकि ऊंची लपट दूर-दूर तक प्रांगण में प्रकाश पहुंचा सके। साथ में ही आग का घियाणा भी जलाया जाता था ताकि वातावरण में गर्मी रहे तथा लोग आसपास बैठ सकें।

जैसे कि पहले लिखा गया है कि आजकल यह बांढा एक रात को ही मनाया जाता है। अब भी प्रकाश की व्यवस्था जंगणी (दयार और कैल की विरोजा-युक्त लकड़ी) का प्रयोग किया जाता है। हर परिवार का व्यक्ति इस नाट्य का आस्वादन लेने के लिए शौक से भाग लेते हैं।

बांढे में मनोरंजन का मुख्य साधन स्वांग का आयोजन है। हरणनाट्य की तरह बांढे में भी विभिन्न स्वांगों का आयोजन होता है। अन्य बांढे उत्सव में चन्द्रौळी (चंद्रावळी—पुरुष का स्त्री वेश में स्त्री पात्र का कार्य करना) का भाग नहीं होता परन्तु यहां के बांढे में चंद्रौळी का स्वांग भी निकाला जाता है। हिरण और अन्य वन्य जन्तुओं के स्वांग का भी प्रचलन है। गद्दी और गद्दन का स्वांग भी बनाया जाता है।

हर स्वांग अपनी-अपनी वाक्पटुता दिखाने का प्रयत्न करता है। यद्यपि किसी कथा विशेष का अभिनय अनिवार्य नहीं है फिर भी सारी रात गाने-बजाने, नाचने-कूदने और हंसी-मखौल से दर्शकों को व्यस्त रखा जाता है। सम्वाद भी कोई निश्चित नहीं। अपनी वाक्पटुता और हाजिर-जवाबी से वातावरण को कुतूहलपूर्ण बनाये रखा जाता है। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद हंसी के फव्वारे फूटते रहते हैं।

चण्हौता का बांढा समाप्त हुआ नहीं कि क्वार्सी में भी बांढा आरंभ होता है। क्वार्सी चण्हौता से आठ या दस कि० मी० के फासले पर एक सुन्दर स्थली है। यह गांव चारों ओर से ऊंची-ऊंची पहाड़ियों से घिरा है। चारों ओर सुरम्य जंगल

हैं। मध्य में सुन्दर गांव है। नाग का मन्दिर गांव के ठीक बीच में है। यहां असूज मास की तीन तिथि को बांढे का आयोजन किया जाता है। बांढे में प्रकाश की व्यवस्था और घियाण (अग्नि का प्रज्वलन) भी उसी प्रकार होता है। स्वांग भी पूर्वकथित ढंग से आयोजित किए जाते हैं।

शुटकर और दयोल गांव में भी इसी प्रकार के बांढा-नाट्य का आयोजन किया जाता है।

मनोरंजन

भरमौर में सर्दी का मौसम अत्यन्त ठंडा होता है। अधिकांश क्षेत्र के बहुत से लोग कांगड़ा क्षेत्र में प्रवास कर जाते हैं परन्तु रावी घाटी की निचली के लोग प्रवास नहीं करते। भले ही ये निचली उपत्यका के लोग चम्बा तहसील में हों परन्तु वे भरमौर की गद्दी संस्कृति से ओतप्रोत हैं। यह भाग भी अत्यन्त ठंडा है परन्तु यहां का जन-जीवन वर्ष भर अबाधगति से चलता रहता है। यहां होली उत्सव अपना विशेष संदेश लेकर आता है। होली उत्सव से यहां सर्दी का अन्त माना जाता है। होली के दिन 'हरनात्र' नाट्य यहां के लोगों का विशेष मनोरंजन करता है। हर परि-वार उत्सुकता से 'हरण-नाट्य' की प्रतीक्षा करता है। इसका गद्दी पात्र जिसे रौळु भी कहा जाता है अपने हास्य-विनोद सम्वाद से हंसी के फव्वारे उभारता है। सभी हंस-हंस कर कुप्पे बन जाते हैं। अन्य स्वांग भी अपने नृत्य अभिनय से लोगों का मनोरंजन करते हैं। वास्तव में इन स्वांगों की वेशभूषा ही उत्सुकता और मनोरंजन का साधन है। होली जलाते समय भी आवाजें दे-देकर अन्य परिवारों से हंसी-मखौल करना भी स्वयं मनोरंजन है। होली के आठ दिन बाद होली से सम्बन्धित उत्सव 'फगोल' मनाया जाता है। इस उत्सव में होली के दिन एकत्रित किए धन और अन्न से एक भोज का आयोजन किया जाता है। होली के दिन वाले पात्र स्वांग-नृत्य करते हैं। उस दिन का 'रोट छडणा' प्रथा मुख्य आकर्षण होता है। इस के अन्तर्गत दो युवक दौड़ लगाते हैं। एक को 'रोट' पका कर हाथ में पकड़ाया जाता है। वह आगे-आगे भागता है। दूसरा युवक उसका पीछा कर रोट छीनने का प्रयत्न करता है। यदि रोट वाला धावक दूसरे युवक ने छू लिया तो पीछा करने वाले युवक की जीत मानी जाती है। सभी लोग उत्सुकता से इस दौड़ प्रति-योगता को देखते हैं। विभिन्न अवसरों पर कई देवालयों में यात्रा उत्सव तिथियों को आयोजित होते हैं जिसमें नृत्य और पंघूड़ा विशेष मनोरंजन का साधन बने रहते हैं। विवाह उत्सवों में महिलाओं का 'डंगी नृत्य' मनोरंजन का आकर्षण बना रहता है। पुरुष नृत्य जो रात को अंचली लोक-गीत पर किया जाता है विशेष आकर्षण का साधन है। दिन को 'डंडारस' नृत्य जिसमें पुरुष नाचते हैं। आकर्षण का माध्यम है। विवाह उत्सव में वर और वधु 'कंगणे' खोलने का रिवाज भी है।

कंगन खोलने वाला पुरुष या स्त्री क्रमशः वर और वधु का धर्मभाई और बहन (मित्र-मित्रनी) माने जाते हैं। इन मित्रों में भी दौड़ की प्रतियोगिता आयोजित करने की प्रथा है। कहीं दूर अज्ञात स्थान पर अखरोट मिट्टी में दबाया जाता है। उन दोनों को एक साथ उसे खोज कर लाने के लिए भगाया जाता है। सभी लोग बड़ी उत्सुकता से इस दौड़ का अवलोकन करते हैं।

विवाह-उत्सव पर एक खेल प्रतियोगिता भी विशेष आकर्षण का कारण बनती है। इस खेल प्रतियोगिता को 'छकड़ी खेलना' या 'कौड़ी खेलना' से जाना जाता है। यह एक प्रकार का चौपड़ का खेल है जिसमें चार या छः व्यक्ति एक ओर और इतने ही दूसरी ओर होते हैं। वे बारी-बारी से छः कौड़ियां एक साथ जमीन पर फेंकते जाते हैं। कौड़ियों के उल्टे-सीधे पड़ने के मूल्यांकन पर ही चौपड़ पर गट्टियों का प्रचलन किया जाता है। हार की ओर अग्रसर पक्ष को उस पक्ष के लोग सहारा देते हैं जब कि जीतने वाले पक्ष की ओर से जयकारे और हर्षध्वनि से वातावरण गूंज उठता है। जीतने पर बड़ा हर्ष-उल्लास होता है। वातावरण बार-बार गूंज उठता है। यह एक प्रकार का मैच ही है।

चौपड़ श्रेणी के खेल पुरातन समय से ही खाली समय में मनोरंजन के साधन थे। लोक-गीतों में चौपड़ का वर्णन रामायण काल से जोड़ा गया है। रामायण लोकगीत (अंचली) और घुरैही में इसका विशेष वर्णन हुआ है। लोकगीत (अंचली) की आरम्भिक पंक्तियां इसी खेल के वर्णन से खुली हैं—

'राम कन्ने लछमण चौपड़ खेले,
सिया राणी'कंढदी कसीदा हो !"

चित्रकारों ने भी इसको अछूता नहीं छोड़ा। चम्बा रूमाल में चित्रपट पर चौपड़ को चित्रित किया गया है। चौपड़ श्रेणी में चौपड़ की तरह के ही अन्य स्थानीय प्रचलन के अन्य खेल 'ब्राघचूहड़ा', 'नौगिटळा' इत्यादि हैं जिन पर पत्थर की गिट्टी मोहरे का काम करती हैं। चरवाहों में इस खेल का अब भी प्रचलन है।

'नवाळा' उत्सव के समय भी अंचली नृत्य 'डंडारस' और 'डंगी नृत्य' के साथ-साथ कौड़ी जैसी मनोरंजन प्रतियोगिता का प्रचलन भी है।

भरमौर का 'बांढा उत्सव,' हिमाचल के अन्य स्थान पर आयोजित होने वाले 'बांठड़ा नाट्य' से ही मिलता-जुलता है। इसमें स्वांग (हिरण और चन्द्रौली) बनाए जाते हैं जिनका अभिनय और वेशभूषा स्वतः मनोरंजक होती है। 'बांढा' उत्सव स्थान-स्थान पर निश्चित तिथि को मनाया जाता है जिसमें एक वृक्ष की एक लम्बी टहनी को प्रतियोगिता के आधार पर खींचने की प्रथा भी है। यह एक प्रकार का रस्साकशी-सा खेल है। प्रतियोगिता दो अलग-अलग क्षेत्र के लोगों में हुआ करती

है। इसमें हराने वाले नवयुवकों की खिल्ली उड़ाई जाती है जब कि जीत-पक्ष वाले क्षेत्र के नवयुवक विजय-पताका फहरा कर जयकारे के साथ अपने क्षेत्र में ले जाते हैं। यह मनोरंजक प्रथा भरमौर के होली क्षेत्र में विशेष प्रचलित है।

भरमौर के चण्होता गांव में एक मनोरंजक प्रथा रागस (राक्षस) भगाने की है। सर्दियों में चण्होता कोठी में किसी एक व्यक्ति को 'रागस' का स्वांग बनाया जाता है। उसके पीछे लकड़ी की मशालें जला कर भगाया जाता है। भागते समय शोर व गुल किया जाता है। यह दृश्य बड़ा मनोरंजक लगता है। यह परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इस प्रथा को मनाने के साथ-साथ मनोरंजन भी हो जाता है।

चम्बा के छतराढ़ी क्षेत्र में मनिमहेश मेले के साथ यात्रा-उत्सव आयोजित किया जाता है जिसका आरम्भ स्वांग नृत्य से होता है। ये स्वांग राक्षस और देवी के होते हैं। देवी ने राक्षस पर विजय पाई, इसका अभिनय बड़े मनोरंजन ढंग से किया जाता है गद्दी नृत्य तो स्वतः ही मनोरंजन का कारण है। नृत्य की चर्म-सीमा के समय 'आळी-माळी' अभिनय क्रिया मनोरंजक लगती है।

विवाह उत्सव पर हर स्थान पर वर-पक्ष के लोगों पर गाली की बौछार करने की प्रथा भी मनोरंजन का विषय है।

बच्चों में तो हर समय मनोरंजनात्मक प्रवृत्ति का फूटना स्वाभाविक है। गुड्डा-गुड्डी का खेल, आंख-मिचौनी (लुक-लुकौनी) कुक्कू और राजा-रानी का नाटक अभिनय जैसे मनोरंजक खेल स्वतः प्रवाहित होते हैं। संसार का हर बच्चा इस प्रकार के मनोरंजन किया करता है।

सर्दी की रातें लम्बी होती हैं अतः दादी मां ऊनी सूत कातते हुए बच्चों के मनोरंजन के लिए लोक-गीत गुनगुनाती और लोक-कथाएं सुनाती जाती हैं। इन लोक-कथाओं में बच्चों की भावनाओं का मार्जन होता है। राजा-रानी की कथाएं, जादू-टोने के चमत्कार की कहानियां, राक्षस की मनोरंजक कथाएं, सदाचार की कथाएं, साहस और शौर्य की कथाएं तथा चतुराई के किस्से बच्चों का मनोरंजन करते हैं। सूझ-बूझ की परख के लिए फालणी या फणूहणी (पहेली) का प्रचलन आज भी है। रात को आग के इर्द-गिर्द इस प्रकार के दौर चलते हैं।

घुरैंही लोकगीतों मनोरंजन—घुरैंही लोक-गीत महिलाओं में प्रचलित हैं। ये लोक-गीत हर उत्सव पर गाये जाते हैं। घुरैंही के साथ-साथ महिलाएं नृत्य भी करती हैं। इस गीत-माला के लिए चैत मास का आरम्भ उचित अवसर है। होली के समागम पर सुहावनी ऋतु आरम्भ होती है अतः महिलाएं घर के प्रांगण में एकत्रित हो लगातार पन्द्रह-बीस दिन घुरैंही गातीं और उस पर नृत्य करती हैं। आधुनिक समाज में जटिलताएं आने के कारण इस हर्ष और उल्लास को अब कदाचित ही देखा जाता है। घुरैंही अब विवाह-उत्सव के समय और अन्य उत्सवों

पर पूर्ववत् गाई जाती है।

मसाधे और मनोरंजन—मसाधे लोक-गीतों का लोकगायक पौराणिक कथाओं का संरक्षक है। लोगों ने न ही पुराण पढ़े हैं और न ही विद्वानों से सुने हैं फिर भी उनके पास पौराणिक कथाओं का अथाह भण्डार है। यह सब मसाधा लोकगायक की देन है मसाधा-लोक गायक के पास दो वाद्य यंत्र होते हैं एक 'रैवान' और दूसरा 'खंजरी'। यह गायक एक हाथ से 'रैबान' बजाता है और दूसरे से 'खंजरी'। इन यंत्रों का ताल और लय के साथ गाकर किसी पौराणिक कथा का रोचक ढंग से वर्णन किया जाता है। यजमान लोग उसे अपने घर ठहराते हैं। बहुत से लोग निमंत्रण पर मसाधा गायन सुनते हैं। लोगों की फरमायश पर किसी लम्बी पौराणिक कथा को सुनाया जाता है जो सारी रात चलती रहती है। बीच-बीच में कई मनोरंजक प्रसंग सुनाए जाते हैं। कथा-प्रसंग को प्रोत्साहित करने के लिए एक व्यक्ति को 'हुंकारा' भरने के लिए नियुक्त किया जाता है जो गायक और श्रोताओं के बीच संचालक का काम करता है। कभी-कभी वह लोगों के मनोरंजन के लिए प्रसंग को मनोरंजन और हास्य-विनोद की ओर भी मोड़ देता है। जिससे श्रोताओं में हंसी के फव्वारे फूटते हैं। इस प्रकार कथा-वस्तु ज्ञानवर्धन के साथ-साथ रोचक भी होती है। बीच-बीच में श्रोताओं में गायक और संचालन के माध्यम से शास्त्रार्थ भी चल पड़ता है। गायक दो होते हैं जो एक साथ गाते और फिर उनमें से मुख्य गायक कथा को मौखिक समझाता है। कभी-कभी गायक अपने साथ अपनी पत्नी को ही सहायक गायक रखता है।

इस प्रकार के उत्सवों में धार्मिक प्रवृत्ति निहित रहती है। यजमान इस लोकगायक की खंजरी और रैवान अन्न से भर देता है। श्रोतागण भी खंजरी में पैसे डालते हैं। ऐसे मनोरंजन के माध्यम से गद्दी संस्कृति के बहुत से पहलू अब भी सुरक्षित हैं।

लोक-कथाएं

एक समय था जब घर का बुजुर्ग अपने पोते-पोती को सर्दियों में आग के पास बैठ कथाएं सुनाते थे। उत्सुक नन्हे श्रोता रात को आग के पास बैठकर अपने दादा-दादी से अपनी मनचाही कथा सुनने के लिए फरमाइश करते थे। दादी मां चरखा कातते हुए कथा सुनाने आरम्भ करती। बच्चे हुंकारे भर कथा को सुनते जाते। कुछ बच्चे किलकारियां भर हंसते और मचलते। इस प्रकार माहोला में श्रोता मंद्रमुग्ध कथा का आनन्द लेते। अब बच्चे भी अपनी दादी मां और बूढ़े दादा को कथा सुनाते। लम्बी रातें इसी वातावरण में व्यतीत की जातीं। सोते समय आसमान के तारों को देख कर समय का अनुमान लगाया जाता। कभी-कभी सोने के बाद जल्दी नींद खुलने पर भी कथा का दौर चलता। बच्चे इन कथाओं को कंठस्थ कर लेते। अब समय बदल गया है। ये दन्त-कथाएं धीरे-धीरे भूलती जा रही हैं। कारण स्पष्ट है आधुनिक सिनेमा, शिक्षा और कार्यव्यस्तता ने इस कला को काफी धक्का पहुंचाया है। आज का बच्चा स्कूल के काम में ही इतना व्यस्त रहता है कि उसको इतना समय ही कहां कि दादी-मां की लोक-कथाओं का आनन्द ले सके। यदि समय मिलता भी है तो घरेलू धंधे से ही छुटकारा नहीं मिलता। जो बच्चे स्कूल नहीं जाते वे सड़क या ठेकेदार की मजदूरी तो अवश्य करते होंगे जो शाम को थके-मांदे घर पहुंचते हैं। यदि कहीं समय मिल भी गया तो बिना चहल-पहल के कथा का आनन्द ही कहां। यही कारण है कि आज का बच्चा अब उन लोक-कथाओं का आनन्द लेने में असमर्थ है। अब वह दादी मां भी नहीं रही जो एक कथा को अपने दिमाग में संजोई थी। वह तो कथा की पिटारी थी। दादा जी भक्तिकथा के कम माहिर नहीं थे। अब वह दादा-दादी भी नहीं मिलते।

इस प्रकार की प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लोक कथाओं का वर्णन यहां किया जाता है जो जनजातीय क्षेत्र में व्यापक हैं।

कुगती के केलंग की कथा—कहा जाता है कि कई पीढ़ियों पूर्व कुगती के केलंग नाग लाहोल में केलंग के स्थान पर रहा करते थे। गद्दी हर वर्ष चरागाह की खोज में लाहोल जाया करते हैं। एक समय भेड़ों को बीमारी पड़ी। गद्दी लोगों

की असंख्य भेड़ें मर गईं । अब वे केलंग की शरण में पड़े । केलंग को सुक्खण (मनौती) की कि यदि वह उनके साथ रहकर भेड़ों की रक्षा करेगा तो गद्दी लोग उसे जात्र देंगे यानी कि वे उसकी मनौती मनाएंगे । एकत्रित जन समूह उसकी प्रार्थना कर सम्मान करेंगे । केलंग उनकी मनोकामना पूरी करने के लिए एक मेंढ़े के सींग पर स्वार हो 'डुग्घी' नामक स्थान पर पहुंचा । काफी पीढ़ियां डुग्घी में काटीं । अब केलंग जी दारूण नामक स्थान पर उतर आए जो नदी के किनारे ठंडा स्थान था । पुजारी लोग बड़ी कठिनाई से वहां पहुंचते थे । अतः पुजारियों ने केलंग के चेले से प्रार्थना की कि वह नीचे उतर आयें तो लोगों के कष्ट निवारण हो सकते हैं । कलिहर नाग (केलंग) ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और कहा कि वहां से 'भण' (एक वाद्य-यन्त्र) को गिरा दो जहां ये रुकेगा वहीं मन्दिर बनाया जाये । अब यह वाद्य-यन्त्र कुगती में वर्तमान मन्दिर के स्थान पर थमा । वहीं मन्दिर बनाने के लिए दीवारों की नींव की खुदाई आरम्भ हुई । वहां एक त्रिमुखी मूर्ति मिली । मूर्ति की स्थापना होने पर नदी की धारा बहने लगी । तभी से केलंग नाग कुगती में बसे हैं ।

छतराढ़ी देवी और उसकी बहनें (लोककथा)—कहा जाता है कि छतराढ़ी देवी आदि सात बहनें थीं । अब यह समय भी आ गया जब उनके अलग होने का समय आया । उन्होंने अपनी धन-दौलत को बांटने का निश्चय किया । मनुष्य ही नहीं अपितु देवी-देवता भी कभी-कभी लालच में आ जाते हैं । छः बहनों में अपनी छोटी बहन को मेढ़ी नामक गांव से तकड़ी (तराजू) लाने के लिए भेजा । छोटी बहन दौड़ी-दौड़ी मेढ़ी गांव में गई । उसने वहां जाकर एक बुढ़िया से तकड़ी मांगी । बूढ़ी दही बिलो रही थी अतः उसने उस लड़की (देवी) को थोड़ी देरी के लिए दही बिलोने के लिए कहा । लड़की मान गई और दही बिलोने लगी । बुढ़िया ने देखा कि उसके दही बिलोते समय मक्खन ही मक्खन नजर आने लगी । अब बुढ़िया लालच में पड़ गई । उसने तराजू खोजने का बहाना किया तथा देवी को जान-बूझकर दही बिलोने लगा रखा ।

उधर छः बहनें काफी समय तक प्रतीक्षा करती रहीं और अन्त में जब उन्होंने देखा कि उनकी छोटी बहन नहीं आई है तो उन्होंने सारी धन-दौलत और सोना-चांदी छः भागों में बांट लिया । छोटी बहन को कुछ नहीं बचा ।

जब छोटी बहन तकड़ी लाकर छतराढ़ी पहुंची तो सब कुछ बांटा जा चुका था उसे कुछ भी नहीं रहा था । उसको रोने के सिवाय कोई चारा नहीं था । वह इतनी रोई, इतनी रोई कि मिट्टी भी काली हो गई । वह छतराढ़ी की रीढ़ी पर बैठ गई । वहीं उसका मन्दिर बना जिसे आज लोग 'परौळी वाली भगवती' कहकर पुकारते हैं । अन्य बहनें इस प्रकार हैं :(1) शक्ति देवी छतराढ़ी,(2)देवी अम्बिका कांगड़ा, (3) बैरवाली बैरा (चुराह-चम्बा), (4) चामुंडा चम्बा, (5) मिधला-पांगी, (6)

महेषासुर-मर्दनी-भरमौर। सातवी स्वयं 'परौली वाली भगवती।'

घटोहर की देवी बलैकरेरी—बात बहुत पुरानी है। भरमौर के रण्हू कोठी क्षेत्र में एक गांव है जिसका राम घटोहर है। घटोहर आज भी जंगल से घिरा है। कई सौ वर्ष पहले तो पता नहीं कितना घना जंगल था। कहते हैं यहां आस-पास राक्षस रहा करते थे। एक बार एक व्यक्ति 'रै' वृक्ष काटकर उसके फाड़-फाड़कर फाटु (एक प्रकार का कुल्हाड़ी से फाड़ा तखता जो आरी से न चीरा हो) बना रहा था। उसके काम करते-करते दो राक्षस-स्त्रियां आ खड़ी हुईं वे कहने लगीं—"रे मानव! हम तेरा कलेजा 'जिगर' खाएंगी" वह बेचारा हक्का-बक्का रह गया लेकिन फिर भी उसने हौसला बटोर कर कहा—"मुझे खाने से पूर्व मेरा एक काम कर दो!"

"बोलो!"

"मैं कुल्हाड़ी से छेद करता हूं, तुम हाथ से इस तखते को उठाओ।"

"लो!" कहकर उनमें से एक राक्षसी ने अपना हाथ उस दरार में डाल दिया।

उस मनुष्य ने मौका पाकर अपनी कुल्हाड़ी निकाल ली। अब क्या था कि उस राक्षसी के दोनों हाथ उन तखतों के बीच फंस गए। वह रोने और चिल्लाने लगी। उसके संग आई दूसरी राक्षसी दुम-दबा कर भाग गई। अब वह उस मनुष्य से अनुनय विनय करती—"मुझे छुड़ाओ! मुझे छुड़ाओ!"

अब उस मनुष्य ने कहा—"मैं तुम्हें तब तक न छोड़ूंगा जब तक तू मुझसे वायदा न करोगी!"

उसने वायदा करने का वचन दिया। अब उस मनुष्य ने कहा—"तुझे मुझसे विवाह करना होगा!"

"स्वीकार!"—उसने कहा।

उसने उस राक्षसी के हाथ छुड़ा दिए। अब वह अपने प्रण को न भूली। वे दोनों विवाह बन्धन में बंध गए। उस राक्षसी ने विवाह करने से पूर्व उस मनुष्य से वचन लिया था कि विवाह के बाद वह किसी से बात नहीं करेगी।

अब वे दोनों पती-पत्नी बनकर जीवन बिता रहे थे। जब वह खेत में काम करती तो अपने कुच पीठ के पीछे फैंक रखती। बच्चे कुचों से लटकर दूध पीते रहते। वह चुप्पी साधे अपने काम में मग्न रहती।

इसी तरह कई वर्ष बीत गए। कहते हैं राक्षसी को हर बारह वर्ष बाद हिम-नद (पहाड़ी में—हैण) के वाहन का काम करना पड़ता है। अब उसकी बारी थी उसने हिम-नदी का एक मशाल लेकर वाहन करना था। यह कार्य अपने प्रकार का जोखम का कार्य होता है। वह अब अपनी तैयारी में लगी थी। उधर उसका पति इस ज़िद पर उतरा था कि आज जाने से पूर्व वह उसके मौन को तोड़ेगा

परन्तु उसे यह पता न था कि ऐसा करने पर इसका कितना भयंकर परिणाम होगा। वे दोनों चूल्हे के पास बैठे थे। चूल्हे पर घी गर्म करने रखा था। घी उबलने लगा तो उसकी राक्षसी पत्नी के मुंह से अचानक शब्द निकल गया—

"ओ ! घी उबल गया।"

अब वह समझ गई थी कि वह हार गई है। उसने जाने से पूर्व कहा—"ये दीपक जलाकर रखा है ! साथ ही एक कौली में दूध रखा है ! मेरे जाने के बाद यदि दीपक बुझ गया और कौली में डाला दूध खून बन गया तो समझ लेना कि मैं हिम-नद का वाहन करते-करते दुर्घटनाग्रस्त हो गई हूं।" यह कहकर वह अपने काम पर चली गई।

उसी दिन थोड़ी देर के बाद दीपक भी बुझ गया और उस वर्तन का दूध भी खून में परिवर्तित हो गया।

घर वालों ने उसके मृत शरीर की खोज आरम्भ की। उसका शरीर तो नहीं अपितु सिर के लम्बे-लम्बे बालों के सिवाय कुछ न मिला। अब उसको देवी रूप मान लिया गया। उस देवी के मन्दिर की स्थापना की गई। आज भी उसकी संतान के परिवार उसे पूजते हैं। जब कभी उन परिवारों में किसी की मृत्यु हो जाती है। तो वह "बच्चा ! बच्चा !" कह कर रोती सुनाई देती है ऐसा स्थानीय लोगों में लोक-विश्वास है।

कार्तिकेय की स्थापना कथा—छोली (त्रेठा) क्षेत्र में कुलेट नामक गांव में कार्तिकेय स्वामी का प्राचीन मन्दिर है। पत्थर की मूर्ति के ऊपर नीचे तीन-तीन की पंक्ति में छः सिर हैं। मूर्ति के छः हाथ हैं। मूर्ति काले पत्थर की बनी है। यह अनुपमकृति है। इस के विषय में भी एक पुरानी कथा प्रचलित है। कहते हैं एक पुहाल (चरवाह) नदी के किनारे भेड़ और बकरिया चरा रहा था। वह अपने कुल्हाड़े को पत्थर पर तेज करने लगा। पत्थर से खून बहने लगा। वह यह सब देखकर हैरान हो गया। उसने उस पत्थर को पलटा तो क्या देखता है कि यह तो सुन्दर पत्थर की मूर्ति थी। उसने उस पत्थर की मूर्ति को पीठ पर उठा लिया और घर की ओर चल दिया। चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते वह थक गया। जब वह कुलेठ गांव में बैठा तो उसने मूर्ति को थोड़ी देर के लिए जमीन पर रख दिया। थकावट दूर होने पर उसने फिर उस मूर्ति को अपनी पीठ पर उठाना चाहा परन्तु अब तो मूर्ति इतनी भारी हो चुकी थी कि वह उसे पुनः नहीं उठा सका अतः उस मूर्ति की स्थापना वहीं कर दी गई। अब मन्दिर का भी निर्माण किया गया।

खनार कथा—भरमौर के जन-जातीय क्षेत्र में एक गांव है। इस गांव का नाम खनार है। बड़ा भंगारुल क्षेत्र का यह सीमावर्ती गांव है तथा भरमौर के पूर्व में चम्बा जिला का अंतिम गांव है। लोग गाय-बैल नहीं पालते अतः सारी

की सारी खेती खोद-खोद कर लगाते हैं इसीलिए इसे खनार का नाम दिया है। 'खणने' का अर्थ खोदने से है इसीलिए इस गांव का नाम 'खणार' पड़ा जिसे बाद में लोग 'खनार' कहने लगे। लोगों को शाप मिला है कि वे गाय-बैल न पालें। इसके विषय में एक लोक-कथा प्रचलित है—

बहुत पुराने समय की बात है। कुछ लोग तो उस गांव में रहते और गाय-बैल की रक्षा करते और कुछ 'जांधर' चले जाते। एक वर्ष लोगों में मत-भेद हो गया। वहां ठहरने के लिए कोई भी सहमत न हुआ क्योंकि वहां की सर्दी बड़े कड़ाके की होती है। वहां जो भी रहेगा कड़ाके की सर्दी का सामना करना पड़ेगा। अब प्रश्न पैदा हुआ कि यदि सभी 'जांधर' चले जाएं तो 'गौ' की रक्षा कौन करे? सबने निश्चय किया कि गाय बैलों को ओवरे में खूब-सा पानी और घास रखा जाए और सभी निचले क्षेत्र को प्रस्थान करें। ऐसा ही किया गया। सभी प्रस्थान कर गए।

अब जब गर्मी का मौसम आया और सभी लोग वापस अपने गांव आए तो सभी पशुओं को मरा पाया। गौ माता ने उस गांव के लोगों को शाप दिया कि उस गांव के लोग भविष्य में गौ नहीं पालेंगे तथा सारी खेती अपने हाथ खोदकर बोएंगे। अनुश्रुति के अनुसार अब वे उसी शाप से ग्रस्त हैं तथा गाय-बैल नहीं पालते। भेड़ बकरी के सिवाय वहां कोई भी पशु नहीं पाला जाता।

त्रिलोचन महादेव की कथा—एक समय की बात है भरमौर के शचूं नामक गांव में एक शिप्पी जाति की बुढ़िया रहती थी। एक दिन शिव जी भेष बदलकर उस बुढ़िया के घर गए और अपनी भेड़ों के लिए नमक मांगा। बुढ़िया ने कहा—"मेरे पास नमक नहीं है।" इस पर उस पाहल (चरवाहा-शिव ने चरवाहे का रूप धारण किया था) ने उस बुढ़िया से अपना नमक का भंडार खोलने के लिए कहा। उसने जब नमक का भंडार खोला तो वह नमक से भरा था। उस बुढ़िया ने उस चरवाहे को चमत्कारी पुरुष समझ कर एक बोझ नमक का दे दिया साथ में उसने अपने लड़के त्रिलोचन को बोझ उठाए उसके घर छोड़ आने के लिए कहा। वे दोनों चलते-चलते मणिमहेश झील के पास पहुंचे वहां वह पाहल अदृश्य हो गया। त्रिलोचन उसे खोजता रहा परन्तु चरवाहे का कोई पता नहीं कहां गया था। उसने झील पर पत्थर को गीला-सा पाया। ऐसा लगता था उस चरवाहे ने मणिमहेश झील में छलांग लगायी हो। त्रिलोचन ने भी झील में डुबकी लगा दी। अब नीचे जाकर वह ऐसे स्थान पर पहुंच गया था जहां एक बहुत बड़ा महल था जिसमें बहुत से नौकर आकर अपना-अपना काम कर रहे थे। कहते हैं यह शिव जी का महल था। उसे भी कपड़े सीने का काम मिल गया।

समय बीतता गया। अब यहां रहते-रहते उसे चार वर्ष बीत चुके थे। अब उसे घर की याद सताने लगी। अब शिव जी ने उसे घर जाने की आज्ञा दी तथा

बैग में उपहार रूप में उसे कपड़े की कुतरन दी लेकिन उसे आज्ञा दी कि वह घर जाकर यह सब भेद न खोले।

उधर घर में उसकी चौवर्षी मनाई जा रही थी। वह अपने गांव के पास ऊंची-सी पहाड़ी पर बैठ गया और बांसुरी की तान छेड़ दी। बांसुरी की तान को सुन उसकी बुढ़िया मां विह्वल हो उठी। उसने कहा—"इस प्रकार की बांसुरी तो मेरा त्रिलोचन ही बजाता था हो न हो…।"

त्रिलोचन अब अपने गांव में पहुंचा। उसने देखा कि एक बुढ़िया वहां बैठी थी। उसके कपड़े बुरी तरह फट चुके थे। त्रिलोचन को उस बुढ़िया पर बहुत तर्स आया उसने बैग वाली कतरन उसको दे दी। वह बुढ़िया ब्रह्माणी देवी थी। उसने उस बुढ़िया का रूप धारण किया था। अब वह अपने घर में पहुंचा। उस की माता की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वे दोनों गले मिले।

रात हुई। अब पत्नी ने उससे पूछा कि इतने साल वह कहां रहा। वह भेद नहीं खोलना चाहता था परन्तु विवश होकर उसे सारा भेद खोलना पड़ा। उस कतरन की बात भी खुली। पत्नी ने स्वभाव वश उस बैग को टटोला तो उसमें एक सोने की मोहर मिली। पत्नी मन-मन बहुत पछताई कि वह सारी कुतरन उसके हाथ लगती!

त्रिलोचन को आज्ञा थी कि भेद न खोले परन्तु शिव के उपदेश की अवहेलना होने पर वह अब पागल हो गया।

वह त्रिशूल हाथ में लिये पागलपन में घर से भाग गया। चलते-चलते वह भरमौर के एक गांव लाहल पहुंचा। कहते हैं वहां उसे प्यास लगी। उस गांव में कहीं पानी तो था नहीं अतः उसने ज़मीन में अपनी त्रिशूल से पांच वार किए। शिव भक्त (चेला) तो था ही अतः शिव के चमत्कार से वहां पांच धाराएं पानी की बह निकलीं उसने प्यास बुझाई। कहते हैं तब से वहां पानी का अभाव नहीं रहा। अब वहां पानी की बावलियां स्थायी रूप से पाई जाती हैं।

त्रिलोचन ने नदी में छलांग लगाकर अपने जीवन को समाप्त किया। उस का पार्थिव शरीर रावी नदी भड़ुआ नामक ग्राम के पास लगा। गूं-क्षेत्र के इस गांव के एक ब्राह्मण को स्वप्न हुआ कि उस गांव में उसके मन्दिर की स्थापना की जाए। ब्राह्मण ने उस स्वप्न की ओर विशेष ध्यान न दिया अतः गांव में बीमारी फैल गयी। अब उसे उस स्वप्न की ओर ध्यान गया। लोग वहां गए तो एक शिव जी की पिंडी को वहां पाया, अतः उस पिंडी को शिव जी का मन्दिर बनाकर स्थापित किया गया। तब से इसे त्रिलोचन महादेव का मन्दिर कहने लगे। मणिमहेश यात्रा के दिन यहां भी इसी प्रकार का रात को जागरण किया जाता है जिसे 'त्रिलोचन महादेव न्होण' कहते हैं।

गद्दी और सांप (कथा)—कैलाश पर्वत भरमौर में भी है जिसे 'चम्बा कैलाश'

कहते हैं। लोगों का विश्वास है कि शिव जी महाराज पार्वती के साथ वहां निवास करते हैं। एक गद्दी ने सोचा कैलाश पर्वत पर चढ़ें और वहां शिव जी के दर्शन करें। एक-एक कदम पर वह एक-एक भेड़ के बच्चे की बलि देता गया। आखिर कहां तक···वह अन्त में पत्थर बन गया। अब जनश्रुति के अनुसार वह अभी तक वहीं खड़ा है।

इसी प्रकार एक सांप ने भी कैलाश पर्वत पर चढ़ने का प्रयत्न किया परन्तु वह भी अपने हठ से पत्थर बन गया। वह सांप भी पत्थर के रूप में लोगों को वहीं पड़ा बताया जाता है।

पढ़ौल नाग का शाप—गूं-क्षेत्र में एक नाग का मन्दिर है। लोग अन्य क्षेत्रों से इसका पूजन करने आते हैं। इस नाग के चमत्कार के विषय में कई कथाएं प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार एक नाग के भक्त को नाग ने बहुत-सा पशु धन दिया। उसने उसे आगे-आगे चलने के लिए कहा। उसे आदेश मिला कि वह तब तक बिना पीछे देखे चलता जाये जब तक वह घर न पहुंच जाये। पशु-धन उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा था। वह पशु की दौड़ की भयंकर आवाज को सहन न कर सका अतः उसने पीछे मुड़कर देखा कि वहीं वह पशुओं के साथ पंक्ति में पत्थर बन गया। लोग आज भी पत्थरों की पंक्ति देख उस घटना को स्मरण करते हैं तथा नाग के चमत्कार की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

देवताओं के चमत्कार की कथाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी कथाएं हैं जो पंचतंत्र की कथाओं की तरह मनुष्य की बुद्धिपरख और चातुर्य की परख पर विश्वास करती हैं। पशुओं में गीदड़ को चतुर पशु कहा जाता है। इन कथाओं में गीदड़ और ढिकलु (ढिकलु एक प्रकार का काले मुंह वाला भोला-भाला जंगली पशु है)। 'गीदड़ और बुढ़िया का भेड़ु' (भेड़ु=नर भेड़) प्रसिद्ध है। 'बिल्ली गंगा नहाने चल्ली' कथा में बिल्ली की बगुला भगती पर प्रकाश डाला है परन्तु चूहा बिल्ली को भी छल जाता है। 'टीटी और चूहा' कथा में टीटी (टिड्डी) का अभाग्य दर्शाया गया है। 'सात बहनों' की लोक-कथा सब जगह प्रचलित है जो मनुष्य की भावनाओं का चित्रण करती है। इन सब कथाओं का स्थानीय प्रचलन आगे दिया जा रहा है।

गीदड़ और बुढ़िया का भेड़ु (भेड़ु=नर भेड़ को भेड़ु कहते हैं)—

एक गांव में एक बढ़िया रहती थी। उसने एक भेड़ु पाल रखा था। घर में रखे वह कमजोर हो गया था। बुढ़िया ने सोचा कि उसे अब कहीं धार (ऊंची पहाड़ी पर चरागाह) पर चरने भेजें। एक दिन उसने 'धार-नगाहर' (बढ़िया ऊंचे स्थान पर चरागाह) चरने भेज ही दिया। उसे रास्ते में गीदड़ मिला। गीदड़ उसे देखकर ललचाया और कहने लगा—'भेड़ु मैं तुझे खाना चाहता हूं।' भेड़ु बेचारा क्या

करता। उसने अनुनय-विनय की—"मियां गीदड़, इस समय तुम मेरा क्या खाओगे केवल चार हड्डियां हैं। जब वापस चरागाह चर कर आऊंगा और मोटा ताजा हो जाऊंगा तो खा लेना।" गीदड़ को विश्वास हो गया अतः उसे जाने दिया। कदम-कदम पर उसे कई अन्य भयंकर जंतुओं का सामना करना पड़ा जिनमें भालु, बाघ और शेर थे जिन्हें उसने इसी तरह टाल दिया।

चरागाह चरते-चरते कितने ही मास बीत गये। अब वह वापस अपने घर आना चाहता था। उसे अब वापसी पर उन सभी जंतुओं का सामना करना था अतः उसने अपने शरीर के इर्द-गिर्द भ्रुज लिपेट दिया ताकि कोई भी उसे न पहचान पाये। चलते-चलते उसे प्रथम शेर का सामना करना पड़ा। शेर ने उसे 'भुज-भुजैहरू' कह कर सम्बोधित किया और पूछा—"मियां भुज-भुजैहरू तुमने मेरा भेडु भी देखा है ?" "हां स्वामी पीछे से आ रहा है !" उसने उसे यह कहकर टाल दिया। इसी प्रकार उसने बाघ और रीछ को भी टाला। गीदड़ कहां टलने वाला। उसे भी जब यही जवाब मिला तो उसने नाक साफ़ करने के बहाने से उसके जिसम से भ्रुज हटाया। अब तो भेद खुल गया। भेडु अपनी जान बचाने लिए भागा उधर उसके पीछे गीदड़, बाघ, भालू और शेर दौड़े परन्तु तब तक भेडु अपने घर सुरक्षित पहुंच चुका था।

गीदड़ और ढिकलु—ढिकलु छोटा सा लम्बी पूंछ और काले मुंह वाला एक वन्य प्राणी है। ढिकलु युगल का आपस में इतना प्रेम होता है कि वे एक-दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते। यह भोला-भाला जानवर है अतः साधारण और सीधे-सादे व्यक्ति को पहाड़ी भाषा में 'ढिकलु' की उपमा देते हैं।

शेर जंगल का राजा माना जाता है। एक दिन शेर ने शिकार किया। मेहदे को 'पोटा' कहते हैं। अन्य मांस का तो शेर, गीदड़ और ढिकलु ने मिलकर उपयोग कर लिया परन्तु अब केवल 'पोटा' रहा। पोटे (मेहदे) को धोने के लिए शेर ने गीदड़ और ढिकलु को पानी पर धोने भेजा। वे धोते गये। गीदड़ चालाक तो होता ही है वह मांस धोता भी जाता था और खाता भी जाता था। ढिकलु बेचारा चुप था। उससे रहा नहीं गया अतः उसने गीदड़ को मांस न खाने के लिए कहा। गीदड़ ने अपनी चालाकी का सहारा लिया। उसने कहा—"जब शेर हमसे पूछे कि मांस किसने खाया है तो तुम मेरे मुंह की ओर देखना—मैं सब निपट लूंगा।"

वे 'पोटे' को धोकर शेर के पास ले गये। जब शेर ने मांस को कम पाया तो वह आग-बबूला हो गया और गुस्से में पूछा—'मांस किसने खाया है ?' इस पर बेचारा ढिकलु गीदड़ के मुंह की ओर ताकने लगा। गीदड़ को मौका मिल गया कहने लगा—"ढिकलु मियां अब मेरे मुंह की ओर क्या देखते हो। उस समय मैं तुझे कहता था कि मांस न खाओ तब तुम मानते न थे।" ढिकलु पर सौ घड़े पानी पड़ गया। जब शेर ने यह सुना तो उसने न आव देखा न ताव और ढिकलु पर

झपट पड़ा तथा उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। बेचारे की सीधा-सादा होने के कारण जान गई।

बिल्ली गंगा नहाने चली—एक दिन बिल्ली को भी धार्मिक कृत्य सूझा। उसने नाक पर चौपड़ (मक्खन) लगाई। माथे पर तिलक लगाया और चल पड़ी गंगा नहाने। रास्ते में उसे चूहा मिला। उसने पूछा "बिल्ली ! तुम कहां चली ?" "नक्के चौपड़ लाइयो, गंगा नहाने चल्लियों !" "क्या मुझे खाओगी तो नहीं ?"

"धत पापी कहीं का। मैं धार्मिक कृत्य पर चली हूं क्या ऐसा कुकृत्य मुझे इस समय सजता है ?" उसने चूहे को डांटा। चूहा उसके साथ हो लिया। इसी प्रकार एक-एक कर उसे चकोर, मुर्गा, कबूतर और अन्य पशु पक्षी भी मिले। सभी को बिल्ली ने बारी-बारी से वही उत्तर दिया। वे गाते-बजाते, धार्मिक गीत गाते धार्मिक यात्रा पर चलते रहे।

एक दिन रात पड़ी। बिल्ली ने कीर्तन शुरू किया। स्वर और ताल में सभी मस्त हो गये। सभी नाचते जाते बिल्ली गीत गाती जाती। चूहे को उसकी बद-नियत पर शक था अतः हर कदम पर वह नाचते समय बिल खोदता जाता था। जब गाने-बजाने और नाचने की चर्म-सीमा आई और सभी अपने में मस्त थे बिल्ली ने सब पर छलांग लगाई और तो सब पकड़े गये परन्तु चूहा होशियारी से अपने बिल में घुस गया। अब बिल्ली उसे कहती—"चूहे, चूहे ! बाहर निकलो !" वह उत्तर देता—

"बिल्ली-बिलंदर तुम बड़ी मुंकदर !
हम न्हाते धोते बैठे अंदर !"

टिड्डी की कथा—टिड्डी एक छोटा-सा कीट है जिसे टिड्डो कहते हैं। एक दिन उसे उसके माता-पिता ने मारा-पीटा। अब उसने आवेश में आकर घर छोड़ दिया। अकेले घर छोड़कर बिना सहारे कैसे रहे अतः उसने पति चुनने का निश्चय किया। रास्ते में उससे अनेक मनचले युवक पशुओं का मिलन हुआ। सबसे पहले उसे रीछ मिला। रीछ ने उससे पूछा—"टिड्डी ! तू कहां चली ?"

"अम्मा मारी, बापुए मारी, खसम करने चल्ली।" टिड्डी ने तुरंत उत्तर दिया।

इस पर रीछ ने कहा, "तो मुझे ही खसम कर लो !"

"तो तुम अपना खान-पान बताओ", टिड्डी बोली। "मैं फल खाती हूं। कैंथ (एक काला सा फत) मेरी अब भाती खुराक है। मक्की के कच्चे भुट्टे भी खाता हूं।" रीछ ने सिफारिश की। इस पर टिड्डी ने तप्पाक से उसकी भर्त्सना की, "छी ! यह भी कोई खाना हुआ !" वह उसे छोड़ आगे बढ़ी। अब उसे बाघ मिला

बाघ की पेशकश पर उसे भी अपने रहन-सहन और खान-पान के विषय में स्पष्टीकरण करने के लिए कहा।

बाघ ने अपने खान-पान और रहन-सहन का परिचय यूं दिया—"मैं जंगल में रहता हूं। मांस-मांसोलु खाता हूं।" "छी ! यह भी कोई खान-पान हुआ।" टिड्डी उसे दुत्कार कर फिर आगे बढ़ी। उसे एक से एक बढ़ कर जंगली जंतु मिले और अपना-अपना परिचय दिया परन्तु टिड्डी को कोई भी पसंद नहीं आया।

अंत में उसे चूहा मिला। चूहे ने अपना परिचय दिया—"मैं हर प्रकार के अन्न खाता हूं। हर प्रकार की खाद्य बस्तुओं का मेरे घर में भंडार रहता है। सबसे उत्तम खाद्य पदार्थ अखरोट है जिसका मेरे भंडार में अभाव नहीं !"

टिड्डी को चूहा पसंद आ गया अत: वे प्रणय बंधन में बंध गये।

वे अब खूब मौज-मस्ती में घूमते फिरते। खाते पीते। यूं ही काफी समय बीत गया।

एक दिन टिड्डी ने चूहे से कहा—"तुम रोज अखरोट ले आते हो। मुझे भी अखरोट के वृक्ष पर ले चलो।" वे एक विशाल अखरोट के वृक्ष के नीचे पहुंचे। टिड्डी वृक्ष के नीचे बैठ गई और चूहा ऊपर से उसे अखरोट फेंकता गया। टिड्डी खाती गई और चूहा अखरोट ऊपर से नीचे फेंकता गया। अब चूहा नीचे उतर आया। चूहे ने पूछा—"प्रिय खूब खा लिये और तो नहीं चाहिए ?"

स्त्रियां स्वभाव से ही लालची होती हैं। टिड्डी ने ऊपर देखा। एक सुन्दर अखरोट दूर टहनी से लटक रहा था। टिड्डी का दिल ललचाता रहा। चूहे से उस अखरोट को लाने के लिए कहा। चूहे ने कहा—"प्रिया ! यह बहुत दूर है। इसे रहने दो।" परन्तु टिड्डी कहां मानती। वह तो उसे लेकर ही रहेगी अत: चूहे को ऊपर चढ़ना पड़ा। अभाग्य से जब चूहा उस अखरोट पर झपटा वह धड़ाके से नीचे गिर पड़ा। उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। टिड्डी अपने हठ के कारण उसके साथ बैठी विलाप करती रही—"हाय कंत, तुम कहां गये ! तुम्हारे कान कितने सुन्दर हैं ! ऐसे लगते हैं जैसे 'सूप' हों ! दांत तो मानो मोती की लड़ी हों। टागों की तो उपमा ही क्या ?"

सात बहनें—एक था ब्राह्मण उसकी सात लड़कियां थीं। उन लड़कियों की माता का देहान्त हो चुका था। ब्राह्मण ने दूसरा विवाह किया था अत: ब्राह्मणी उनके साथ विमाता का व्यवहार करती थी। ब्राह्मण को भी उसने अपने वश में कर रखा था।

ब्राह्मण की कहां हिम्मत कि वह इतने बड़े परिवार का पालन कर सके। वह थोड़ा बहुत घर-घर जाकर जो कुछ मांग कर लाता वह सारे परिवार के लिए काफी न होता। ब्राह्मणी बड़ी चालाकी से काम लेती। वह अपने लिए तो आटे की रोटियां बनाती परन्तु उन लड़कियों के लिए चोकर की रोटी बनाती और उन

लड़कियों को देती। लड़कियां उस चोकर की रोटी को गाय को देती बदले में गऊ उन्हें बढ़िया भोजन देती।

जब ब्राह्मणी ने देखा कि लड़कियां तो हर दिन स्वस्थ होती जा रही थीं। ब्राह्मणी इस रहस्य का पता लगाना चाहती थी। उसने गुप्तरूप से यह सब जानना चाहा। अंत में उसको पता लग गया कि गऊ ही उनके लिए कामधेनु का काम कर रही थी। अब उसने ब्राह्मण से मंत्रणा की कि इन लड़कियों को जंगल में छोड़ आये ताकि बढ़िया से बढ़िया भोजन का आनंद वे उठा सकें।

ब्राह्मण एक दिन बहाने से जंगल में ले गया। उसने उन्हें कहा—"देखो बेटी, मैं उस नदी के पार जाकर भोजन लाता हूं परन्तु यदि तुम इस नदी के पानी को गदला पाओ तो समझो कि मैं मर गया हूं !"

वे बच्चियां नदी को निहारती रहीं। अंत में क्या देखती हैं कि नदी का पानी गदला हो गया है। वे बेचारी निराश हो गईं। अब उनका सहारा जाता रहा। उनकी ओर से उनका बाप मर गया था। परन्तु यह सब चालाकी उस ब्राह्मणी की थी। वह उन्हें अकेली छोड़ गया था।

अब जब वह घर आया तो ब्राह्मणी बड़ी खुश हुई। अब चोकर की रोटी बनाकर गऊ के पास गए लेकिन बदले में उन्हें साधारण गोबर ही मिला। वे भी निराश हो गए। अपनी करनी का फल जो था।

उधर वे लड़कियां जंगल में घूमती रहीं। भोजन की तलाश में थीं। उन्हें एक तिल का दाना मिला। वह उन सातों बहनों ने बांटकर खा लिया। जंगल में उन्हें एक राक्षसी मिली। उसने सुन्दर रूप धारण किया था। वह उन्हें कहने लगी—"मैं तुम्हारी मासी हूं ! बेटा, चलो मेरे घर !"

वे विवश हो उस राक्षसी के साथ हो लीं। पहले दिन ही उसने एक लड़की को खा लिया। उसका सिर काटकर एक अंधेरे कमरे में रख लिया। प्रातः जब वे उठीं तो अपने आपको छः ही पाया। वे आपस में रोईं लेकिन जो विधाता को मंजूर था। राक्षसी ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा—"मैंने उसे ब्याह दिया है। अकसर तुम जवान हो गई हो। तुम सबने ससुराल जाना है।" यह सुनकर वे शांत हुईं। उन्होंने सच जो समझ लिया।

धीरे-धीरे यही क्रम चलता रहा। अब एक दिन केवल एक ही लड़की रह गई थी। वह दाने भून रही थी। एक चूहे ने दाने उठा लिये। उस लड़की ने 'डुंडसू' (एक प्रकार से लकड़ी से कपड़ा बांधकर दाने भूनने के लिए साधन) से उसे मारा। चूहे ने विलाप शुरू किया—"डुंडसू री फट न बंगा दी ता अक गल बी दंसदा···। —यदि तू मुझे इस डुंडसू से न मारती तो मैं एक बात बताता !"

"दस मेरा भाई ! दस मेरा भाई !—मेरे भैया ! बताओ ! बताओ !" लड़की कहने लगी।

चूहे ने कहा—"उस अंधेरी ओवरी (कमरा) को खोलकर देखो !"

जब उस लड़की ने कमरा खोला तो वहां क्या देखती है कि उसकी छः बहनों के सिर थे। उस लड़की को देखते ही वे सिर पहले तो हंस दिए और एक साथ रोने लगे। उस लड़की ने यह सब जानना चाहा। इस पर वे छः सिर एकदम बोल उठे—"बहन, जानती हो तेरा भी यही अंजाम होगा···। यदि भला चाहती हो तो तुरन्त यहां से भाग जाओ।" यह सब कहकर वे सिर चुप हो गए। वह लड़की एकदम भाग खड़ी हुई। राक्षसी को जब यह पता लगा तो उसने उसका पीछा किया। वह भागते-भागते एक चन्दन वृक्ष के पास पहुंची। राक्षसी पहुंच ही रही थी कि उस लड़की ने चन्दन वृक्ष से प्रार्थना की—"तू मेरा धर्म का भाई है। मैं संकट में हूं। मुझे अपने में छिपाओ।"

यह सुन वह चन्दन वृक्ष दो पाट हो गया। लड़की उसमें घुस गई। फिर वे पाट आपस में मिल गए परन्तु उसकी छोटी उंगली बाहर रह गई जिसे राक्षसी ने काटकर खा लिया और कहने लगी—"हाय ! कितनी मीठी है ! यदि तुझे मैं पहले खा लेती !···"

समय बड़ा बलवान होता है। वह जंगल किसी राजा का था। राजा के मजदूर दूसरे दिन उसे काटने लगे। अन्दर से आवाज आई—"उप्परे बड्ढा, बुन्हे बड्ढा, मंझभरे कोरी कड्ढा—ऊपर से काटो, नीचे से काटो, बीच में छेद डालो !" वे मजदूर डर से काम छोड़ राजा के दरबार में हाजिर हुए और सारी घटना कह सुनाई। राजा ने अन्य दरबारी भेजे। वे भी यही शिकायत ले वापस हुए। अब राजा स्वयं वहां पहुंचा और यथावत् वृक्ष कटवाया। बीच से सुन्दर कन्या निकली। राजा उस पर मोहित हो गया अतः उसने उसे अपनी पटरानी बना लिया।

उसका समय आनन्द से महल और झरोखे के सुखमय दिन-रातों में कटता रहा। एक दिन उसके पेट से सुन्दर टिक्के का जन्म हुआ। अब मायके पता भेजना था अतः सर्वप्रथम काग को बुलाया। उससे पूछा तू क्या कहेगा। कौआ कहने लगा—"मैं तो आ ! आ ! कहूंगा।" अतः उसे मंजूर नहीं किया। अब एक-एक कर सब पक्षी बुलाए गए परन्तु कसौटी पर खरे नहीं उतरे। अंततः 'कुक्कू' को इस कार्य के लिए चुना गया। वह मायके जाकर एक वृक्ष पर बैठ गया और रटने लगा—

"सत धियां थियां···कुक्कू !
छः रागसणी खाधी···कुक्कू !
इक राजे ब्याही···कुक्कू !
तिनी जातक जमिया···कुक्कू !
चोळु-टोपु मंगिया जी कुक्कू !

जब ये शब्द ब्राह्मण-ब्राह्मणी ने सुने तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा।

उसने ब्राह्मण को ज्यूं-त्यूं कर साधारण उपहार सहित अपनी लड़की के पास भेजा। ब्राह्मण वहां जाकर राजसी-ठाट को देखकर अचंभित हो गया। वह वहां अपने आपको हल्का अनुभव करने लगा परन्तु उसकी हीन भावना पर पटरानी ने काबू पा लिया तथा उसे हर प्रकार से खुश रखा। उसका हर प्रकार आवभगत किया गया। अब कुछ समय रहने के बाद वह घर वापस आना चाहता था। पटरानी ने चुपके से एक पेटी में 'अलघेर' (एक प्रकार की बड़े आकार की मधुमक्खी जो मनुष्य को डंक मारती हैं—वे वृक्षों पर अपने छत्ते बनाती हैं) भर दिए। उस पेटी को मीठे पकवान बताकर ब्राह्मण को ब्राह्मणी के लिए उपहार रूप में भेजे और साथ ही यह भी कहा कि ब्राह्मणी उन्हें बंद कमरे में खोले।

घर जाकर ब्राह्मण ने वह उपहार पेटिका ब्राह्मणी को सौंपी और उसे अंधेरे कमरे में खोलने के लिए कहा। ब्राह्मणी ने उसे बन्द ओवरी में खोला। उसके मुंह में लार टपक रही थी। खोलते ही सारी मक्खियां उसके शरीर से चिपट गईं। वह चीखने और चिल्लाने लगी—"खाधी बाहमण खाधी!"

"मैं खाई आया तू खा!"

वह ब्राह्मण को पुकारकर कहती कि उसे मक्खियों ने खा लिया है परन्तु ब्राह्मण समझता कि वह उसे भी साथ देने के लिए बुला रही है अतः प्रत्युत्तर में कहता कि वह तो वहां बहुत कुछ खा आया है।

इस प्रकार दुष्ट ब्राह्मणी का काम-तमाम हुआ। जैसे को तैसा!

इस प्रकार की कहानियों की भरमार है। लोक कथाओं में बच्चों की कहानियां, परियों की कहानियां, राजा-रानी की कथाएं, हास्य-विनोद कथाएं तथा देवी-देवता की कथाएं प्रसिद्ध हैं जिन पर अलग-सा ग्रंथ लिखा जा सकता है। हास्य-विनोद कथाओं में 'पिदे-पिदी' की कथा, 'चोर-चमार' की कथा प्रसिद्ध हैं। चतुराई की कथाओं में 'काठे री हंडी भत्त रिन्हणा' प्रसिद्ध है जिन्हें स्थानाभाव के कारण यहां नहीं दिया गया है। पशु-पक्षियों की कथाओं में कुछ कथाएं यहां दी हैं अन्य पंचतंत्र की भांति असंख्य कथाएं पडी हैं।

लोकगीत

समस्त जनजातीय क्षेत्र समय-समय पर लोकगीतों की ध्वनि से गुंजित रहता है। समूची घाटी में लोकगीतों और बांसुरी की सुरीली ध्वनि कानों में दूर-दूर से सुनाई देती है। घास काटती हुई औरतें समूहों में 'घुरैही' लोकगीतों को गा-गा कर सारी रावी घाटी को गुंजित करती हैं। भेड़ चराते 'पाहल' (चरवाहे) ऊंची-ऊंची पहाड़ियों पर बांसुरी बजाते हुए सबके मन को मोह लेते हैं। विभिन्न संस्कारों के समय अंचली लोकगीतों के गायक सारी रात रामायण और शिव सम्बन्धी गायन गाते रहते हैं तथा अन्य दर्शक और श्रोता बारी-बारी से नाचते जाते हैं।

इस प्रकार के लोकगीतों के उदाहरण और परिचय संक्षिप्त से नीचे दिये जाते हैं।

अंचली लोकगीत—अंचली लोकगीत विवाह-उत्सव और 'नवाळा'-उत्सव पर गाये जाने वाला विशेष लोकगीत है। इसके विषय रामायण कथा, जिसे पहाड़ी भाषा में 'रामीण' और शिव स्तुति है जो 'शिवीण' के नाम से प्रसिद्ध है। ये लोकगीत विशेष विधि से उपयुक्त स्थान पर गाये जाते हैं। विवाह-उत्सव पर ये लोकगीत 'ओवरी' (घर का बड़ा कमरा) में उपस्थित दर्शकों और श्रोताओं के मध्य गाया जाता है। इसके गायक संख्या में चार पुरुष होते हैं। इन गायकों को 'बन्दा' कहा जाता है। गान आरम्भ करने से पहले इन गायकों की तिलक लगा-कर पूजा की जाती है। इनके पास ढोलक, नक्कारा (नगारा) और कुंभ पर रखी कांसे की थाली रहती है जिसे वे 'छंछाळ' कहते हैं। कुंभ में थोड़ा पानी डाला जाता है ताकि थाली उपयुक्त स्वर दे सके। थाली को लकड़ी से बजाया जाता है जिसे बजाते समय थोड़ा-सा टेढ़ा कर लिया जाता है। गान बारी-बारी से आरम्भ होता है। पहले दो व्यक्ति ढोलक और नक्कारा लिये वाद्य-यन्त्र की ध्वनि पर पहली कड़ी बोलते तथा दूसरी जोड़ी (उनमें एक 'छंछाळ' लिये होता है) दोहराती जाती है। इस प्रकार गान क्रिया सारी रात चलती रहती है। गीत का आरम्भ ईश्वर की स्तुति से होता है जिसने सारी सृष्टि और जगत की उत्पत्ति की है। सृष्टि का आरम्भ कैसा हुआ इस पर सुन्दर ढंग से वर्णन किया जाता है। गाने की गति पहले

धीमी चलती है बाद में तीव्र हो जाती है तथा स्वर भी ऊंचा हो जाता है। नर्तक बारी-बारी से अकेले या दो-दो मिलकर नाचते जाते हैं। नर्तकों को इस समय विशेष वेशभूषा की आवश्यकता नहीं रहती। नाचने वाले किसी भी वेश-भूषा में नाच सकते हैं। दर्शकगण मन्त्रमुग्ध होकर देखता और सुनता रहता है। 'नवाला' उत्सव (जिसका वर्णन पुस्तक में अन्यत्र हो चुका है) के समय फूलों की सुन्दर माला टांगी जाती है। नर्तक उस माला का पूजन धूप देकर करता है। फिर वंदना करने के बाद नृत्य आरम्भ करता है।

'शिवीण' या शिव-स्तुति का आरम्भ इस प्रकार होता है—

"दक्खण देसेरा सिद्ध जोगी आया
औंदे जोगी अलख जगाया
बहुंदे जोगी चौंका पाया
बहुंदे जोगी बैसक पाया
बहुंदे जोगी धूणी धुखाया
बहुंदे जोगी मंदळा लिखाया
लै सांया अपणे उधारा···"

अर्थ—दक्षिण देश से कोई सिद्ध योगी आया है उसने आते ही बैठने से पहले बैठने के स्थान को गोबर से लीपा फिर उस पर बैठने के लिए सुन्दर 'बैसक' रखा और शिवजी का पूजन आरम्भ किया ताकि शिवजी की कृपा से जो कुछ प्राप्त हुआ है उससे उऋण हो सके।

पूजन सामग्री का वर्णन इस प्रकार है—

"आटे कूटेरा मंदळा लिखाया
तिल्ले चौळे तेरा कोठा भराया
लै सैंया अपणे उधारा···
बड़े बबरुए तेरे कोठे भराय,
लै सैंया अपणे उधारा" इत्यादि

अर्थ—शिव पूजन के लिए 'नवाळा' उत्सव पर मण्डप ('मंदला') बनाने की प्रथा है जिस पर आटा, तिल, चावल और विशेष पकवान 'बड़े' और 'बबरू' रखने की प्रथा है। इस सामग्री को शिव के पूजन के लिए रखा गया है ताकि ऋण से उऋण हो सके। इसी प्रकार की लम्बी स्तुति गाई जाती है।

"दक्खण देसेरी मालण आई
औंदी मालण बागा जो जाय
औंदी मालण फुलणु चगाए
चुग्गी-चुग्गी गोद भराई

"कळी-कळी हार गुंधाए
अठ लड़ी सोला गट लाए
सेयो हार राणी गौरा जो चढाए
"गौरे राणी हार सैंया जो चढाया
सैंया पुछंदी हार कुणी वणाया
हारा हेरी सैंया मूर्छित होया
गौरा बौलंदी हार मालणी वणाया

अर्थ—दक्षिण देश से मालिन आकर बाग से फूल चुनकर हार गूंथती है। हार गूंथकर 'गौरा राणी' को देती है। गौरा रानी उस हार को सैंया (शिवजी) को अर्पित करती है। हार देखकर शिवजी मूर्छित हो जाते हैं। बाद में मालिन के विषय में पूछते हैं तथा उससे बाग में भेंट करते तथा उसका परिचय प्राप्त करते हैं। वह शिवजी का श्रद्धा से पूजन करती है। लोकगीत में मालिन और शिवजी के सम्वाद का सांगो-पांग विस्तृत रूप से सुन्दर वर्णन किया गया। लोकगीत में विभिन्न घटनाओं और उपाख्यानों का क्रमबद्ध वर्णन हुआ है। मालिन के साथ भंवरे का उपाख्यान सुन्दर ढंग से जोड़ा गया है—

"सैंया पुंछदा मेरा बाग कुनी उजाड़ु ?
मालण बोलंदी तेरा बाग भौंरे उजाड़ु
सैंया भेजे हलकारे, भौंरा पकड़ी मंगऊ
सैंया भौंरे जो पुछिआ, भौंरा बाग कजो कउजाड़ु
भौंरा बंलदा फुल्ले बास न लइरी
सैयो भौंरा राजे कैद कराया
हथ जोड़ी मालण अर्जा लांदी
सैयो राजे भौंर छुडाया।"

"चल मालणी असां खेंलदे उढाला
जाई बौंधे बड़े विरछेरी छांवा
भौंरे रुणी झुणी लाई

भौंर राजा उड़ी जांदा
मालण रही गई केल्ह-मकेल्ही ।"

"रस कस खाई लेआ काळे भौंरे
मरी जांया काळिआ भौंरा
तैई मेरा खौंद भरमाया
बसेरे घरा जो उदासे ।"

"जैसे हुंदा नदिआ खौळा पाणी (भंवरे का अनुभव)
जैसी नार बगानी
जैसा हुंदा डिभरू पाणी
जैसी नार बगानी
जैसे हुंदा डुबदा सूरज
जैसी नार बगानी ।"

"चलणी चलो मेरे भाई
जैसे पौणा पाणी चलंदा
चलणी चल्लो मेरे भाई
जैसे धर्म कर्म चलंदे
चलणी चल्लो मेरे भाई
जैसे धर्म ते कर्म चलंदे
चलणी चल्लो मेरे भाई
जैसे चन्द्र सूरज चलंदे ।"

गौरा का शंकर को हार भेंट होने पर शिवजी बाग में मालिन से मिलते हैं और फिर लोकगीत की पंक्तियों में भंवरे द्वारा बाग को उजाड़ने का व्यंग्य सुन्दर रूप से वर्णन हुआ है । जब शिवजी बाग को उजाड़ने वाले का नाम पूछते हैं तो मालिन तुरन्त भंवरे की शिकायत करती है । शिवजी भंवरे को कैद कर लेते हैं परन्तु मालिन भंवरे की रिहाई की मांग करती है । शिवजी उसे रिहा कर देते हैं। भंवरा फिर मालिन पर डोरे डालता है तथा मालिन से 'उढाळा' खेलने (चोरी से भाग जाना To elope) को कहता है । मालिन उसके संग रहती है परन्तु जब उसका यौवन ढल जाता है तो भ्रमर उसे छोड़ भागता है । अब वह लोकगीत के माध्यम से अलाप करती है तथा साथ ही कहती है कि भंवरे के संग रहने से उसके 'खौंद' (खाविंद) को भी संदेह हो गया है, यह सारा कृत्य भ्रमर का है ।

भंवरे द्वारा कुछ लोकगीतों में ऐसी सूक्तियां कहलाई हैं जो उसके अनुभव पर आधारित शिक्षाप्रद बन गई हैं। पराई नारी गंदले पानी के समान है अर्थात उसके दिल को पढ़ना असम्भव है। पराई नारी 'डिभरू' के पानी (पानी का छोटा जोहड़) के समान है। अर्थात जैसे जोहड़ का पानी तृप्ति नहीं देता वैसे पराई नारी से तृप्ति असम्भव है अर्थात वासना बढ़ती ही जाएगी शांत न होगी। इसी प्रकार पराई नार तो डूबता सूर्य है।

इसी प्रसंग के साथ कुछ सीधे उपदेश भी लोकगीत में उद्धृत हुए हैं—चलणी (आचरण) 'पौण' और 'पाणी' (वायु और पानी) की नाई हो अर्थात जीवन गतिशील हो। जीवन का आचरण धर्म और कर्म की तरह हो। सूर्य और चन्द्रमा को भी आचरण के लिए आदर्श चुना गया है। इसी प्रकार प्रकृति से असंख्य उदाहरण लोकगीत में वर्णित हुए हैं।

इस प्रकार की लम्बी भूमिका बांधी जाने के बाद शिवजी का विवाह वर्णन इस प्रकार आरम्भ होता है—

''सासन खाण ब्राह्मण भाटी खाणी
कोल्हे खाणे रुजगार
तुसां जाणा ब्राह्मण सैंयारी रैबारी
''छी महीने औंदे, छी महीने जांदे
हिमपत देसे गज-पत राजा
उस दे घरे कन्या कुंआरी
उस घरे जणा सैंया री रैबारी

वाण दिलेरी वट बाह्मणे
पड़ गिआ छिकळी मंजोळी
बाह्मणी पुंछदी 'हे बाह्मणा
''किजो पेआ छिकळी मंजोळी'
बाह्मण बोलंदा—'सुण बाह्मणी
दूरा जो लाई निआग मेरी
छिआ महीने औंदे छिआ जांदे
बरसा रोजेरा पैंडा
''जित्थे जाणा सैंयेरी रैबारी।''

अर्थ—शिवजी की मंगनी (लोक गीत में—रैंबारी) की बात चलानी है अतः ब्राह्मण को इस कार्य के लिए नियुक्त किया जाता है। यह कार्य कितना भी कठिन

क्यों न हो ब्राह्मण का कर्तव्य है। वह शासन और भेंट भी तो खाता है। आते-जाते छः-छः मास लगने से साल लग जाएगा क्योंकि हिमपत (हिमालय में) देश में 'गजपत' राजा है जिसकी कन्या कुमारी है अतः उससे शिव जी की मंगनी तय करनी है।

पुरोहित इस कठिन यात्रा से घबड़ा जाता है। ब्राह्मणी इसका कारण पूछती है वह कारण बता देता है।

''बाह्मणी बोलंदी, सुणा बाह्मणा
'खोल मरदाना पहन ज़नाना
'मैं जाणा सैंयेरी रैबारी

ब्राह्मण बोलंदा तैं जाणा बाह्मणिए सैयेरी
रैबारी—तां तू हटी घरे न ईणा
''मैं जाणा सैंयाकी रैबारी''

बाह्मण बोले 'नीला रथ थोड़ा चढ़ने जो देला
सैयां तां मैं जांदा सैंयेरी रैबारी'
लुट-पुट पगड़ी बन्ही ब्राह्मणो घोड़ेरी सुआरी होया

''अक लोकतंत्र ढुंढे
ता वर न मिले कुआरा
चौथे लोक तंत्रे हिमपत देसे
गजपत राजा उस दे धरे जांया रैबारी

अंगण तेरा सुनंगण राजा
घोड़े रे सुम बाजे, वाजीरे घूंघरू रुणके
अन्दर बेढ़े सणाक सुणी
'बाहर जांया गौरजा धिए'
'झाणे जुराणा आदमी बापुआ
असां गुड्डे-गुड्डी दा विआह लाया
असे अपणी खेल पाई'
ता खुली तणी अतराण पाय
गजपत राजा बाहरा जो आया
'कस मुलखेरा आया मणुआ
'कस मुलखा जो जाणा'
बाह्मण बोले—'सैंयारी रैबारी आया'

ब्राह्मण को प्रोत्साहित करने के लिए ब्राह्मणी उसे ताना देती है कि यदि तुम नहीं जा सकते तो मेरे कपड़े तुम पहन लो और अपने मुझे दे दो, मैं स्वयं शिव जी 'की रैबार' (मंगनी) जाऊंगी। तिस पर ब्राह्मण उत्तर देता है कि ऐसा करने पर तू घर नहीं आएगी अतः विवश हो शिवजी से नीले-घोड़े के रथ की मांग करता है तथा कई दिनों के बाद राजा 'गजपत' के महल के बाहर अपना रथ खड़ा करता है। घोड़े की पांव की आहट सुनकर राजा 'गौरजा' को बाहर जाने के लिए कहता है परन्तु 'गौरजा' यूँ कहकर टाल-मटोल करती है कि वह तो खेल-खेल में 'गुड्डा गुड़िया' के विवाह रचाने में व्यस्त है। राजा स्वयं खुले 'अतरायण' (एक प्रकार का चोगा) बाहर जाता है और उस ब्राह्मण से पूछताछ करता है कि वह कहां से आया है और कहां जाएगा। इस पर ब्राह्मण आने का प्रयोजन बताता है।

इस पर ब्राह्मण और 'गजपत' राजा का आपस में संवाद लोकगीत में गाया जाता है। फिर 'गजपत' राजा अपने सगे-सम्बन्धियों से 'गौरा' के रिश्ते के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करता है। एक-एक सम्बन्धी निजी विचारधारा से अवगत करता है। यह सारा विवाद विस्तृत रूप में लोकगीत में गाया जाता है। जिसका विस्तृत वर्णन स्थानाभाव के कारण यहां देना असंभव है। यहां केवल चुने हुए बन्ध ही उद्धृत किए गए हैं।

अब ब्राह्मण वापस शिवजी के पास आता है तथा राजा की स्वीकृति से अवगत कराता है तब विवाह की तैयारी आरम्भ होती है—

'छी महीने औंदे छिआ जादें
वर्षा रोजेरा पैंडां
वियाह मेरा तैं दूरा जो वणाया
तां सैंये छः महीनेरी रात पुआई
वर्षा रोजेरी घड़ी पुआई
तां ब्राह्मणा जो बोलिआ
सुण ब्राह्मणा मेरी निंदरा पुआणी
धरती अगासा जो निंदरा देणी
पौणा पाणी जो निंदरा देणी
चन्द्र सूरजा जो निंदरा देणी
तारा भिआणु जो निंदरा देणी

अर्थ—शिवजी अपने विवाह का न्योता ('निंदरा) देने के लिए आदेश देते हैं कि धरती आकाश, पवन-पानी, चन्द्र-सूर्य, इत्यादि सबको न्योता दिया जाए, इससे पूर्व विवाह को विलम्बित करने के लिए छः महीने का दिन छः महीने

की रात बनाई जाती है ताकि इतने दूर पर पहुंच सकें।

आगे प्रसंग इस प्रकार है—

सब निंदरा भरी पुज्जी
लाड़ पासेरने लाया
सीस कंधु करना लाया
तेले का उठिया सैंया
तां जानीं बो लख जन
तैयार हुए
पहाड़े सीण लग्गा, नेहळे वर्खा लग्गी
रैं कलैं डुबी गई
घरा दी परछैइयां डुबी गई
ता हुकम होया गौआ-भैंसा, भेड़-बकरी
तुसां चिकणी गोहरी वणाई पाणी
तां हुकम होया चिड़ूरे राजे
तां हिऊंआ डाळी झंबी देणी
तां अगले जनडु मुंडे डुब्बे
पिचले ढाका डुब्बे
पिचले चिक्कड़-चैल्हे
पिच्चे धूड़ धुडेंह
पिचले लंघी पारा चल्ली गैं, सुक्के बागे डेरा लाया।
सुक्का बाग हरयाला होया—

अर्थ—उपरोक्त पंक्तियों में न्योते के पश्चात वर के अलंकरण का वर्णन हुआ है। 'वर' को तैयार किया गया है। तैयारी के बाद जन-समूह ('जन या जनडु') विवाह के लिए चल पड़ता है परन्तु उसी समय हिम-पात होने आरम्भ होता है, मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। यहां तक कि पेड़ पौधे ('रैं-कलई'—दयार इत्यादि के वृक्ष) भी डूब जाते हैं। इस कठिनाई को पार करने हेतु शिवजी भेड़-बकरी और भैंस इत्यादि की सहायता लेते हैं। पक्षियों के राजा को आदेश देता है कि पेड़-पौधे, जो रास्ते में पड़ते हैं उनको झाड़ दिया जाए। फिर जन-समूह चलना आरंभ होता। आगे चलने वाले सिर तक डूबते हैं, पीछे चलने वाले कमर तक डूबते हैं, उससे पिछला समूह कीचड़ में चलता, उनके पीछे समूह के लिए तो रास्ता धूलि-धूसरित बन जाता है। शिवजी की बारात सूखे बाग में ठहरती है जो शिवजी की करामात से हरा-भरा हो जाता है।

अब शिवजी बाजे-गाजे सहित 'लगन संस्कार' के लिए आते हैं इस समय 'गौरा' अपनी माता को पूछती हैं :

"गौरा पुंछदी माता रणसिंग बजंदा कै आया"
माता बोली—"धिए तेरा बैहु लगना जो आया"
तां गौरी बोली—"तैं कोढ़ी कलंकी रे लड़े लाई"
रोई रोई रोजना लाई
"मौळिआ तुज्जो भाणजीरा दोष लगला
तैं भंगी सराबीरे लड़े लाई"
तां मौळा बोले—"रुंए मत भाणजिए
तुजो बहुत दाज सुआज भरी देला"
तां फिरी गौरा बोली—भेड़-बकरी दाज नहीं लैणी
मैं हुन्दी गदेटी तां भेड़-बकरी चारी लैंदी"
तां मंज अंगणो बेद लाई···गौरा बिआही
तां सामी बोले चार लाइयां इठी फिरनी
चार सिकरे जाइ फिरनी
ता चौथी लाइयां शिव हथ त्रोणी न्हठी गया
अग्गे धूड़ु न्हठिआ-पिच्चे गौरा राणी
गौरा बोली—"अबे कुते न्हठिया धूड़आ-बापुए तेरे लड़े लाई"
तां धूड़ु बोले—"तुंसा राजेरी धिआं-असां मढ़ी दे जोगी

गौरा कच्ची कुंआरी छुटी जांदी-अध विआही गौरा छुटंदी नहीं
तां गौरा ते सामी सि़करे बसे-दुनिया दागर धन्धे लाई

अर्थ—शिवजी की बारात 'लगन संस्कार' के लिए आती है। 'गौरा' अपनी माता को पूछती है कि 'रणसिंघा' क्यों बज रहा है। उसकी माता उत्तर देती है कि शिवजी 'लगन' लेने आए हैं। 'गौरा' विरोध करती है कि उसका सम्बन्ध कुष्ठि के साथ क्यों तय किया है। इस पर उसका मामा भी उसको ढांढस बंधाता है तथा पर्याप्त दहेज देने का प्रलोभन देता है। गौरा भेड़-बकरी दहेज में लेने से इंकार करती है। वह 'गद्दण' की तरह कहां चराती फिरेगी।

फिर वेदि लगाने का सुन्दर वर्णन हुआ है। स्वामी वहां केवल चार फेरियां लेकर ही भाग जाते हैं। चार फेरियां 'सिकर पर्वत' पर लेने की बात करते हैं। गौरा भी अर्ध-विवाहित उसका पीछा करती है। तिस पर 'गौरा' और 'शिव' का आपस

में वाद-विवाद होता है। बाद में शिवशंकर और गौरा शंकर-पर्वत 'सिकर' पर रहने लगते हैं। दुनिया को अपने धन्धे में व्यस्त करते हैं।

इसके पश्चात् लोकगीत में ऐसी जड़ी-बूटियों का वर्णन हुआ है जिन्हें 'गौरा' शिवजी को घोटकर सदा इसलिए पिलाती रहती है ताकि शिवजी उसके वश में रहें। इस प्रकार का विस्तृत वर्णन होने पर शिव-कथा सम्पन्न होती है।

रामायण

अंचली लोक-गीत के माध्यम से अन्य प्रमुख लोक-कथा रामायण है जो शिव-कथा की तरह गाई जाती है। यह गीत भी आख्यान, उपाख्यान और उप-घटनाओं से ओत-प्रोत है। यह कथा भी काफी लम्बी है जो रात भर संक्षिप्त रूप से गाने पर समाप्त की जाती है। लोक-गायकों के अनुसार राम-कथा और शिव-कथा इतने लम्बे विषय हैं कि यदि इन्हें पूर्ण रूप से गाकर समाप्त करना चाहें तो कई दिन लग जाते हैं। इसीलिए इन्हें संक्षिप्त से गाने पर एक रात में समाप्त करते हैं। लेखक राम-कथा के कुछ अंश को ही इस पुस्तक में प्रस्तुत कर सकता है। राम-कथा का एक अंश निम्नलिखित है।

राम के वनवास पर सीता को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। रावण ने छल-कपट से सीता का हरण कर लिया। रावण छद्म-वेश में सीता से भिक्षा मांगता है और उसे हर लेता है।

बाड़ीरा चन्नण कटाया, डकडौरूं बणाया
डक बजंदा-डकडौरूं बजंदा राजे रामेरी प्रौळी

रावण : दें आं जजमानणी भिछिआ, तेरे कुलेश परोहत आया
सीता : न बो घरे भोली न छोहरी, भिछिआ कस पाणी हो
रावण : जिन्हां करणे अप्पु बो दान, भिछिआ अप्पु पाणी हो
सीता : ते असां लोका हुंदे अंदरोळा, भिछिआ किहां पाणी हो
रावण : जिन्हां करने अप्पुदान, भिछिआ अप्पु पाणी हो।
सीता : रामारी घणी-घणी कारा, कारा टपिआ न जांदी हो
'जिन्हा भनणी खसमारी कारा, तेहा नारी न भलीबार हो
'रामारी घणी-घणी कारा, कारा टप्पिआ न जांदी हो
अप्पु हुन्दे राम घरे, घोड़ेरा दिंदे दान हो
थाळ भरे मोती, उप्पर रखु रूमाल हो
ले बुझरेटुआ भिखिआ, तेरे दलिद्रा गंआली हो

अंगूठेरी धीड़िया सीता, ढप्प झोलिआ पाई हो
राम जे घरे आय सिआ तोपी अंदर बाहर हो
सिआ-सिआ हक्का लाइ, सिआ नजर न आइ हो
लम्मी लम्मी हक्का लग्गा लाणा, सिया से नजरी न आई हो ।

अर्थ —रावण ने अपनी 'बाड़ी' (घर के आस-पास के छोटे-छोटे खेत) का चन्दन का वृक्ष कटवा कर 'डौरू (डुग-डुगी) बनाई । उसने भिखारी या साधु का वेश धारण किया और 'सिया'(सीता) को छलने के लिए भीख मांगने लगा। इस पर सीता कहती है कि श्रीराम घर नहीं हैं और न ही कोई 'छोहरी' (सेविका) है जो भिक्षा डाल कर दे सके। रावण आग्रह करते हैं कि वह स्वयं दान दें परन्तु सीता जी अनुनय-विनय करती हैं कि सीता जैसी नारियों में 'अन्दरोळ' (पर्दाप्रथा) है अतः वह भिक्षा नहीं दे सकती। साथ ही श्रीराम जी को रेखा को वह लांघ नहीं सकती। जो अपने पति की सीमा रेखा को लांघती हैं उनका कभी भला नहीं होता। रावण के बार-बार आग्रह करने पर वह मोती का थाल भरती है। उस पर रूमाल डालती है और उस 'बुझरू' (एक प्रकार की ब्राह्मण जाति जो दान मांग कर गुजारा करती है) को यह कहकर देना चाहती है जिससे उसकी गरीबी दूर होगी—वह सीमा रेखा के इस ओर खड़ा होकर भिक्षा देने लगती है इतने में रावण उसे अंगूठे से पकड़कर खींच लेता है और अपनी 'झोली' में डाल लेता है। जब राम वापिस आते हैं तो सीता को न पाकर इधर-उधर खोजते हैं और 'सीता !' 'सीता!' कहकर आवाजें लगाते हैं परन्तु सीता वहां नहीं मिलती ।

इसी प्रकार लोक-गीतों में सम्पूर्ण रामायण का वर्णन किया जाता है।

भूंकू-सुन्नी

अंचली लोक-गीत में भूंकू-सुन्नी की प्रेम-कथा भी गाई जाती है। यह प्रेम-कथा इस प्रकार है :

सुन्नी : "क्या तेरा नां गदिया कहरा जो बलूरा हो।"
भूंकू : "भूंकू मेरा नां मणिए लौहला जो चलूरा हो।"
भूंकू : "क्या तेरी जात मणिए क्या तेरा नां हो।"
सुन्नी : "सुन्नी मेरा नां बो मणुआ, ठाकुर री ठकरियाणी हो।"
सुन्नी : "अंदरा जो आयां मणुआ दुःख-सुख लायां हो।"
"तती-तती थपली मणुआ चूंरिआरा दूध हो।"
"दिने-दिने भेड़ु बणाली रात मणु बो बणाली हो।"

× × ×

भूंकू : "कुण बो महीना बो सुनिए, कुण रित आई हो।"

सुन्नी : "कातीरा महीना मणुआ, सैरकणी रित हो।"
भूंकू : "कढ़ी मेरी भेड़-बक री कंढ़ी कंढी कुत्ती हो।"
सुन्नी : "धारा तेरी भेड़ बकरी, नगरा कंढी कुत्ती हो।"
काळ्ही मत कर भुंकुआ, जोता देली लंघाई हो। इत्यादि

भरमौर के गद्दी भेड़े चराते-चराते बीहड़ वनों और पर्वतों को लांघ कर लाहोल की सुरम्य भूमि में चरागाहों की खोज में पहुंचते हैं। ऐसे समय उसे गांव में सुन्नी नामक युवती मिल जाती है। उन दोनों का परिचय होता है। भूंकू उसके प्रेम-पाश में फंस जाता है। वह अपनी भेड़-बकरियों को भूल जाता है। काफी समय बीतने पर उसे अपनी भेड़-बकरियों की याद आती है। वह सुन्नी से पूछता है कि वर्ष की कौन-सी ऋतु आ गई है वह उसे बताती है कि शरद ऋतु आ गई है अब कार्तिक मास आ गया है। वह अपनी प्यारी कंढी नामक कुत्ती का पता पूछता है और भेड़-बकरियों का पता भी पूछता है तो उत्तर मिलता है कि उसकी कुत्ती तो उसके घर पहुंच चुकी है और उसकी भेड़ें वापस 'धारा' (ऊंची चरागाह) पर जा पहुंची हैं। अब वह सोचता है कि अकेली कैसे जाएगा। सुन्नी उसे ढाढस देती है कि वह 'जोत' (पर्वत) लांघने के लिए साथी देगी। लोक-गीत की अन्य पंक्तियां यहां नहीं दी हैं उन पंक्तियों में बताया जाता है कि भूंकू वापस घर जाता है। लेकिन गर्मी का मौसम आने पर अपनी भेड़-बकरियां लेकर फिर लाहोल को प्रस्थान करता है। सुन्नी उसकी प्रतीक्षा में आंखें मार्ग में बिछाए है। परन्तु दुष्टता की भी कोई सीमा है! कुछ मनचले युवकों से वह अपने भूंकू का पता पूछ बैठती है वे झूठ-झूठ में कहते हैं कि भूंकू तो मर गया है। उस बेचारी के होश उड़ जाते हैं परन्तु प्राण छोड़ने से पहले वह पूछती है कि वह किस वियोग से मरा है वे बताते हैं कि वह तो तेरे वियोग में मर गया। सुन्नी के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। अब भूंकू बड़ी उत्कट अभिलाषा लिये लाहोल पहुंचता है और अपनी सुन्नी से मिलना चाहता है लेकिन उसी तरह के युवक उसे बताते हैं कि सुन्नी तो उसके वियोग में मर चुकी है। वह पागल की तरह इधर-उधर सुन्नी के वियोग में भटकता फिरता है इस प्रकार की हृदय-विदारक कथा लोक-गीतों में गूंजती रहती है।

घुरैंही लोक-गीत—घुरैंही लोक-गीतों का वर्णन इस पुस्तक में कहीं अन्यत्र भी हो चुका है। 'घुरैंही' महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले गीत हैं जो विवाह या अन्य उत्सवों पर महिलाओं द्वारा सामूहिक-रूप में गाये जाते हैं। इन गीतों पर सामूहिक नृत्य भी किया जाता है जिसे 'डंगी नृत्य' या 'घुंघर नृत्य' भी कहा जाता है। वृत्त में औरतें गाती भी जाती हैं और नृत्य भी करती जाती हैं। नृत्य सभी मिल कर करती हैं। दो-तीन औरतें कुछ गीत की पंक्तियां गुनगुनाती हैं अन्य उन पंक्तियों को दोहराती हैं। नाचते समय विभिन्न भाव-भंगिमाएं की जाती हैं। नृत्य

की गिनती में आता है। यह लोक-गीत इस प्रकार है :

द्रुभड़ीरे आए साडी साद, द्रुभड़ी मेरी भेजी दिएं हो।
द्रुभा तेरी पैरा केरी नंगी, द्रुभा तेरी किहा भेजु हो।
पैरा जोगे मोछडु लैइ देला, द्रुभा मेरी भेजी दिएं हो।
द्रुभड़ी रे आए ··· ··· ···

ठंडिआ खुहिआ ठंडा पाणी, किहा करी भरली बोलो
इल्ला मेरा कैंचन पाणी छल्ली-बल्ली भरली बोलो
कंता केरी नजर गंढेरी, हेरी-हेरी डरली बोलो
द्रुभड़ी-री आई साड़ी साद·········

द्रुभा तेरी ढाका केरी नगी, नंगी ढाणा किहा भेजु हो
ढाका जोगे घघरू लेई देला, द्रुभा मेरी भेजी दिआं वो
वड्डी खुदूआ ठंडा पाणी, किहा करी भरली बोलो
कंता केरी नजर गंढेरी·········
द्रुभड़ी री आई ·········

द्रुभा तेरी सिरा केरी नंगी नंगे सिरे किहा भेजुं हो
सिरा जो सालणु लैइ देला, द्रुभा मेरी भेजी दिएं हो

अर्थ—द्रुभड़ी लोक-गीत सास-जंवाई के मध्य सम्वाद है। दामाद संदेश भेजता है कि द्रुभड़ी को घर भेज दिया जाय। सास उस लड़की की दशा देखती है तो कहती है कि वह तो पांव से नंगी है उसे कैसे भेजें। इस पर दामाद फिर आग्रह करता है कि उसके पांव के लिए जूते ले दूंगा उसकी प्रिय 'द्रुभड़ी' को घर भेजें। इस पर भी बार-बार उसकी कमर और फिर सिर नंगा बताती परन्तु दामाद उस की टाल-मटोल को बार-बार अनुनय-विनय से संतुष्ट करने का उपाय सोचता है। उधर द्रुभड़ी भी अपने कंत को पसंद करती है तथा उसकी प्रशंसा करती है।

फुटकर लोक-गीत

फुटकर लोक-गीतों को लोक-भाषा में 'फाटेहड़'(फुटकर या चरगाहों में गाए जाने वाले गीत) कहा जाता है। ये लोक-गीत हर समय खेत-खलिहानों तथा चरागाहों में गाए जाते हैं। शराब पीकर महफिल में भी ये गीत गाए जाते हैं। ये गीत समाज के विभिन्न पहलुओं का चरित्र-चित्रण करते हैं। ये लोक-गीत एक ओर पवित्र प्रेम से सम्बन्धित हैं दूसरी ओर ये अश्लील चित्र भी प्रस्तुत करते हैं।

समाज के विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन इनमें मिलता है। दो-तीन इस प्रकार के गीत उद्धृत किए जाते हैं :

त्रुटि मेरे छिकणूरी काछी

त्रुटि ता मेरे छिकणूरी काछी बैंरिआ भाळे हो
मुक्की ता मेरे खल्हड़ूरी खरच-बेरिआ भाळे हो
मुक्कु ता मेरे बिबड़ूरा पाणी-बैंरिआ भाळे हो
आइ ता जाली रात अन्हेरी बैंरिआ भाळे हो
लिहसी जंघा जोत किहां लाणा-बैंरिआ ··· ···

—इत्यादि

अर्थ—इस लोक-गीत में जन-जातीय जीवन का दिग्दर्शन होता है। दो प्रेमी-साथी कहीं कठिन यात्रा पर हैं। प्रायः इन लोगों को ऊंचे-ऊंचे 'जोत'(पर्वत)लांघने पड़ते हैं। एक-दूसरे का सहारा लेना जरूरी है। एक-दूसरे से पिछड़ने का अर्थ मृत्यु है। अतः एक साक्षी दूसरे को कहता है कि उसके 'छिकणु' (बोझ) की 'काछी' (बोझ उठाने के लिए दोनों कंधों में डाला रस्सा) टूट गई है। वह बोझ कैसे उठाए उसकी प्रतीक्षा की जाए। फिर वह कहता है कि उस पर और भी मुसीबत आ पड़ी है। उसने रास्ते के लिए जो पेट के लिए 'खल्हड़ू' (खाल) में राशन डाला था समाप्त हो गया है अतः उसकी प्रतीक्षा करो। यदि ऐसा नहीं करते तो अंधेरी रात छा जाएगी और वह अकेला कहां जाएगा। वह बीमार था/थी अतः 'लिहसी जंगा' (कमजोर टांगें) कैसे रास्ता तय होगा।

सुरा केरे मघड़ू जो छेड़े

सुरा केरे मघड़ू जो छेड़े, रोआ केरी गल्ला लाणी हो
ओ सज्जण महणु घरे आय, रिझ घड़ोलुआ, रोआ केरी···
त्रुटड़ा, मंजोळु ढिल्ली बाण, दुंही जिणाहें किहां सोणा हो
किलहे-किलहे मेरीए जाने, दोई जिणो किहां सोणा हो
गल्ला लाणी गल्ला मेरी जानी, रोआ केरी···

अर्थ—यह लोक-गीत बहुत मार्मिक है प्रायः शराब पीकर गाया जाता है। चाहे जो हो परन्तु इस गाने की पंक्तियां हृदय की तह से निकली हैं। साजन मनुष्य, अभिन्न प्रेमी, घर आया है, उसका स्वागत तो मनचाहे खानपान देकर ही किया जा सकता है। चलो 'सुर' (कोदे अन्न से तैयार एक नशीला पदार्थ जो पिया जाता है) का 'मघड़ू' (घड़ा) तैयार करें। फिर पीकर दुःख-सुख की गहरी बातें होंगी। हां साजन है! सोना भी तो एक ही खाट पर है परन्तु खाट की रस्सी तो

टूटी है ! यह भी अजीब समस्या खड़ी हो गई ! अकेले कैसे सौना है ?

भेड़ा दिआ पाल्हणुआ—

'भेड़ा दिआ पाल्हणुआ, घरा जो इच्छे हो !'
'घरा जो किहा इच्छु भेड़े सो लाया हो'
'सौं सुइयां भेंडळियां, परासो सुइयां हो'
'धारा दी धूरी, मन संघड़ लग्या हो
'सुंघड़ लग्गा हो सुंघड़ौणा, मने बुरी लग्गी हो'
'घरा जो किहां इच्छु, भेड़े सो लाया हो'
'कोढ़ा बल्ला चितरा छैलणु, लैइ इच्छे फेरू पाणा हो
'हंसु मोरु छेलु लेई इच्छे कुद्दण पाणा हो'
'कुद्दण पाणा हो जिदड़ी जो, जिंद वणाणी हों।'
'भेड़ा बला तेरे सोगे लाई, घरा जो इच्छे हो'
'दोई बल्ला अक्खे हंड़ड़ु, रिज्झे, अकेले किहां खाण हो'
'दोंई बल्ला सेजे मंजळु-मु केलीकिहां सोणा हो'
'भेडा दिआ पाल्हणुआ…'

अर्थ—प्रस्तुत गीत में उस पत्नी की विरह व्यथा का वर्णन हुआ जिसका पति भेड़ का 'पाहल' (भेड़ चरवाह) है जो अपनी भेड़ें दूर पर्वत (लोकगीत में 'धार') पर ले गया है। वह उसको सम्बोधन करती है कि घर आ जाओ परन्तु प्रत्युत्तर में कहता है कि उसका आना असम्भव है क्योंकि उसकी भेड़ों ने 'सो' लाई है अर्थात बच्चे दे रही है। तिस पर वह भेड़ों का तिरस्कार करती है तथा पुनः उससे अनुरोध करती है कि वह जल्दी आ जाये। जब वर्षाऋतु के बादल छा जाते हैं तो उसका मन उदास हो जाता है। और तो 'साधारण' हंडु (हंडिया) में शाक की भाजी बनाते हैं परन्तु वह तो दो खाने वाली विशेष हंडिया में शाक पकाती है जिसे वह अकेले कैसे खाएगी, साथ ही वह रोज दो 'सेज' वाली खाट लगाती है जिस पर वह अकेली नहीं सो सकती। अतः उसे कहती है कि आते समय एक काला छेलु भी ले आए जिसे उसने देवता के निमित्त रखना है इत्यादि।

संस्कार लोक-गीत

अन्य प्रकार के संस्कार लोक-गीत हैं जो महिलाओं द्वारा 'घुरैही' के माध्यम से गाए जाते हैं। इन लोक-गीतों में 'तेल-सांद गीत,' 'लग्न-गीत,' 'वेद के गीत'। 'विदाई गीत', 'नवाले के माला गीत' इत्यादि हैं जो समय-समय पर गाये जाते हैं।

इस प्रकार के गीतों में एक गीत उदाहरणार्थ नीचे दिया जाता है :

विवाह-गीत

गंगा परी दा हो वियाह् वो लग्गे गंगा परी दा हो ।
परोहत पंडत सद्दे गंगा पारी दा हो···
मंतर तंतर बोले गंगा पारी दा हो
वियाह बी लग्गे गंगा पारी दा हो ।
वियाह-बेतर लग्गे गंगा पारी दा हो
वियाहु नचने लग्गे गंगा पारी दा हो
लाड़ी देखणे सदाणी गंगा पारी दा हो···
लाड़ी रूणा लग्गी, गंगा पारी दा हो
रोए मत कुड़िए देले सवाजा
रोए मत कुड़िए थाळी-कटोरी
रोए मत कुड़िए, जंघा सोथणु दिआला
रोए मत कुड़िए जोड़स दिआला हो, इत्यादि

अर्थ—इस विवाह गीत में वधू को गंगापरी की तुलना दी गई है। विवाह लगा है, लोग खुशियां मनाते और नाचते हैं परन्तु बेचारी नववधू रोती है। गायक उसको 'सवाज' (दहेज) का लालच देकर ढाढस देता है। रो मत ! तुझे दहेज में 'थाली-कटोरू' जैसे वर्तन दिए जाएंगे। यही नहीं बढ़िया जेवरात भी तो दहेज में दिए जाएंगे। इत्यादि।

प्राचीन मूर्ति और वास्तुकला

जैसे कि पहले लिखा जा चुका है कि चम्बा राज्य की पुरानी राजधानी भरमौर में थी जो ब्रह्मपुर के नाम से जानी जाती थी। राजा मेरु-वर्मन् के समय यहां विशिष्ट मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण हुआ जो आज भी उस समय की बोलती तस्वीरें हैं। मेरुवर्मन् के मन्दिर और मूर्तियां भरमौर से लेकर गूं क्षेत्र तक फैली हैं। अधिकांश पर उस समय के कुटिल लिपि में शिलालेख खुदे हैं जो उस समय के इतिहास पर स्पष्ट प्रकाश डालते हैं। इन मन्दिरों और मूर्तियों का संक्षिप्त उल्लेख यहां किया जा रहा है।

भरमौर कस्बे को चौरासी के नाम से भी पुकारते हैं। इसका अर्थ है कि यहां चौरासी सिद्धों का आना भी हुआ। कहा जाता है कि मेरुवर्मन के बाद के राजा साहिल वर्मन् के समय यहां पर चौरासी सिद्धों ने पदार्पण किया अतः उनकी समाधियों पर चौरासी मन्दिर बने। आज भी छोटे-छोटे कई मन्दिर यहां पर देखे जा सकते हैं परन्तु इनमें सर्वप्रसिद्ध मन्दिर मनिमहेश, नृसिह, गणेश, लक्षणा (महिषासुरमर्दिनी) के हैं जो उस समय के इतिहास को स्पष्ट करते हैं।

महिषासुर मर्दिनी (मन्दिर और मूर्ति)—महिषासुर मर्दिनी को स्थानीय लोग लक्षणा के नाम से जानते हैं! यह मन्दिर सदियों पुराना है तथा लकड़ी की कला-कृति है। प्रवेश द्वार पर लकड़ी के चौखटों पर विभिन्न देवी-देवताओं, यक्षों और गंधर्वों की मूर्तियां खुदी हैं। प्रवेशद्वार के अन्दर छोटा-सा मंडप है। मंडप से गर्भ-गृह को प्रवेश द्वार है। मन्दिर के लिए सारी की सारी देवदार की लकड़ी लगी है। मन्दिर के निर्माण से आज तक 13 या 14 सौ वर्ष बीत चुके होंगे परन्तु फिर भी इस मन्दिर की लकड़ी न जाने कितने वर्ष चलेगी। Dr. Herman Goetz के लिए तो यह मन्दिर अध्ययन का विषय रहा है।

उन्होंने 'Early Wooden Temples of Chamba' नाम की पुस्तक लिखी है जिसमें इस मन्दिर का भी वर्णन है। यह मन्दिर चाहे जब भी बना हो परन्तु मूर्ति मेरु वर्मन् के समय की है। यदि मन्दिर का निर्माण भी उस समय हुआ हो तो यह मन्दिर वास्तुकला में अपने समय की एक अनुपम कृति रही होगी।

मूर्ति तो अद्भुत ही है। ऐसा लगता है कि मूर्तिकार ने इसे आज ही बनाया

है परन्तु यह मूर्ति तो मेरु-वर्मन् के समय की बनी है। शिलालेख से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण गुग्गा नामक एक कलाकार ने किया था। मूर्ति अष्टधातु से बनी है। एक हाथ में वर्छा है जिससे भैंसे की आकृति के महिषासुर पर वार किया गया है। जैसे कि शिलालेख से स्पष्ट है कि राजा मेरुवर्मन् ने ही इसका निर्माण कराया था अतः इस मूर्ति की परिधान व्यवस्था से भी स्पष्ट होता है कि यह मूर्ति गुप्त कालीन शैली की बनी हैं।

उस समय से राजा की उस से इसके पुजारी परिवारों को शासन की भूमि मिली थी जो कर-मुक्त थी।

अन्य मन्दिर—यहां दो मन्दिर शिखर शैली के हैं। एक मन्दिर मनिमहेश का और दूसरा नृसिह का। मनिमहेश के मन्दिर का निर्माण मेरुवर्मन् के समय हुआ माना जाता है। इसका प्रमाण इसके प्रांगण में खड़ी नन्दी की मूर्ति है जिसकी पीढ़ी पर मेरुवर्मन् के समय का लिखा शिला लेख है। मन्दिर में केवल विशालकाय शिवजी का लिंग मात्र है। नन्दी की मूर्ति भी उत्तम अष्ट धातु से बनी है। पूंछ और कान पर मूर्तिभंजकों (संभवतः कीरों)ने क्षति पहुंचाई है। लोक विश्वास तो यह है कि नन्दी की पहले शिव जी की ओर पूंछ थी। शिव जी ने कुपित हो कर उसको पूंछ से पकड़ कर घुमाया ताकि शिवजी के मन्दिर की ओर उसका मुंह हो। पूंछ क्षति ग्रस्त हो गई।

गणेश—अष्ट धातु की उसी समय की अन्य मूर्ति गणेश की है। यह भी मेरु वर्मन् के समय बनी है। इसके पांव पर भी उसी समय का कुटिल लिपि में शिलालेख लिखा है। गणेश का मन्दिर साधारण पहाड़ी शैली का बना है। केवल मूर्ति को सुरक्षित रखे है।

नृसिह—एक अन्य शिखर शैली का मन्दिर नृसिह का है। यह मूर्ति भी अष्ट धातु की बनी है। मन्दिर का निर्माण चम्बा के राजा साहिल वर्मन् के पुत्र राजा युगाकार वर्मन् की रानी त्रिभुवन रेखा द्वारा बनाया गया है परन्तु कई विद्वान मूर्ति को मेरुवर्मन् के समय की सम्भावित मानते हैं क्योंकि मूर्ति शैली में अन्य अष्ट धातु की मूर्तियों की समकालीन लगती है। इस पर कोई भी शिलालेख नहीं अतः मूर्ति का समय और निर्माण काल प्रमाणित नहीं हो सका। पूर्व वर्णित तीनों अष्टधातु की मूर्तियों पर गुग्गे के निर्माण का प्रमाण मिलता है।

इस कस्बे का अन्य मन्दिर सूर्य का बताया जाता है जो चम्बा के राजा की कुलज भी है। यहां केवल एक शिवलिंग है जिस पर सूर्यमुखी चित्रित कपड़ा लगा रहता है। हो सकता है पुराना मन्दिर नष्टप्रायः हो गया हो। यहीं पर गुप्त गंगा भी बताई जाती है जिसमें श्रद्धालु स्नान करते हैं। गुप्त गंगा। क्या है केवल पानी का छोटा-सा जोहड़ मात्र है। एक अन्य मन्दिर शीतला देवी का है जिसमें मूर्ति का अधिष्ठान् नांगा बाबा जी ने किया था। नांगा बाबा के समाधिस्थ होने

पर इसी चौरासी में उनकी समाधि और मूर्ति की स्थापना हुई है।

समीपस्थ सचूंई नामक गांव में ब्रह्माणी देवी का साधारण-सा मन्दिर है। यहीं पत्थर पर शिव जी की मानवाकार मूर्ति वृषभ का सहारा लिये उकीरी गई है। यह मूर्ति बहुत पुरानी लगती है।

छतराढ़ी देवी का मन्दिर—गद्‌यार क्षेत्र का छतराढ़ी गांव भी कला के लिए प्रसिद्धि पा चुका है। यहां भी लकड़ी का शक्तिदेवी का मन्दिर है। यह मन्दिर है। यह मन्दिर भी मेरुवर्मन् के समय बना है। डॉक्टर हरमन गोट्‌ज ने इस पर भी अपनी सशक्त लेखनी उठाई है। इस मन्दिर के प्रवेशद्वार के चौखटे पर भी, नवग्रह, सात नदियों, देवी-देवताओं, गंधर्वों और यक्षों की मूर्तियां खुदी हैं। विष्णु भगवान् की मूर्तियों को विभिन्न मुद्राओं में खोदा गया। मंडप में एक ओर लकड़ी पर विभिन्न-विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियां खुदी हैं। दूसरी ओर गर्भ-गृह के वाहिरी दीवारों पर चित्रकारी हुई है जिसका वर्णन इस पुस्तक में अन्यत्र किया गया है।

मूर्ति—गर्भगृह में शक्ति देवी की मूर्ति है। यह मूर्ति अष्ट-धातु की बनी है। निर्माण शैली गुप्तकालीन है क्योंकि गुप्तकालीन मूर्तियों में परिधान दर्शाने की प्रथा थी। मूर्ति के चार हाथ हैं। दो दायें हाथों में कमल का फूल और गदा है। बायें हाथों में घंटी और सांप हैं। मूर्ति की पीढ़ी पर कुटिल लिपि के शिला लेख हैं। जिसके शुद्ध रूप का विवर्या हच्चीसन ने अपनी पुस्तक Antiquities of Chamba में इस प्रकार दिया है :—

ओम् ।। आसीद्धि शुद्ध कुलधुर्यवाह श्री देव वर्मेति प्रसिद्ध कीर्ति। तस्य सुतः सर्व गुणाभिरामः श्री मेरुवर्मा प्रथित (यशः) पृथव्याम् ।। माता पितृ पुण्यानिमित्तं पूर्वकारिता भक्ति त एव शक्तिः जित्वा रिपुः दुर्जय दुर्ग संस्थाप्कीर्ति यशो धर्म विर्विधितायुः ।।

कृतं कर्मिणा गुग्गेन !

जिसका अर्थ इस प्रकार किया है—

उच्च वंश में पैदा हुए प्रसिद्ध योधा देववर्मन के पुत्र मेरुवर्मन ने, जो इस भू पर कीर्तिमान और सर्वगुण सम्पन्न हैं, अपने माता-पिता की अध्यातम-समृद्धि और शक्ति से प्रेरित हो, दुर्जय, शत्रुओं के दुर्गम किलों को विजित कर शक्ति की मूर्ति को निर्मित कर, प्रसिद्धि और धार्मिक गुणों से जीवन को सफल किया है।

कर्मकार गुग्गा (मूल अर्थ अंग्रेजी से)

शिलालेख से स्पष्ट होता है कि मेरुवर्मन् ने अपने राज्य का विस्तार छतराढ़ी गांव तक कर लिया था तथा मूर्ति का निर्माण प्रसिद्ध मूर्तिकार गुग्गा से करवाया था। भरमौर की तीन कांस्य मूर्तियों पर भी गुग्गे का नाम मिलता है

अतः स्वतःसिद्ध है कि उस समय की धातु की मूर्तियां ढालने में गुग्गे का विशेष हाथ है। गुग्गे को कश्मीर की मूर्तिकला का भी कलाकार माना है। परन्तु स्थानीय किंवदन्ती के अनुसार गुग्गा भवन निर्माता बताया गया है। जबकि मूर्तिकार का नाम 'भड़िया' बताया है। छतराढ़ी के ठठियारों (स्थानीय रिहाड़े) का मत है कि छतराढ़ी की अष्टधातु की मूर्ति का निर्माण 'भड़िए' के हाथ से हुआ। उसको वे अपना पुरखा मानते हैं। छतराढ़ी शक्ति माता की मूर्ति को उसने अपनी पुत्री के मॉडल पर ढाला था। भरमौर के ठठियार उसका नाम 'घोघा' बताते हैं। उसे भरमौर की मूर्तियों का निर्माण बताया है। 'घोघा और गुग्गा' में तो केवल उच्चारण का अंतर ही है। लेकिन शायद उसका अन्य नाम 'भड़िया' भी हो।

दूसरी अनुश्रुति है कि गुग्गा भवन निर्माता भी था। उसने किसी राणा के भवन का निर्माण किया जो वास्तुकला में अद्वितीय था। अतः राणा ने उसका एक हाथ काट दिया। अब उसने अपनी सेवाएं शक्ति माता को अर्पित कर दीं और छतराढ़ी के मन्दिर का निर्माण एक ही हाथ से किया, जो कला की दृष्टि से अद्वितीय था। वह एक ही धुरी पर बना था तथा अपने गिर्द घूमता था। इसके निर्माण के बाद उसने मन्दिर की छत से छलांग लगा कर अपने आपको समाप्त कर दिया।

ऐसा लगता है वह मूर्तिकार और भवन निर्माता सभी कुछ था। वह भड़िया घोघा और गुग्गा था।

वही मन्दिर आज भी वर्तमान है। कहा जाता है कि घूमने वाले मन्दिर को सन् 1905 ई० में भूचाल के कारण क्षति पहुंची थी। अतः उसका घूमना बन्द हो गया। हो सकता है इस मन्दिर का गर्भगृह इस प्रकार बना हो जो अपनी धुरी पर घूमता हो। वर्तमान मन्दिर पहाड़ी शैली का है। ऊपर की छत गोल है। पुराना मन्दिर पहाड़ी मकानों की तरह चपटी छत वाला था। इस छत को अब गोलाकार में परिवर्तित किया गया है। सचमुच ही इस मन्दिर का निर्माण कला की दृष्टि से अद्भुत है।

गूं की आदिशक्ति का मन्दिर—चम्बा से भरमौर की ओर रावी नदी की दायीं ओर गूं क्षेत्र है। यह क्षेत्र ऐतिहासिक स्थल है। यहां राजा मेरुवर्मन् के समय अषाढ़देव नामक सामन्त राज्य करता था। उसने उस समय यहां पर शिव जी के मन्दिर का निर्माण किया था। यहां मिले शिलालेख से ज्ञात होता है कि सामन्त अषाढ़देव के समय इस स्थान को शिवपुरी के नाम से पुकारते थे। यहां शिव लिंगों की संख्या 101 थी। जो अब घट कर दस-बारह ही रह गए हैं। शिव जी का मन्दिर तो प्रायः नष्ट हो गया है। परन्तु आदिशक्ति का मन्दिर अब भी वर्तमान है।

यहां के लोगों में एक अनुश्रुति प्रचलित है। लोगों का कहना है कि चम्बा

का राजा यहां प्रायः पूजा करने आया करता था। वह चम्बा से पालकी में आता था। एक दिन कहारों (पालकी उठाने वाले) ने उसे सामरे के 'सनाहण' नामक ढांक से नीचे गिरा दिया। परन्तु राजा अपने तपोबल से कहीं ढांक में फंस कर बच गया। तब से उसने पालकी में आना बन्द कर दिया।

मूर्तियां—वर्तमान आदिशक्ति (स्थानीय आदिशक्ति) के मन्दिर में शक्ति की भरमौर की महिषासुर मर्दिनी के मॉडल पर पत्थर की मूर्ति बनी है। यहां सूर्य की मूर्तियां अवस्थित थीं। जिनमें से एक इस समय भूरि सिंह संग्रहालय चम्बा में है और दूसरी अभी इसी मन्दिर में है।

इस मूर्ति के विषय में डॉ० हर्मन गटज ने इस प्रकार लिखा है—

The most important of these are the Badha from Fatehpur and above mentioned Surya image from Sun in Ravi Valley, half way between Chamba and Bharmour. The Gun image, though in Gupta style and technique, has Sassanian Custume and locks.

Early wooden temples of Chamba.

Sassanian dynasty ईरान (Persia) में 218 ई० से 629 A.D. तक रही। अतः यह मूर्ति बहुत पुरानी है। मूर्ति पत्थर की है। सूर्य के रथ को सात घोड़े खींच रहे हैं। अरुण सार्थी है। उषा और प्रत्युषा सूर्य के दायें और बायें खड़ी हैं। मूर्ति अद्वितीय कलाकृति है। इसी प्रकार की दूसरी मूर्ति अब भी मन्दिर में वर्तमान है। परन्तु यह कृति दूसरी मूर्ति की नकल प्रतीत होती है।

उक्त शिलालेख से शिवलिंग के पत्थर पर खुदा है, इतिहास का श्रोत है तथा इसका संस्कृत का शुद्ध रूप इस प्रकार किया है—

ओम् ।। मोषूण दिव्य वंश (संभूव) परम शिवनतं श्री मेरुवर्मदेव—पाद कमल किसलयाश्रितेन सामन्त अषाढदेवेन सुर पितृजन सेवा कृतोऽयं देव धर्मः शिवपुरमध्यमं षड्गलीशस्य हर्म्यम् ।।

हिन्दी अनुवाद—सामन्त अषाढ़देव ने अपने पितृजन सेवा हित श्री मेरु वर्मन्, जो कि मोषूण दिव्यवंश से सम्बन्ध रखते हैं और शिव भक्त हैं, के चरण-कमलों की कृपा से, उनके आश्रम में रहकर षड्गलीश-शिव के मन्दिर का निर्माण किया।

इससे यह भी विदित होता है कि श्री मेरु वर्मन् का राज्य विस्तार गूं क्षेत्र तक हो चुका था।

वास्तुकला के अन्य उदाहरण—पुरातन मन्दिरों के अतिरिक्त भवन निर्माण का पुरातन उदाहरण कोट या किले हैं। कोट या किलेनुमा मकानों की निर्माण शैली अपने प्रकार की थी। इस प्रकार के भवनों के लिए केवल एकमात्र प्रवेश द्वार हुआ करता था। यह प्रवेश द्वार केवल निचली छत को हुआ करता था। इस

प्रवेश द्वार के लिए मजबूत लकड़ी का दरवाजा बना होता था। मकान चार या पांच मंजिलें होते थे। प्रकाश के लिए छोटे-छोटे रोशनदान हुआ करते थे। इस प्रकार की भवन कला का विकास इसलिए कहा जाता है कि पुराने समय छोटे-छोटे रजवाड़े होते थे। जिसका शासक ठाकुर या राणा हुआ करता था। वे आपस में लड़ते और झगड़ते थे तथा एक-दूसरे के क्षेत्र में आकर लूटमार किया करते थे। ऐसे समय पर लोग स्वयं अपनी रक्षा करते थे और इस प्रकार के भवनों में छिपकर अपनी रक्षा करते थे। छोटे-छोटे रोशनदानों से शत्रुओं पर तीर कमानों से वर्षा भी करते थे। दूसरी अनुश्रुति यह भी है कि मैदानी क्षेत्रों के आक्रमण-कारी भी कभी-कभी लूटमार करते आ जाते थे। उस समय आत्म-रक्षा के लिए ऐसे भवन उपयोगी रहते थे। इस प्रकार के भवन अब कहीं-कहीं केवल नमूना मात्र के लिए रह गए हैं। यदि कहीं ऐसे मकान बचे भी हैं तो उनकी ऊपर की दो-तीन छतें गिरा दी गई हैं तथा निचली दो-तीन छतें रह गई हैं।

उस समय राणा या ठाकुर लोग अपनी आत्म रक्षा के लिए क्षेत्र के केन्द्र में ऊंचे टीले पर किलों का निर्माण करते थे। जिन्हें गढ़, कोट या गढ़ी के नाम से पुकारते थे। राजा के द्वारा इन राणाओं और ठाकुरों ने बाद में पराजय स्वीकार की। अतः प्रायः यहीं गढ़ या कोट बाद में परगने के कारदारों की 'कोठी' बनीं। अब ये स्थान अपने-अपने क्षेत्र की कोठी कहलाने लगीं। जैसे गूं-कोठी, रण्हून कोठी, भरमौर कोठी। ये कोठियां उन्हीं 'कोटों' से बनीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद में वही कोठियां पंचायत घर बने।

आधुनिक वास्तुकला—अब पुरानी वास्तुकला ने नया मोड़ ले लिया है परन्तु अधिकांश मकान पुराने ढंग से बनाये जाते हैं। ऐसे मकान प्रायः तीन छत के होते हैं। निचली छत को 'ओवरा' कहते हैं जिसमें पशु रखे जाते हैं। डंगर बांधे जाते हैं या कटघरे से बनाकर उनमें खुले छोड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार के कटघरों को 'गैण' की संज्ञा दी जाती है। ओवरे में दो या तीन 'गैणें' बनाई जाती हैं। पशुओं का वर्गीकरण कर अलग-अलग कटघरे (गैण) में रखा जाता है। छोटे बछड़े और बछड़ी को अलग-सा स्थान बनाकर, जिसे 'ओड़ा' कहा जाता है, में रखा जाता है। ओड़ा तखते आदि से बनाया जाता है। भेड़-बकरियों के लिए 'गैण' के ऊपर तखते लगाकर अलग स्थान बनाया जाता है जिसे 'तन' कहते हैं। यानि कि 'ओवरे' में पशुओं के वर्ग के अनुसार गैणें, 'ओड़े' और तन बनाए जाते हैं।

दूसरी छत को 'ओवरी' कहते हैं जो मनुष्य के बैठने के काम आती है।

तीसरी और अन्तिम छत 'बहोड़' या 'भोड़' कहलाती है जहां प्राय खाना पकाया जाता है।

शिक्षा के प्रसार के कारण अब कतिपय नये ढंग के मकानों का निर्माण होने लगा है। अब नये ढंग के मकान बनने लगे हैं। एक मकान में छः या सात अलग-

अलग कमरों का निर्माण होने लगा है। कमरों के लिए शीशेनुमा खिड़कियों का प्रबन्ध होता है। रसोई का अलग-सा कमरा रखा जाता है या रसोईघर अलग से बनाया जाता है। पशुओं के लिए अलग से पशुशाला का निर्माण किया जाता है।

जैसे-जैसे सुख-सुविधाएं उपलब्ध हुई हैं, मनुष्य के रहन-सहन में भी सुधार हुआ है। भवन-निर्माण कला में इसी प्रकार स्वाभाविक परिवर्तन हुआ है।

कुलेठ का कार्तिकेय मन्दिर और मूर्ति—होली क्षेत्र में एक गांव है जिसे पुराने समय 'कुलगोठठ' कहते थे उसी का अपभ्रंश रूप 'कुलेठ' बना। यहां स्वामी कार्तिकेय का जीर्ण-शीर्ण अवस्था में छोटा सा मन्दिर है जिसमें संस्कृति की अनुपम धरोहर कार्तिकेय की मानवाकार प्रस्तर (पत्थर) की मूर्ति है जो अपनी कला का अद्‌भुत उदाहरण है। यह मूर्ति बहुत पुरानी है। इस मूर्ति के साथ एक लोक-कथा जुड़ी है जिसका वर्णन सम्बद्ध स्थान पर किया जाएगा। मूर्ति काले पत्थर की बनी है। इसके ऊपर और नीचे, दो पंक्तियों में तीन सिर हैं। इस प्रकार यह षड्‌मुख अज्ञात मूर्तिकार की छः हाथ दर्शाये अनुपमकृति है। हाथ में दायें और बायें क्रमशः खड्‌ग, वर्छा, सांप और कबूतर, डमरू, ध्वजा है। खड्‌ग और वर्छा आयुद्ध के द्योतक हैं। सांप मृत्यु का द्योतक है, कबूतर अग्निदेव का रूप है। ध्वजा अग्नि का चिन्ह माना गया है। डमरू शिव जी का प्रतीक है।

मूर्ति का निर्माण पौराणिक कथा के आधार पर हुआ है। कार्तिकेय स्वामी के विषय में पुराणों में दो कथाएं प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार कार्तिकेय शिव और पार्वती के पुत्र थे। दोनों दशाओं में इनका जन्म गंगा नदी के पानी में हुआ अतः इन्हें गांगेय के नाम से भी जाना जाता है।

सृष्टि के आरम्भ में शिवजी को सेनापति का कार्य निभाना पड़ा। काफी समय अपना कर्तव्य निभाते-निभाते शिवजी थक गए। कैलाश पर्वत पर तपस्या में लीन हो गए। अवसर पाकर राक्षसों ने उत्पात मचाना आरम्भ किया। उन्होंने इन्द्र का हाथी, कुवेर के एक हजार घोड़े और ऋषि की कामधेनु गाय चुरा ली। इन्द्र जी यह सब सहन न कर सके अतः वह जंगल में पलायन कर गए। एक दिन जंगल में क्या देखते हैं कि केसनी नामक राक्षस ने देव सेना नामक युवती को दबोच लिया है। उसका सतीत्व खतरे में था। उसने शोर मचाना आरम्भ किया। भाग्यवश इन्द्र उसकी रक्षा के लिए प्रकट हुए। युवती ने रक्षा पाकर इन्द्रदेव से प्रार्थना की कि उसका पति इतना वीर हो कि राक्षसों का संहार कर सके। इस वर की प्राप्ति के लिए इन्द्रदेव ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार के वीर का जन्म गंगा के पानी में होगा। वही इस युवती का पति होगा।

एक बार सप्तऋषि एक स्थान पर हवन करने के लिए एकत्रित हुए। वे हवन करने में व्यस्त हो गए। अग्निदेव सप्तऋषियों की पत्नियों पर मोहित हो गए।

वह आशा पूर्ण न होने पर जंगल में चले गए। उधर दक्ष प्रजापति की पुत्री स्वाहा मौका पाकर अपना रूप बारी-बारी से सप्तऋषियों की पत्नी का बनाती गई अत: सात-बार अग्निदेव से अंश प्राप्त कर एक सोने के वर्तन में रखा। इस सोने के बर्तन को गंगा नदी में डाल दिया। वहीं इस अंश से कार्तिकेय ने जन्म लिया। यह बच्चा छ: राजकुमारियों को मिला। वे इस बच्चे की सुन्दरता देख उसे प्राप्त करने का प्रयास करने लगीं। कार्तिकेय ने छ: मुख धारण कर प्रत्येक की छाती से दूध पिया अत: उसे षड्मुख की संज्ञा मिली।

दूसरी कथा इस प्रकार है—

देवताओं के महा सेनानायक शिवजी कैलाश पर्वत पर तपस्या में लीन हो गए। उनकी तपस्या भंग करने की सामर्थ्य किसी में न थी। उधर तारका सुर ने मौका पाकर ब्रह्मा से वर प्राप्त किया कि उसे शिव के पुत्र के सिवाय कोई भी व्यक्ति मारने में समर्थ न होगा। वह जानता था कि शिव जी तपस्या में लीन हैं और उनका पुत्र होना असम्भव है फलस्वरूप उसने देवताओं पर अत्याचार आरम्भ कर दिए। देवता उसके उत्पात से आतंकित हो ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने उन्हें आश्वासन दिया कि गंगा के पानी में शिव-पार्वती के अंश से एक पुत्र उत्पन्न होगा वही तारकासुर का संहार करेगा।

देवताओं की इच्छा से सती ने उमा के रूप में जन्म लिया। उमा हिमालय या हिमवान की पुत्री थी। उसने शिवजी की प्राप्ति के लिए तपस्या आरम्भ की। उधर देवताओं ने काम के माध्यम से शिव की तपस्या भंग करनी चाही। काम ने शिव की तगस्या भंग करने हेतु शिव पर काम-बाण फेंका। शिव की समाधि भंग हुई। तीसरा नेत्र खुला। काम को भस्म कर दिया। पार्वती (उमा) को पुन: तपस्या करनी पड़ी। शिव पार्वती का विवाह होने पर भी सन्तान उत्पत्ति न हुई। देवताओं के आग्रह पर अग्निदेव ने कबूतर का रूप धारण किया तथाशिव पार्वती का अंश प्राप्त करने में सफल हुए परन्तु इसकी गर्मी अपनी चोंच में सहन न कर सका अत: अंग गंगा नदी में गिर पड़ा। इसी से गंगा नदी में कार्तिकेय का जन्म हुआ। कार्तिकेय ने तारका सुर का वध किया।

यहां हर वर्ष जन्माष्टमी के दूसरे दिन एक मेले का आयोजन होता है।

कुगति केलंग का मन्दिर और मूर्ति—भरमौर में भरमौर से सोलह मील की दूरी पर कुगति गांव के समीप ही केलंग का मन्दिर है। इस मन्दिर में एक त्रिमुख मूर्ति पदमासन्न अवस्था में बताई जाती है। दूसरी मूर्ति चम्बा के राजा श्री श्रीसिंह (1844 ई० से 1870) ने अष्टधातु की बनवाकर चढ़ाई है जो दंडहस्थ खड़ी है। सिर पर सांपों को दर्शाया गया है। केलंग कलिहर नाग है जो अनुश्रुति के

अनुसार लाहोल के केलंग नामक गांव से मेंढे के सिर पर कुगति आया बताया जाता है। इस नाग के आने से भेड़ों की फैली बीमारी समाप्त हो गई।

हड़सर का शिव मन्दिन भरमौर से आठ मील की दूरी पर हड़सर गांव में है। यह गांव मनिमहेश यात्रियों का पड़ाव है जहां पर यात्री रात को ठहरते हैं। यहां शिवजी का मन्दिर है जिसमें श्री चम्बा नरेश श्रीसिंह द्वारा बनवाई और स्थापित मूर्ति विद्यमान है।

खड़ामुख शिवजी का मन्दिर—यहां पर एक छोटा-सा शिव जी का मन्दिर है जिसे चम्बा की प्रसिद्ध समाज सेविका और अध्यापिका पारो देवी ने बनवाया है। इस मन्दिर में शिवजी की मूर्ति की स्थापना भी उन्हीं द्वारा की गई।

चन्हौता क्षेत्र के मन्दिर—चन्हौता क्षेत्र में एक विष्णु भगवान का मन्दिर है जिसमें पौराणिक ढंग की गरुड़ की सवारी विष्णु भगवान की मूर्ति है।

चन्हौता क्षेत्र में ही बणीग्राम में इंद्रु नाग का मन्दिर है जो काफी पुराना है। मन्दिर में पत्थर की बनी नाग की मूर्ति है।

क्वार्सी इन्द्रु नाग का मन्दिर—क्वार्सी एक सुरम्य गांव है। यहां इन्द्रु नाग का बहुत ही पुराना मन्दिर है। यह मन्दिर अधिकांश लकड़ी का बना है। साथ श्रद्धालुओं के बैठने के लिए मढ़ (मन्दिर के परिसर में बने खुले भवन) हैं जहां यात्री बड़ी आसानी से शरण ले सकते हैं। मूर्तियां साधारण पत्थर की बनी हैं। यह अत्यन्त दुर्लभ स्थान है अतः इन्द्रु नाग ही सब कुछ है। इसीलिए इस नाग देवता की अपार मान्यता है। मंदिर के प्रवेश द्वार पर नक्काशी काम हुआ है। यह गांव घरों और घने जंगलों और पहाड़ों से घिरा है।

पंजसेई का मन्दिर—भरमौर के एक गांव पंजसेई में एक 'बणी' (देवताओं का सुरक्षित घना वन) में नागमन्दिर है। इस मन्दिर में नाग देवता की पत्थर की बनी साधारण-सी मूर्ति है। नाग की अपार मान्यता है।

बासुकी नाग—सामरा और लिहल क्षेत्र के सिरे पर पर्वत की ऊंची चोटी पर बासुकी नाग का भव्य मन्दिर है। प्रांगण में एक पत्थर का सुन्दर बछुआ (छोटा बैल) है जो मन्दिर के सामने बैठा दर्शाया गया है। मन्दिर में नाग की बहुत बड़ी मानवाकार मूर्ति है। इस सुरम्य स्थान से दूर-दूर का दृश्य दिखाई देता है। इसकी अपने क्षेत्र में काफी मान्यता है। लोग दूर-दूर से घी, दूध, दही और छाछ चढ़ाते हैं।

पढ़ौल नाग—गूं क्षेत्र में पढ़ौल नाग का छोटा मन्दिर है जिसमें नाग की मूर्तियां और मोहरें हैं। स्थानीय लोग इसका घी, दूध, छाछ और दही से पूजन करते हैं।

लोथल का शिवजी का मन्दिर—बस्सु क्षेत्र के लोथल गांव में शिवजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर के बाहर बछुआ (नन्दी बैल) की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर बन

पड़ी है।

कुंडी का लक्ष्मी नारायण का मन्दिर—वस्सु क्षेत्र के कुंडी गांव में लक्ष्मी नारायण का छोटा-सा मन्दिर है इसमें विष्णु भगवान् की मूर्ति है।

अन्य मूर्तियां—मन्दिरों के अलावा पानी के बम्बों तथा बावलियों पर कई स्थानों पर पत्थर की मूर्तियां खुदी हैं जिन्हें स्थानीय भाषा में 'नौण' कहते हैं तथा ऐसे जल-श्रोत-स्थानों को नौणपनिहार कह कर पुकारा जाता है। नौण मूर्तियों के विषय गंगा-यमुना, नदियां या कभी-कभी उत्तरी भारत की सात नदियां दर्शाई जाती हैं। कभी-कभी वरुण या सूर्य को नौण के सिरे पर उकीरा हुआ दिखाया गया है। कतिपय नौ ग्रहों को कलात्मक ढंग से उकीरा है। कहीं लव और कुश को उकीरा है। कहीं-कहीं पांच पांडव उकीरे मिले। कई नौण पत्थरों पर कमल के फूल और सूर्यचक्र को भी कलात्मक ढंग से पत्थर पर बनाया गया है।

छतराढ़ी के नौण के पत्थर भी अध्ययन योग्य हैं। वस्सु के तागी के पनिहार पर विष्णु भगवान के दस अवतार बड़े सुन्दर ढंग से निर्मित हुए हैं। इसी प्रकार वस्सु क्षेत्र में ही सुनारा-बग्गा मार्ग पर दरोबी गांव के नीचे पनिहार पर एक नौण पत्थर पर कुछ विष्णु भगवान के अवतारों को उकीरा गया है।

तुर गांव (वस्सु क्षेत्र) में एक शिला पर रास्ते में हाथी के चित्र खुदे पड़े हैं।

गूं क्षेत्र के प्रीणा गांव के पनिहार पर भी इसी प्रकार के नौण खुदे हैं परन्तु अब अधिकांश नष्टप्रायः हो गए हैं। यदा-कदा हर पनिहार पर इस प्रकार की पुरातन कला अब तक जीवित है।

औतर की मूर्तियां—नौण की तरह की कई पनिहारों पर निस्संतान भरे व्यक्तियों की मूर्तियां उकीरी गई हैं जिन्हें उनके कुल के व्यक्ति समय-समय पर पूजन करते हैं। ये मूर्तियां नौण से अलग किस्म की होती हैं तथा एक-एक या दो-दो की गिनती में छोटे से एक ही पत्थर पर उकीरी जाती हैं जिन्हें दीवार में बने स्थान में रखा जाता है।

गूं क्षेत्र में पशुपति शिव की मूर्ति—गूं क्षेत्र के एक नष्टप्रायः शिवजी के मन्दिर की एक मूर्ति कहीं अवांछित स्थान पर रखी मिली है जिसे प्रीणा के पनिहार पर एक छोटे से मन्दिर में सुरक्षित रखा गया है। शिवजी के सिर पर किरीट है। मूर्ति दो पशुओं की स्वरी दर्शाई है। पशुओं में एक घोड़ा और दूसरा शेर-सा जानवर लगता है। यह सम्भवतः पशुपति शिव की मूर्ति प्रतीत होती है।

त्रिलोचन महादेव का मन्दिर—गूं क्षेत्र में ही त्रिलोचन महादेव का छोटा-सा नदी के किनारे मन्दिर है। मन्दिर के परिसर में एक बहुत बड़ा प्रांगण है तथा मढ़ बने हैं जहां यात्रा के समय लोग शरण लेते हैं। मन्दिर में शिवजी की पिंडी है। एक पार्वती की संगमरमर की मूर्ति है जो एक श्रद्धालु से अभी प्राप्त किया है। मन्दिर और मूर्ति की कोई कलात्मकता नहीं। स्थानीय लोगों में शिव की

अत्यधिक मान्यता है। इससे एक लोक-कथा सम्बद्ध है जिसका वर्णन सम्बद्ध स्थान पर किया गया है।

अन्य मन्दिर शीतला और जालपा के हैं जिनका वर्णन अनिवार्य नहीं।

गणेश की मूर्तियां--वैसे तो भरमौर क्षेत्र में अन्य क्षेत्र की तरह गणेश की मूर्तिको प्रवेश द्वार पर प्रतिष्ठित करने का रिवाज है तथा कहीं घर के आगे चबूतरे पर गणेश की मूर्ति को स्थापित करना भी रिवाज ही है परन्तु विशेष कर गूं क्षेत्र में गणेश की मूर्ति लगभग हर गांव में पाई जाती है। इसी क्षेत्र के त्रेला नामक स्थान पर भीमकाय गणेश की मूर्ति बनी रास्ते में रखी गई है। बहुत-सी इस प्रकार की मूर्तियां नष्टप्राय: हो गई हैं।

आधुनिक मूर्ति कला—मूर्तियों और मन्दिरों का निर्माण आज भी हो रहा है। मूर्तियां अधिकतर पत्थर की बनाई जाती हैं। प्रस्तर की मूर्ति सस्ती पड़ती है अत: इसका निर्माण अधिक होता है। कहीं-कहीं गांव में पत्थर के मूर्तिकार मिल जाते हैं। भरमौर के खनीग्राम के श्री आत्मदत्त ने पत्थर और काष्ट की कुछ मूर्तियां बनाई हैं। श्री आत्मदत्त शर्मा अध्यात्मक प्रवृत्ति के मनुष्य हैं। उन्होंने अपने प्रयोग के लिए ही मूर्तियों का निर्माण किया है, बेचने के लिए नहीं। मूर्ति बनाने के लिए उन्होंने काले पत्थर के बजाय नर्म पत्थर का प्रयोग किया है जो आसानी से तराशा जा सकता है। उन्होंने घर में एक काष्ट के मन्दिर का निर्माण भी किया है जिसमें अपने हाथ से सुन्दर काष्ट की मूर्तियां भी बनाई हैं। मन्दिर पोर्टेबल है। एक बार यह मन्दिर चम्बा-चौगान में मिंजर के मेले में प्रदर्शनी में भी रखा था। इस कला के लिए उन्हें मेला-संयोजक समिति ने पुरस्कृत भी किया था।

गूं-क्षेत्र में श्री खजानाराम लोहार को मूर्ति बनाने की रुचि है। उन्होंने काले पत्थर पर कुछ मूर्तियां बनाई हैं परन्तु उनमें बारीकी नहीं है फिर भी उन्होंने गणेश और अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियां निर्मित की हैं। निर्धनता की उलझन में वह इस ओर कम ही ध्यान दे पाए हैं। रण्हूं-कोठी और छतराड़ी क्षेत्र में भी काष्ट और प्रस्तर की मूर्तियां बनाने वाले हैं। वे देवी-देवताओं की साधारण मूर्तियां बनाते हैं। लोगों की मांग पर बनाने के अतिरिक्त स्वयं भी सार्वजनिक स्थानों पर गणेश आदि की छोटी-मोटी मूर्तियां स्थापित करते हैं।

इन मूर्तिकारों का परिचय निम्नलिखित हैं—

श्री दालती—गांव कूंर (छतराड़ी)

श्री भंडारी—गांव सांवला (छतराड़ी)

श्री गुरिया—गांव जगती (रण्हूं-कोठी)

श्री होडी—गांव जगती (रण्हूं-कोठी)

भरमौर के अन्य क्षेत्रों में भी कई स्थानीय मूर्तिकार हैं जो साधारण मूर्तियां बनाते हैं।

कांसे और पीतल की मूर्तियां बनाने वालों में ठठियार (रिहाड़े) हैं जो मांग पर मूर्तियां बना देते हैं परन्तु धातु महंगी होने के कारण अब इसका प्रचलन मंद है।

छतराढ़ी के भित्ति-चित्र

जिला चम्बा के गदयार क्षेत्र छतराढ़ी नामक स्थान पर शक्तिदेवी का इतिहास प्रसिद्ध मन्दिर है जिसके भित्ति चित्र, चित्रकला की पहाड़ी शैली में चित्रित हुए हैं। ये चित्र बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक काल के लगते हैं। कहते हैं सन् 1905 ई० में यह मन्दिर भूंचाल के कारण क्षतिग्रस्त हुआ था। यदि इसकी मरम्मत की गई हो तो ये भित्ति चित्र इसके पश्चात् बने हों इसमें कोई शक नहीं, यदि ये चित्र चम्बा के राजा चढ़त सिंह के समय बने हों तो सम्भवत: मन्दिर का गर्भ-गृह 1905 ई० के भूंचाल में क्षतिग्रस्त न हुआ हो। चढ़त सिंह का कार्यकाल सन् 1808 ई० से 1844 ई० तक रहा है। ये भित्ति चित्र सुन्दर ढंग से कलात्मक हाशिये के भीतर 52 पंक्तियों (खंडों) में बने हैं। हर खण्ड का अपना विषय है तथा अपने में एक कथन लिये पूर्ण है। हर एक पंक्ति में पृष्ठभूमि (Background) का विशेष ध्यान रखा गया है। काले रंग के नक्काशी-युक्त हाशिये में विषय वस्तु का चित्रण हुआ है। ये मुंह बोलते चित्र कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। लम्बे समय के कारण कुछ खण्ड (Block) नष्ट हो गए हैं तथा अन्य चित्रों की पंक्तियां धीरे-धीरे उखड़ती जा रही हैं। यदि किसी प्रकार इस कलानिधि की रक्षा सम्भव हो तो बचाव के उपाय अपेक्षित हैं।

भित्ति चित्रों की विषय-वस्तु पूर्णतया पौराणिक और धार्मिक है। इस विषय-वस्तु का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

(i) हिन्दू धर्म सम्बन्धी अवतारों का चित्रण।
(ii) कृष्ण लीला सम्बन्धी चित्र।
(iii) दुर्गावतरण।
(iv) शिव-पार्वती के चित्र।
(v) राम-लक्ष्मण के चित्र।
(vi) विविध।

हिन्दु दर्शन और पुराणों में हिन्दु अवतारों पर विभिन्न प्रकार से विवेचन और चिंतन हुआ है। गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

यदा-यदा धर्मस्य गलानिर्भवति भारत।
अभियुत्थानम् धर्मस्य तदात्माना सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधुनां विना शिवाय दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनाय समभवामि युगे-युगे॥

अर्थात् जब-जब धर्म का नाश होता है। तथा अधर्म की वृद्धि होती है तब मैं (कृष्ण विष्णु रूप) प्रकट होता हूं। सज्जन पुरुषों की रक्षा के लिए और दुष्टों का अंत करने के लिए धर्म स्थापित करने के लिए मैं समय-समय पर अवतरित होता रहता हूं।

इसी दर्शन सिद्धान्त पर सृष्टि समय-समय पर रची गयी है और प्रलय के कारण नष्ट भी हुई है। इसी विषय पर पुराणों में कई प्रकार से कथन हुआ है। भगवत पुराण में अवतारों की संख्या 22 बताई है। इसी पुराण में अन्यत्र अवतारों की संख्या 23 हो गई है। एक अन्य प्रसंग में यही पुराण अवतारों की संख्या घटा कर सोलह बताता है।

वराह और अग्नि पुराण में इनकी संख्या घट कर दस रह गई है।

मत्स्य पुराण में ईश्वर के अवतारों की संख्या केवल सात बताई है। ये सात अवतार विष्णु को अपनी पत्नी और शुक्र की माता की हत्या के कारण उन्हें अभिशप्त होने के कारण हुई हैं।

इस प्रकार विदित होता है कि अठारह पुराण अवतारवाद को मानने में सर्व सम्मत हैं परन्तु उनमें अवतारों की संख्या में मतभेद है। एक कथा के अनुसार अवतारों की संख्या कुछ और है तो अन्य कथा के अनुसार और ही है। इस विषय पर उनका मतैक्य नहीं हुआ है। उपनिषद साहित्य में भी अवतारवाद पर विवेचन हुआ है। इन्हीं विषयों पर चित्रकारों और मूर्तिकारों में विभिन्नता आई है।

पुराणों में 22 अवतार इस प्रकार हैं—

1. पुरुष 2. बराह 3. नारद 3. नर और नारायण 5. कपिल 6. दत्तात्रेय 7. यज्ञ 8. ऋषभ 9. पृथु 10. मत्स्य 11. कूर्म 12. धन्वन्तरी 13. मोहनी 14. नृसिंह 15. वामन 16. भार्गव 17. परशुराम 18. राम-दशरथी 19. बलराम 20. कृष्ण 21. बुद्ध 22. कल्कि।

प्रायः मान्य दस अवतारों की सूची इस प्रकार है—

1. मत्स्य 2. कूर्म 3. वराह 4. नृसिंह 5. वामन 6. परशुराम 7. दाशरथीराम 8. कृष्ण 9. बुद्ध और 10. कल्कि।

छतराड़ी के भित्ति चित्रों के सातवें खण्ड (पंक्ति—Block) में मत्स्य अवतार का अत्यन्त सुन्दर और कलात्मक ढंग से चित्रण हुआ है। विष्णु भगवान् अर्ध-मानव मुद्रा में दर्शाए गए हैं। नीचे वे मत्स्य रूप में प्रकट हुए हैं तथा शरीर का उपला

भाग मानव का है। ऋषि-मुनि उनकी पृष्ठभूमि में हाथ जोड़े खड़े हैं। चक्र का प्रहार कर राक्षस का बध किया गया है। पुराणों में मत्स्य अवतार को प्रकट होने के विषय में एक कथा है। जिसके अनुसार जब प्रलय के समय पृथ्वी जलमग्न हो गई तो विष्णु भगवान् के सातवें मनु वैवस्वत की रक्षा करनी अनिवार्य समझी। वह रज्जु से वैवस्वत मनु को डूबने से बचाते रहे ताकि प्रलय के पश्चात् सृष्टि का पुन: सृजन सम्भव हो।

भित्ति चित्र की नवम पंक्ति में कूर्म अवतार का चित्रण हुआ है। जब राक्षसों ने उत्पात मचाया और चौदह रत्नों को ऋषि-मुनियों से हरण कर ले गए तो सभी देवता ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने विष्णु से प्रार्थना की तथा विष्णु ने परामर्श दिया कि समुद्र मंथन करने पर ही अमृत की प्राप्ति होने पर इन रत्नों की प्राप्ति सम्भव है। अत: मन्दर पर्वत को समुद्र में खड़ा कर उससे शेषनाग को रस्सी बनाया गया। समुद्र मंथन आरम्भ हुआ। शेषनाग को सिर की ओर से राक्षसों ने पकड़ा तथा पूंछ की ओर से देवताओं ने पकड़ा। मन्दर पर्वत समुद्र में धंस न जाय इसलिए विष्णु भगवान् ने कूर्म अवतार लेकर उस पर्वत को अपनी पीठ पर थामा। चित्र में समुद्र-मंथन अत्यन्त आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है। एक ओर ऊपर की ओर चौदह रत्नों को दर्शाया गया है जिनमें इन्द्र का ऐरावत हाथी और उच्चैश्रवस घोड़ा दर्शाए गए हैं तो दूसरी ओर कामधेनु पर लगाए दिखाई गई है। अन्य रत्न जो समुद्र मंथन के बाद प्राप्त दर्शाए गए हैं इस प्रकार हैं—लक्ष्मी, चन्द्र, सुरा कौस्तुम, रम्भा, धन्वंतरी, धनुष, परिजाल, शंख। चौदहवां रत्न अमृत मंथन के बाद प्राप्त होना था जिसे पीने के लिए देवताओं और दैत्यों का संघर्ष हुआ। विष्णु भगवान् ने मोहनी रूप धारण कर राक्षसों को छला।

भित्ति चित्र के ग्यारहवें भाग में वराह अवतार का चित्रण हुआ है। पौराणिक कथा के अनुसार हिरण्याक्ष राक्षस का इतना प्रभाव बढ़ गया कि उसने पृथ्वी को समुद्र में घसीट लिया। ब्रह्मांड का संतुलन बनाने के लिए विष्णु भगवान अपने आपको वराह (जंगली सुअर) के रूप में अवतरित होकर पृथ्वी को ऊपर खींचा। इस प्रकार ब्रह्मांड का संतुलन बनाए रखा।

भित्ति चित्रों के तेरहवें ब्लॉक में नृसिंह अवतार का चित्रण हुआ है। विश्वास है कि हिरण्यकशिपु नामक राक्षस ने अपना प्रभाव इतना बढ़ा लिया कि वह विष्णु का नाम भी नहीं सुनना चाहता था। उसे वर मिला था कि वह न मनुष्य के द्वारा मारा जाएगा और न अन्य पशु या पक्षी के द्वारा, न अन्दर मारा जाएगा न बाहर, न दिन को और न रात को इत्यादि। उसने अपने पुत्र प्रह्लाद को विष्णु की पूजा करने पर तरह-तरह की यातनाएं दी थीं। नृसिंह भगवान प्रह्लाद की प्रार्थना पर ही एक जलते लौह-स्तम्भ से प्रकट हुए थे जब प्रह्लाद को उस स्तम्भ से बांधा गया था। नृसिंह अवतार ने हिरण्यकशिपु के वर को तो उसी तरह स्थापित रखा

तथा नृसिंह के रूप में, न अन्दर न बाहर वध किया ।

भित्ति चित्रों के सोलहवें ब्लॉक में वामन अवतार का भावपूर्ण ढंग से सुन्दर चित्रण हुआ है। पौराणिक कथा के अनुसार, भारत में असुरों का प्रभाव इतना बढ़ गया कि राजा बलि जैसे प्रतापी असुर देवता यज्ञ आदि कर जनता और देवता को भी प्रसन्न करने लगे। राजा बलि ने एक महायज्ञ किया जिसमें सभी जनों ने भाग लिया तथा राजा ने दान-पुण्य किया। विष्णु भगवान ने बलि को झुठलाने और असुरों का प्रभाव कम करने के लिए वामन अवतार धारण किया। बलि के पूछने पर वामन ने केवल तीन पग पृथ्वी मांगी। बलि चकित थे कि इस ब्राह्मण ने क्या मांग लिया। वह उसे कहते कि कुछ और मांगे परन्तु वामन ब्राह्मण को यही काफी था। तीन पग भूमि मिलते ही वामन रूप ने एक पग से पृथ्वी और दूसरे से ब्रह्मांड माप लिया। अब इस भीमकाय धारण रूप के लिए तीसरा पग रखने को कोई भी स्थान बाकी न रहा। आधा पग बलि पर पड़ा तथा वह पाताल पहुंच गए।

चित्र में बलि को एक भव्य महल में द्वार पर खड़ा दिखाया है। साथ में बलि की रानी साड़ी पहने खड़ी है। राजा बलि प्रश्नसूचक मुद्रा में वामन अवतार की ओर अवलोक रहे हैं। वामन भगवान् सिर पर छाता धारे खड़े बलि की ओर अवलोकन-मुद्रा में खड़े हैं।

छठा परशुराम अवतार भित्ति-चित्र के सत्रहवें ब्लॉक में चित्रित किया है। उनको परशु लिये क्षत्रियों से जूझते दिखाया गया है। क्षत्रियों के अत्याचारों के कारण श्री परशुराम भूमि पर अवतरित हुए। उन्होंने क्षत्रियों का संहार किया।

सातवां अवतार राम (दशरथ का है जो चित्र श्रृंखला की चौदहवीं कड़ी में प्रस्तुत हुआ है। अवतार राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान को दिखाया गया है। यह चित्रण भी अन्य अवतार चित्रों की तरह आकर्षक चित्रित हुआ है।

भगवान विष्णु का आठवां अवतार कृष्ण का है जो भित्ति चित्रों के पन्द्रहवें ब्लॉक में चित्रित हुआ है। चित्र में कृष्ण को बलराम के साथ दर्शाया गया है। हलधर (बलराम) को हल लिए सुन्दर रूप से चित्रित किया गया है। कृष्ण का अवतरण कंस का वध करने के लिए हुआ।

भित्ति चित्रों की श्रृंखला में बारहवें खण्ड में कल्कि (दसवें अवतार) का चित्रण हुआ है। कल्कि घोड़े से उतरकर एक बहुत भव्य महल में ठहरे अपराधी और अत्याचारी राजाओं और धनिकों की ओर प्रश्नसूचक मुद्रा से देख रहे हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि महल के बाहर खड़ा एक वृद्ध व्यक्ति कलियुग है जो अपना समय बिता चुका है। यह कलियुग का अन्त प्रतीत होता है। पुराणों के अनुसार कलियुग की समाप्ति पर कल्कि अवतार अवतरित होगा जो साधु पुरुषों की रक्षा करेगा तथा दुष्टों का नाश करेगा। यदि अभी तक कलियुग का अन्त नहीं

हुआ है परन्तु चित्रकारों और मूर्तिकारों ने कल्कि अवतार की कल्पना कर ली है। कल्कि को घोड़े पर सवार दर्शाया जाता है।

इन भित्ति चित्रों में विष्णु के नवम अवतार का चित्रण नहीं मिला है। महात्मा बुद्ध को ही नवम अवतार माना जाता है परन्तु इस प्रकार का चित्रण नहीं मिला है। कुछ भित्ति चित्र नष्ट हो गए हैं शायद उनमें इस प्रकार का चित्रण हुआ हो या बलराम को ही नवम अवतार में लिया हो। अवतार शृंखला में बलराम को भी अवतार में लिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक ही समय दो अवतार अवतरित हुए हों। परशुराम और राम अवतार भी समकालीन ही थे। कई विद्वानों ने बुद्ध को विष्णु की अवतार श्रेणी में लेने से आनाकानी की है। अन्य विद्वानों ने महात्मा बुद्ध को विष्णु का अवतार माना है।

कृष्ण लीला—पहाड़ी चित्रकला में कृष्ण लीला को मुख्य विषय बनाया है। कृष्ण लीला पौराणिक और धार्मिक होने के साथ-साथ आकर्षक और मनोहारी भी है। छतराढ़ी के भित्ति चित्रों में इसका अभाव नहीं। भित्ति चित्रों के तीसरे ब्लॉक में कृष्ण को पोपियों के अनुपम सुन्दर ढंग से दर्शाया गया है।

इन्हीं भित्ति चित्रों की उन्नीसवीं पंक्ति (ब्लॉक) में कृष्ण को मुरली-मनोहर के रूप में एक भव्य मन्दिर में आसीन किया, चित्रित किया है। मुरली मनोहर का पूजन करते दोनों ओर दो पुजारी पूजा करते दिखाए गए हैं। उन दोनों में से एक की वेशभूषा गादी है। गादी वेशभूषा वाला पुजारी चोला और डोरा तथा चूड़ीदार पायजामा पहने है। सिर पर परम्परागत ढंग से नोकदारी टोपी पहने है। टोपी पर मोर की जड़ाऊ कलगी पहने है। हाथ में चंवर है। दूसरी ओर साधारण टोपी पहने आरती और घण्टा लिये धोती पहने है।

तीसरे ब्लॉक में कृष्ण और राधा को झूला झूलते दिखाया गया है। चित्रण आकर्षक बन पड़ा है।

इक्कीसवीं पंक्ति में कृष्ण को दैत्यों से जूझते दिखाया गया है। एक दैत्य का सिर कटकर नीचे गिर पड़ा है तथा दूसरा कृष्ण से युद्ध कर रहा दिखाया गया है।

तेतीसवें खण्ड में कृष्ण को राधा के साथ दिखाया गया है। साथ में विभिन्न मुद्राओं में गौओं को चित्रित किया है।

छत्तीसवीं पंक्ति में कृष्ण को राधा का शृंगार करते दर्शाया गया है। राधा जी बैठी मुद्रा में शीशे को निहार रही हैं जबकि कृष्ण उसके बालों को पकड़े संवार रहे हैं। राधा के सामने शीशा पकड़े दासी को चित्रित किया है। शीशे में राधा का आधा चेहरा दिखाई देता है।

सैंतीसवें ब्लॉक में कृष्ण कलिहर नाग से जूझ रहे हैं। नाग और नागनियां कृष्ण से कलिहर की प्राण रक्षा के लिए प्रार्थना कर रही हैं।

चालीसवें ब्लॉक में राधा को दासी की सहायता से शृंगार करते दिखाया

गया है। दासी राधा के सामने शीशा पकड़े है। कृष्ण चुपके से राधा को पीछे से निहार रहे हैं परन्तु आईना कृष्ण की चोरी पकड़ लेता है तथा राधा चौंक पड़ती है। दोनों के अर्ध चेहरे शीशे में दिखाई देते हैं।

इकतालीसवें ब्लॉक में राधा और कृष्ण को चौपड़ खेलते चित्रित किया है।

बयालीसवीं पंक्ति में एक दैत्य कृष्ण के पास हाथी के रूप में छलने आता है। कृष्ण को उसका वध करते चित्रित किया गया है।

बयालीसवें और चालीसवें ब्लॉक में समरूपता पाई गई है।

पैंतालीसवें ब्लॉक में कृष्ण की बाल-लीला चित्रित हुई है। चित्र में दायें और बायें दो वृक्ष खड़े हैं। कुछ बालक गाय चरा रहे हैं और कुछ वृक्ष पर चढ़े हैं। गाय इधर-उधर चरती दिखाई गई है।

छियालीसवें खण्ड में कृष्ण गाय दुह रहे हैं। एक बालक बछड़े को पकड़े है। यशोधा कृष्ण को ऐसा करते चकित मुद्रा में खड़ी देख रही हैं तथा ऐसा न करने के लिए दायां हाथ उठाये प्रसन्न मुद्रा में इंगित कर रही हैं।

सैंतालीसवां ब्लॉक कृष्ण के चीर हरण आख्यान से सम्बन्धित है। गोपियों को नहाने के बाद कपड़े खोजते तथा कृष्ण से उनके कपड़े देने के लिए प्रार्थना करते चित्रित किया गया है। कपड़े वृक्ष पर टंगे दिखाई देते हैं। कृष्ण हाथ में मुरली लिये बैठे तमाशा देख रहे हैं।

इक्यावनवीं पंक्ति में राधा और कृष्ण को एक वृक्ष के नीचे बैठा चित्रित किया गया है। साथ ही बैठी गाय को कृष्ण और राधा की ओर अवलोकन मुद्रा में बैठे दर्शाया है।

दुर्गावतरण—भित्ति चित्रों में दुर्गावतरण पर भी विविध प्रकार से चित्रण हुआ है।

दूसरे ब्लॉक में छतराढ़ी की शक्तिदेवी की मूर्ति को चित्रित कर उसकी पूजा करते दो पुजारियों को दिखाया गया है। एक पुजारी साधारण मुद्रा में धोती पहने है। एक हाथ में आरती और दूसरे में घण्टा है। दूसरी ओर का व्यक्ति गद्दी वेश-भूषा में चंवर झुला रहा है। इसे स्थानीय लोगों ने कुंजाला (चंवर झुलाने बाला) बताया है।

छठे ब्लॉक में दुर्गा को अपने वाहन शेर के साथ खड़ी दैत्यों से युद्ध करते दिखाया है। दुर्गा के सोलह हाथ चित्रित हुए हैं जिनमें विभिन्न सोलह आयुध हैं। शेर को भी प्रहार करते हुए चित्रित किया गया है।

आठवें ब्लॉक में दुर्गा को आठ हाथ लिये दर्शाया गया है। दुर्गा शेर की सवारी है तथा दैत्यों का वध करती हुई चित्रित की है।

दसवीं पंक्ति में चामुंडा देवी को सिर पर छत्र धारे चित्रित किया गया है। प्रार्थी अनुनय-विनय की मुद्रा में खड़े हैं।

बाईसवें ब्लॉक में दुर्गा को अग्नि से प्रकट हुए कमल के फूल पर दर्शाया गया है। देवता और ऋषिगण जिनकी प्रार्थना पर पार्वती ने राक्षसों का संहार करने के लिए दुर्गा का रूप धारण किया है, को साथ में हाथ जोड़े खड़े चित्रित किया गया है।

तेईसवें खण्ड में शक्ति (दुर्गा) को शेर की सवारी चार हाथ धारे दिखाया गया है। दुर्गा राक्षस का वध कर रही है।

चौबीसवें ब्लॉक में ब्रह्मा, विष्णु और शिव को दुर्गा के अग्नि पर कमल के फूल पर प्रकट होने पर प्रार्थना करते चित्रित किया है।

छब्बीसवें ब्लॉक और तेईसवें ब्लॉक में समरूपता पाई गई है।

सत्ताईस, अट्ठाईस, उन्नतीस, तीस और बाईसवें ब्लॉकों में विषय-वस्तु के अनुसार समरूपता पाई गई है।

इकतीसवें खण्ड में काली को राक्षसों से परशु का प्रहार करते चित्रित किया गया है। राक्षस से लड़ते एक ही समय में दो अलग-अलग आकृतियों में लड़ते दिखाया गया है। कुछ दैत्य मारे जा चुके हैं अन्य काली से लड़ रहे हैं।

बत्तीसवें ब्लॉक में भी दुर्गा का युद्ध राक्षसों से चित्रित हुआ है।

अड़तीसवें ब्लॉक में दुर्गा को कमल के फूल पर चित्रित किया गया है। इस रूप में यह चित्र लक्ष्मी का भी बताया जा सकता है। हिन्दू देवी का लोहा अन्य धर्म के लोगों ने भी माना—इस तथ्य की पुष्टि के लिए एक अंग्रेज को अंग्रेजी टोप पहने और एक तुर्क को मुसलमानी टोपी पहने, दो हाथ जोड़े खड़ा दर्शाया गया है।

शिव-पार्वती विषयक चित्र—अच्छी दशा में पाये गए खण्डों में शिव-पार्वती को प्रथम खण्ड और तैंतालीसवें ब्लॉक में चित्रित किया गया है। पहले ब्लॉक में शिव-पार्वती को कैलाश पर्वत पर दर्शाया गया है। चित्र में शिव के वाहन नंदी तथा गणेश के वाहन मूशक को भी दिखाया गया है। भक्तगण हाथ जोड़े खड़े हैं।

तैंतालीसवें ब्लॉक में शिव और पार्वती को नंदी के साथ चित्रित किया है। पार्वती को भांग का प्याला ढालते हुए चित्रित किया गया है।

विविध—पांचवें बलाक में विष्णु को शेषनाग की शैया पर शयन-मुद्रा में चित्रित किया है। साथ में लक्ष्मी जी विष्णु के चरण कमल दबा रही हैं। विष्णु के गर्भ से उत्पन्न कमल के फूल पर ब्रह्म को चित्रित किया गया है।

अठारहवें ब्लॉक में राम और लक्ष्मण को रावण से युद्ध करते दर्शाया गया है। रावण के चित्र के दस सिर हैं।

अड़तालीसवें बलॉक में कामदेव को रति और वसन्त के साथ खड़े दिखाया गया है। साथ में अर्धमानव मुद्रा में तोता हाथ जोड़े खड़ा है। साथ में बैल को

भी चित्रित किया है।

अठारहवें ब्लॉक में श्री सीता, राम और हनुमान को एक साथ चित्रित किया है।

जैसे कि आरम्भिक पंक्तियों में संकेत किया है ये भित्ति चित्र धीरे-धीरे खराब हो रहे हैं। कई स्थानों पर रंग निकल कर सफेदी-सी निकल आई है। कोई समय ऐसा आएगा कि ये दुर्लभ कृतियां पूर्णतया नष्ट हो जाएंगी। चौथा, चौंतीसवां, पैंतीसवां, उन्चासवां और अन्तिम बावनवां ब्लॉक नष्ट हो चुके हैं।

शिल्प एवं अन्य उद्योग

भरमौर के शिप्पी जिन्हें अब 'शिल्पी' जाति से जाना जाता है अन्य शिल्प कला के अतिरिक्त काष्ठ की कारागरी में सिद्धहस्त थे। यह कला भरमौर के रण्हूं कोठी में उन्नत थी। यहां के लकड़ी के बने सभी प्रकार के बर्तन अत्यन्त सुन्दर होते थे। यह कारागरी कश्मीर की नक्काशी से कम नहीं थी। उस समय के बने लकड़ी के बर्तन हड़प्पा और मोहन जोदड़ो के मिट्टी के बने बर्तनों को मात करते थे। लकड़ी के बने मर्तबान जेबरात रखने के लिए डिब्बे (कास्फेट), लकड़ी के 'कुनाले' जो पीतल की परात की तरह चौड़े होते थे और आटा गूँथने के काम आते थे। छोटे कुंभनुमा बर्तन, जिन्हें 'पारु' कहा जाता था, वे तेल और घी रखने के काम आते थे। उन पर सुन्दर ढंग से लकड़ी के ढक्कन लगे रहते थे जिससे तेल या घी गिरता नहीं था। इसी प्रकार की सुन्दर 'कुप्पियां' भी बनाई जाती थीं जो तेल और घी रखने के काम आती थीं। लकड़ी की विभिन्न आकार और प्रकार की कटोरियां भी बनाई जाती थीं। काष्ठ के ही अन्नमापक भी बनाये जाते थे जिन्हें 'माणी' या पथ कहते थे। ऊनी धागा पक्का करने के लिए भी तकली के तरह के यन्त्र बनते थे जिन्हें 'उणसाण' कहा जाता था। इसी प्रकार की छोटी-मोटी असंख्य वस्तुएं बनाई जाती थीं जो दैनिक काम में आती थीं। ये शिल्पी इन वस्तुओं को गांव-गांव घूम-फिरकर अन्न के बदले बेचते थे। अब यह व्यवसाय मृतप्राय है परन्तु हिमाचल का उद्योग विभाग इसे पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रहा है।

अन्य उद्योग—भरमौर के अन्य उद्योगों में ऊनी कम्बल बनाना है। औरतें चरखे से ऊन कातती और मर्द कम्बल और 'पट्टियां' बुनते हैं। यह हस्तकला सारे भरमौर क्षेत्र में प्रचलित है। ऊनी कम्बल शुद्ध ऊन के बनाए जाते हैं और खूब गर्म होते हैं। काली और सफेद ऊन से डिब्बियां डालकर सुन्दर ऊनी कम्बल भी बनते हैं जिन्हें 'गर्दू' कहा जाता है।

छतराड़ी क्षेत्र में बढ़िया प्रकार के डिजाइन डालकर रंगीन कम्बल बनाये जाते हैं जो अत्यंत सुन्दर लगते हैं। इस प्रकार के कम्बल बुनने में श्री रूपचन्द जी शर्मा सिद्धहस्त हैं। आप शिक्षा विभाग में अध्यापक भी रहे हैं। आप मिश्रित

करके रंग तैयार करने में निपुण हैं। अन्य लोगों ने इनसे यह निपुणता प्राप्त की है। इनके हाथ में इतनी सफाई है कि इनके तैयार किए कम्बल और पट्टियां स्वयं इनकी कला की विशेषता को प्रदर्शित करती हैं।

ऊनी उद्योग के अतिरिक्त अब सेब का धन्धा भी प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा है। कई स्थानों पर बगीचे लग गये हैं जो बढ़िया सेब उत्पादन कर रहे हैं। मण्डी में भी अच्छे दाम मिलने आरम्भ हुए हैं परन्तु यातायात के साधनों के अभाव से अभी इस धन्धे को विशेष महत्त्व नहीं मिला है। हिमाचल उद्यान विभाग इस ओर अग्रसर है।

लोक-प्रशासन

लोक-प्रशासन की जड़ें बहुत पुरानी हैं। जब रणौत और ठकरायन पद्धति प्रचलित थी उस समय राणा और ठाकुर लोग अपनी जागीरों या छोटे क्षेत्र को मजबूत रखने का प्रयत्न करते थे और अपने नियम लागू रखते थे। राजा अपने राज्य को सुदृढ़ रखने के लिए अपने कर्मचारी और अधिकारी द्वारा प्रशासन के ढांचे को मजबूत बनाते थे परन्तु समाज के अपने नियम थे जिन्हें वे सामाजिक संस्थाओं द्वारा स्थिर रखते थे चाहे कितने ही ठाकुर, राणा और राजा आएं। जब चम्बा राज्य की राजधानी ब्रह्मपुर (भरमौर) थी उस समय अपेक्षतया शासन व्यवस्था के लिए राज्य अपनी सीमित सीमा में बंधा था परन्तु राजधानी चम्बा चले जाने के बाद राज्य का क्षेत्र विस्तृत हो गया तथा शासन के ढांचे को मजबूत करने के लिए राज्य को परगनों में बांटा गया। क्योंकि सम्पूर्ण भरमौर क्षेत्र बीहड़ जंगलों और गहरी घाटियों से घिरा था यहां 'दुर्बयाला' नामक परगने का अधिकरी होता था जो अपने क्षेत्र की देखरेख ही नहीं करता था अपितु न्यायिक मुकदमों का निपटारा भी करता था। 'लिखण्यारा' नामक अधिकारी वित्तीय मामलों की देखरेख करता था तथा 'कर' वसूल करता था। जमीन इत्यादि के झगड़ों का भी निपटारा करता था। अपने क्षेत्र में शांति व्यवस्था का ध्यान रखना 'दुर्बयाला' का काम होता था। अन्य क्षेत्रों में 'दुर्बयाला' को 'चाड़' की संज्ञा दी जाती थी। ये अधिकारी राजा द्वारा नियुक्त अधिकारी होते थे जो राज्य के नियमों को लागू करते थे। लेकिन इन अधिकारियों तक झगड़ा उस समय ही पहुंचता था जब आपसी समझौता न हो सके। लोग अपने रीति-रिवाजों और सामाजिक नियमों को अपनी पंचायतों के माध्यम से सुलझाते थे। उन पंचायतों के सदस्यों को आज की तरह लोगों द्वारा वोट डालकर नहीं चुना जाता था अपितु लोक-विश्वास द्वारा मान्यता प्राप्त व्यक्तियों को पंच माना जाता था। इस प्रकार के पंच अपनी स्पष्टवादिता और निष्पक्षता के कारण प्रसिद्धि और लोक-विश्वास प्राप्त कर लेते थे। धीरे-धीरे इस प्रकार के व्यक्तियों को 'पंच' की संज्ञा दी जाती थी। पंचों द्वारा सुलझाए झगड़े वहीं पर समाप्त हो जाते थे और दोनों ओर के पक्ष और विपक्ष को मानने पड़ते थे। किसी को सबसे बड़ी सजा सामाजिक

बहिष्कार था। आधुनिक पंचायत राज की स्थापना चम्बा राज्य की ओर से सन् 1945 को कायम की गई जिसके विषय में चम्बा गैजिटियर के पृष्ठ 391 पर इस प्रकार लिखा है—

"The history of Panchayat in the district is not very old. Nevertheless the seed of decentralised democracy popularly known as the system of Panchayats had been sown and had taken roots in the soil of the erst while Chamba State under the Chamba State Panchayat Act passed in 2002 Bikrami corresponding to 1945 A. D."

इसका अर्थ केवल पंचायती अधिनियम के अधीन लाकर पंचायतों को मान्यता देने से था वास्तव में पंचायतें तो सामाजिक नियम के साथ पहले से ही जुड़ी थीं। बाद में इन्हें राज्यों का विलय होने पर हिमाचल सरकार पंचायत अधिनियम के अधीन लाया गया। आधुनिक पंचायतें चुनाव पर आधारित हैं। ये बहुमत पर खड़ी हैं। इनमें दलबन्दी भी आ गई है। पुरातन पंचायतें लोकमत पर आधारित थीं। अब भी जब कभी आपसी झगड़ों का निपटारा करना होता है तो चुने हुए पंचों के अतिरिक्त समाज के गणमान्य व्यक्तियों के विचारों को उसी तरह मान्यता प्राप्त है जिस प्रकार व्यवस्थित पंचायतों के सदस्यों को। प्रायः आपसी झगड़ों को निपटने के लिए लोकमत पर अधिक विश्वास प्राप्त है। पंचों को बहुमत के द्वारा चुनने पर भी पुरानी परिपाटी के अनुसार सर्वसम्मत लोकमत पर विश्वास प्राप्त है। पंचों को बहुमत के द्वारा चुनने पर भी पुरानी परिपाटी के अनुसार सर्व-सम्मत लोकमत पर विश्वास अटल है। सरकारी नियम के अनुसार चुनी गई पंचायत की व्यवस्था होने पर समाज की अपनी परिपाटी समाप्त नहीं हुई। इस बात की पुष्टि उस समय होती है जब संध्या काल को सार्वजनिक स्थल पर गांव के हर परिवार के सदस्य एकत्रित होते हैं। पंचायत प्रधान और चुने हुए सदस्य उस सामाजिक गोष्ठी में भले ही शामिल न हों। ऐसे मौके पर मौखिक आदान-प्रदान द्वारा ही आपसी झगड़े निपटा दिए जाते हैं।

लोक विश्वास में शुभ और अशुभ

जनजातीय लोगों में शुभ और अशुभ विश्वास की प्रथाएं अन्य लोगों की तरह प्रचलित हैं।

जब कहीं शुभ काम करने, यात्रा करने या कठिन स्थान पर जाना हो तो जाते समय किसी का खाली वर्तन लिये मिलना अशुभ माना जाता है। उसी समय नंगे सिर किये औरत का मिलना भी उतना ही अशुभ माना जाता है। ऐसे समय पर सूखी लकड़ी का बोझ लिये व्यक्ति के मिलने को भी बुरा माना जाता है। शूद्र या राजपूत व्यक्ति का मिलना शुभ शकुन समझा जाता है परन्तु ब्राह्मण जाति के व्यक्ति का मिलना ठीक नहीं। जाते समय छींक आना भी अपशकुन मानते हैं।

स्वाभाविक तौर पर आटा गूंथते समय 'कुनाले' से आटे का गिरना किसी मेहमान के आने का द्योतक है।

हिक्की (हिचकी) आने का अर्थ किसी का याद करने का द्योतक है। आग के 'भड़-भड़ाना' का अर्थ कहीं निंदा होने का सूचक है। आग में एकदम 'सीं 3-2' की ध्वनि निकलने का अर्थ किसी भेड़-बकरी, पशु का एकदम मर जाने का सूचक है। ऐसे समय पर ऊनी कपड़े का धागा तोड़ कर आग में डाल दिया जाता है ताकि अग्नि की इसी से तृप्ति हो जाए। किसी औजार जैसे दरांती और कुल्हाड़ी का उल्टा पड़ना पशुधन के लिए अशुभ समझा जाता है।

नाक में एकदम खुजली होना, आंख की पुतली का स्वत: हरकत करना या किसी अंग में खुजली फरफराहट होना स्वास्थ्य के लिए अशुभ सूचक समझे जाते हैं, पांव में खुजली होने का अर्थ कहीं यात्रा करने की सम्भावना है। जूते का उल्टा पड़ना या एक-दूसरे पर पड़ना भी अशुभ समझा जाता है। कान का एकदम बन्द होना, बर्तन का अचानक बज उठना भी अशुभ सूचना का द्योतक है। वाद्य-यन्त्री के ढोल का स्वत: ध्वनि करने का अर्थ कहीं मृत्यु होना है।

पशु के नमक को लांघना पशु के लिए हानिकारक समझा जाता है। तकड़ी (तुला) का लांघना, सूप का लांघना और झाड़ू के ऊपर से गुजरना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक समझा जाता है। मक्की के सिरे पर भुट्टा लगना शुभ समझा

जाता है इसे शिव समझकर पूजा जाता है। औरत का किसी गांव के समीप आगे चलना अशुभ समझा जाता है। नाक की नथ, 'लौंग' या 'तिहली' का नाक से गिर जाना अशुभ समझा जाता है। मुंह पर कालख लग जाने का अर्थ मेहमान के आने की सम्भावना का द्योतक है।

कौए का विभिन्न समय पर बोलना विभिन्न अर्थ का सूचक है। कौए का प्रातः 'कुड़ेरना' (विशेष प्रकार की ध्वनि से बोलना) शुभ सूचक है। दोपहर को इसी प्रकार बोलना अशुभ माना जाता है। सायंकाल का 'कुड़ेरना' भी अशुभ सूचक होता है। कौए का 'का-का-का' ध्वनि से बार-बार बोलना किसी प्रिय-जन के आने की प्रतीक्षा का पूर्ण होना समझा जाता है। 'फौंकू' (गीदड़ की जाति) का घर या गांव के समीप बोलना किसी की मृत्यु का सूचक है। उल्लू का घर की छत या समीप के वृक्ष पर बोलना अशुभ समझा जाता है। कौए द्वारा किसी पर बीठ करना पूर्णतया अशुभ माना जाता है। उसे ब्राह्मण को दानादि देकर अनिष्ठा को दूर किया समझा जाता है। गिद्ध का घर की छत पर बैठने का भी धार्मिक विधि से उपचार (पूजा-पाठादि) किया जाता है। सांप का घर में प्रवेश भी अशुभ समझा जाता है। इसका उपचार शास्त्र विधि से पूजा-पाठ कर किया जाता है। गाय या बैल का बार-बार सिर मोड़ना अशुभ समझा जाता है। ऐसे पशु को मुफ्त किसी को दे दिया जाता है। वृक्ष का अपने मौसम को छोड़ अन्य मौसम में फूलना अशुभ समझा जाता है। ऐसे वृक्ष को काट दिया जाता है। वृक्ष का अकारण एकदम सूखना अशुभ समझा जाता है और उस पेड़ को काट दिया जाता है। गृह में लगी इमारती लकड़ी का अकारण 'तिड़-तिड़' की आवाज करना (तिड़कना) अशुभ माना जाता है। बच्चे का उल्टे दांत निकलना भी अशुभ समझा जाता है। मामा ऐसा होने पर कुछ बच्चे को भेंट देते हैं। खेत में दुबारा बीज बोना अशुभ कृत्य है।

रसोईघर में कड़छी का उल्टा रखना अपशकुन समझा जाता है। सिर के दुपट्टे का जमीन पर घसीटना या जिस्म पर लपेटी चद्दर का जमीन पर घसीटकर चलना अशुभ माना जाता है। औरत का सिर के बाल नोचना अशुभ माना जाता है। सिर पर हाथ रखकर बैठना या गाल पर हाथ टिका कर चिन्तित मुद्रा में बैठना अशुभ सूचक है।

घर का सदस्य यदि बाहर चला जाये तो पीछे से झाड़ू लगाना या कपड़े धोना अपशकुन माना जाता है।

औरत का नंगे सिर झाड़ू लगाना भी अशुभ सूचक है। स्वप्न शुभ और अशुभ सूचक माने जाते हैं। प्रातः का स्वप्न प्रायः सच्चाई का द्योतक है जबकि रात का सच्चाई का द्योतक नहीं। स्वप्न में चीहर (चूळी) या खुरमानी देखना या खाना अस्वास्थ्य का द्योतक है। अन्य फल देखना या खाना अच्छा समझा जाता है। स्वप्न

में मांस भक्षण का अर्थ कही जादू-टोने की संभावना बन जाती है। इसका अर्थ है कि कोई शत्रु कहीं उस स्वप्न देखने वाले के विरुद्ध जादू-टोने के द्वारा ऐसा खाद्य पदार्थ तैयार करने में लगा है जो 'खाधा' कहलाता है। 'खाधा' खिलाने का अर्थ लाइलाज बीमारी लग जाना होता है जो फलतः मृत्यु लाने की सूचक मानी जाती है।

स्वप्न में कन्या देखना शुभ माना जाता है। कन्या को देवी माना जाता जबकि लड़के को शिव माना जाता है। साधु देखने का अर्थ शिव-महादेव का देखना है जो शुभ है। स्वप्न में नाग (सांप) का देखना भी शुभ है परन्तु ऐसा होने पर पितृ-पूजना अवश्य किया जाता है। यदि स्वप्न में किसी की मृत्यु हो जाए तो उस व्यक्ति की उम्र बढ़ जाने की सम्भावना होती है। स्वप्न में लकड़ी देखना किसी की मृत्यु हो जाने का द्योतक है। स्वप्न में नदी में बहती लकड़ी देखना भी अशुभ समझा जाता है। स्वप्न में उड़ान भरना स्वास्थ्य के लिए अच्छा माना जाता है।

यदि खेत के बोते हुए सांप खेत में निकल आए तो अशुभ माना जाता है। खेत में पूजा-पाठ करना अनिवार्य समझा जाता है। इस दशा में खेत को उसी दशा में छोड़ना अनिवार्य समझा जाता है। निर्धारित समय पर खेत पूजा-पाठ किया जाता है।

स्वप्न में भैंसे का देखना अशुभ माना जाता है। ऐसा स्वप्न मृत्यु का सूचक समझा जाता है। स्वप्न में पानी देखना अच्छा समझा जाता है परन्तु भयंकर जल का देखना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माना जाता है।

रविवार और मंगलवार को देवताओं के दिन माने जाते हैं। इन दिनों देवताओं का पूजन किया जाता है। रविवार और मंगलवार को यात्रा करना निर्वजित समझा जाता है। इन दिनों घर छोड़ना तथा सगे-सम्बन्धयों से बिछुड़ना अशुभ माना जाता है। घर में गोबर से फर्श पोछने के लिए ऐतवार और वीरवार अच्छे दिन समझे जाते हैं। शुक्रवार को फर्श पर गोबर बिछाना पशु धन के लिए अशुभ माना है। शुक्रवार को पशु बेचना भी अच्छा नहीं। शनिवार और मंगलवार को बाल काटना, शेव करना या नाखून काटना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक समझा जाता है।

अन्य स्थानों की तरह बहुत से शुभ कार्य नवरात्रि पड़ने पर आरम्भ किए जाते हैं। पंचक में कोई भी कर्म नहीं किया जाता है। भादों, पौष और चैत्र मास में शुभ कार्य विवाहादि नहीं किए जाते।

सहयोगी प्रथाएं

जहां काम-काजी संस्थाओं की गद्दी समाज में विशेष भूमिका है, वहां सामा-

जिक ढांचे में सहयोगी प्रथाओं ने अपना विशेष स्थान प्राप्त किया है। अकेला परिवार या मनुष्य समाज में हर कार्य नहीं कर सकता। घर और बाहर का कार्य मिल-जुल कर ही सफल हो सकता है। आज के समाज और प्राचीन समाज में काफी अन्तर है। आधुनिक समाज का मानव यदि आर्थिक रूप से सुदृढ़ है तो वह अपना अधिकांश कार्य पैसे के बल से कर लेता है। प्राचीन समाज में यह सुविधा नहीं थी अतः सहयोगी संस्थाएं प्रचलित रहीं जिनमें अधिकांश आज भी व्यवहार में लाई जाती हैं। जब कभी नया मकान बनाना होता है तो अधिकांश काम सहयोग से किया जाता है। भरमौर क्षेत्र में घर निर्माण के लिए बीस-बीस या तीस-तीस फुट लम्बे शहतीरों का प्रयोग किया जाता है। तिमंजलों के लिए ऐसे पांच-छः शहतीर डाले जाते हैं जिन्हें सहयोग से ही जंगल से घर तक और फिर घर की दीवार तक पहुंचाया जाता है। इस प्रकार की सहयोगी प्रथा को 'न्हासोती' संज्ञा से जाना जाता है। इन लम्बे और मोटे शहतीरों को 'न्हास' कहा जाता है। इन्हें एक-एक को खींचने के लिए तीस-तीस और चालीस-चालीस व्यक्तियों की जरूरत होती है। घर बनाते समय सभी एक-दूसरे का हाथ बंटाते हैं। इस प्रथा को 'खरेट पाणा' यानी न्योता देकर आदमियों को अमुक दिन के लिए बुलाना होता है। उस दिन जब 'न्हास' या अन्य घर का सामान ढोया जाता है तो उन व्यक्तियों को भोजन खिलाना घर वाले का फर्ज समझा जाता है। घर की अन्य सामग्री भी सहयोग से ही ढोई और घर पहुंचाई जाती है।

विवाह के समय सहयोगी प्रथाएं

विवाह के समय भी बहुत-सा कार्य सहयोग से किया जाता है। विवाह के समय भोजन-सामग्री को एकत्रित करने के लिए बीस-बीस या सामर्थ्यानुसार या तीस-तीस किलोग्राम अन्न कुछ परिवारों से उधार ले लिया जाता है। यह उधार उसी समय चुकाया जाता है जब उन परिवारों के घर भी विवाह उत्सव होता है। इस प्रथा को 'चड्ड प्रथा' कहते हैं। उधार न मांगकर 'चड्डू' संज्ञा दी जाती है। इस अन्न की पिसाई भी दूर-दूर के घराटों में की जाती है। यह कार्य भी सहयोग से किया जाता है इस प्रथा को 'मात्रा पीसना' की संज्ञा दी जाती है। विवाह के लिए शुभ अवसर पर लकड़ी काटी जाती है इस सहयोगी प्रथा को 'छोई पाणा' कहते हैं। पड़ोसी और सम्बन्धी वर या वधू को विवाह से पूर्व भोजन ले जाते हैं जिसे 'लुढेक' कहा जाता है। 'वधु'प क्ष को लड़की के लिए वस्तु या पैसे के रूप में भेंट दी जाती है जिसे 'सुआज' संज्ञा से जाना जाता है। वर पक्ष को पैसे या वस्तु के रूप में भेंट देने की सहयोगी प्रथा को 'तमोल ळाणा' (तामूल लगाना) की प्रथा से जाना जाता है। इसी प्रकार वर या वधु का मामा विवाह के समय एक भोज का आयोजन करता है जिसे 'छक' देना कहा जाता है। इसी प्रकार और

भी प्रथाएं प्रचलित हैं जो समाज को आर्थिक तौर पर मजबूत बनाती है। इसी प्रकार 'नवाला' उत्सव के समय काम-काज की-सुविधा के लिए जोगी-चेला से लेकर 'कटवाल' और 'बटवाल' तक नौ व्यक्ति नियुक्ति किए जाते हैं जो अपने निर्धारित कार्यक्षेत्र को सम्भालते हैं और उत्सव को सफल बनाते हैं।

गृह-निर्माण के समय घर की नींव खोदी जाती है। इस कार्य को 'उकरीब' करना कहा जाता है। यह कार्य भी लोगों के सहयोग से सम्पन्न होता है। गृह-निर्माण सम्पन्न होने पर घर को छाया जाता है जिसे 'टप्पर छाई' से जाना जाता है तथा यह कार्य लोगों की सहायता से किया जाता है। नई जमीन (नोतोड़ भूमि) को भी लोगों की सहायता से कृषि योग्य बनाया जाता है इसे 'उखट' की संज्ञा दी गई है।

फसलों के लगाने में सहयोगी संस्थाओं का प्रचलन

अगर कोई बीमार हो तो उस परिवार का फसल का काम मिल-जुल कर करा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त मक्की या अन्य फसल के काम को भी सहयोगी प्रथाओं द्वारा किया जाता है। कभी एक के खेत को सब मिलकर गुड़ाई करा देंगे तो कभी दूसरे के इस प्रकार की प्रथा को 'निदारी' कहते हैं। कभी मिलकर फसल बोने का काम भी होता है। इसे 'हळेट' की संज्ञा दी जाती है।

इनमें सबसे आकर्षक कार्य घास काटने का है। गद्यार क्षेत्रों में यह कार्य उन क्षेत्रों में होता है जहां घास की बड़ी-बड़ी ढलानें पाई जाती हैं तथा घास काटने का काम इकट्ठे मिलकर किया जाता है। एक दिन एक का घास कटाया जाएगा तो दूसरे दिन दूसरे का। चालीस-पचास आदमी एक साथ ही काम करेंगे। इस प्रकार प्रक्रिया कार्तिक मास में पूरा एक मास चलती है। 'घुरैही' और अन्य लोक गीतों की मधुर ध्वनि से सारी घाटी गूंज उठती है। शाम को थोड़ी देर के लिए सहभोज पर नाच-गाना भी किया जाता है। इस प्रकार की प्रथा उन क्षेत्रों में है जहां के निवासी 'जांधर' प्रवास न कर सारा साल अपने घरों में ही रहते हैं। ये क्षेत्र लिहल, पियूहर, वस्सु बकान और गूं बेलज हैं।

यही नहीं दुःख के समय भी सहयोगी प्रथाओं ने बड़ा कार्य किया है। मृत्यु-संस्कार के समय ऐसी प्रथाएं संतप्त परिवार का हाथ बंटाती हैं। जब कोई मर जाए तो उस पर कपड़ा डालने या पैसा रखने की प्रथा हर जगह प्रचलित है। इस प्रथा को (कपड़ा डालने की प्रथा को) 'टल्लु पाण' की संज्ञा दी जाती है। मृतक व्यक्ति के जलाने के लिए लकड़ी इकट्ठे मिल कर काटी जाती है और वहां तक पहुंचाई जाती है जहां दाह-संकार किया जाता है।

मृत्यु के दिन से क्रिया-संस्कार तक संतप्त परिवार के घर थोड़ा-थोड़ा अन्न और पैसे पहुंचाने की प्रथा भी प्रचलित है। जब लोग सम्वेदना प्रकट करने

कर पहुंचाया जाता था। सरसों के तेल, सूखी लाल मिर्च और अन्य सुलभ वस्तुओं का आदान-प्रदान बड़ी सुगमता से घरों में किया जाता था। भरमौर के बाहर के क्षेत्र के लोग शुद्ध सरसों का तेल ऊन के बदले उन्हें घरों में उपलब्ध कराते थे। सूखी मिर्च और अन्य आवश्यक वस्तुओं का भी ऊन के बदले उन्हें सुलभ कराया जाता था। आधुनिक साज-सज्जा का प्रचलन उस समय नगण्य के बराबर था।

सामाजिक ढांचे के प्रचलन के लिए कुछ ऐसी समाज-सेवी संस्थाएं थीं जो समय पर अपना कर्तव्य निभाती थीं। अतः समय पर किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता था। इन संस्थाओं को कारगर, कर्मकार या कामकाजी(कमीण) संस्थाओं की संज्ञा दी जाती थी। स्थानीय भाषा में इन संस्थाओं को 'कमीण' कह कर पुकारा जाता था। इन कमीण संस्थाओं में कुछ अतीत की स्मृति में खो गई हैं परन्तु कुछ अब भी सक्रिय हैं। वर्तमान समाजसेवी संस्थाओं में लोहार, कुम्हार, बढ़ई, शिप्पी, छारैळा, बाजदार, रिहाड़ा, चमार प्रसिद्ध हैं। इनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है :

लुहार—लुहार गद्दी समाज की आवश्यक संस्था है। लुहार का काम लोहे के औजार बनाना है। लोहे के कितने औजार बनाए गए इसका कोई हिसाब नहीं। इसे हर फसल पर 'खलौथी' दी जाती है। 'खलौथी' एक प्रकार का निश्चित अनुदान है जो साल में दो बार फसल अनुसार दिया जाता है। नियमानुसार यह अन्न 'माणी' या 'पथ' नामक मापक से माप कर दिया जाता है जिससे अनुमानतः दो किलोग्राम के लगभग अन्न आता है। उसे दो 'पथ' प्रति फसल अन्न दिया जाता है। कहीं-कहीं मक्की उपजाऊ क्षेत्र में फसल के समय एक किल्टा मक्की के भुट्टे देने की प्रथा है।'खलौथी' शब्द की उत्पत्ति खळ(खलिहान) शब्द से हुई है। 'खळ' वह खलिहान है जिसमें अन्न रौंदा जाता है। अतः 'खलौथी' का अर्थ उस निश्चित अन्न से है जो नियमबद्ध 'कमीण' वर्ग को खलिहान में रौंदते समय देने की प्रथा है।

लुहार पुराने समय युद्ध सम्बन्धी सामान जैसे बन्दूकें, बरछे, तलवार(स्थानीय तबरी)इत्यादि भी तैयार करते थे। कई स्थान ऐसे मिले हैं जहां स्थानीय जरूरतों के अनुसार लोहा उपलब्ध था। उसे साफ कर स्थानीय आवश्यकताएं पूरी की जाती थीं। लोहे को भी खरीदा नहीं जाता था। आधुनिक साधन उपलब्धी के कारण अब लोहार का पेशा भी ढीला पड़ गया है। खळौथी आदि के नियम भी सीमित हो गए हैं। प्राचीन काल में यह उद्योग स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता था।

कुम्हार—कमीण श्रेणी की अन्य संस्था कुम्हार है जो भरमौर के कुछ क्षेत्र में उपलब्ध हैं। कुम्हार विवाह-शादी की और अन्य आवश्यकताएं पूरी करता है। इसे भी 'खळौथी' और विवाह अवसर के समय अन्य नियमबद्ध हिसाब दिया जाता

है। भरमौर के इस क्षेत्र में यह संस्था बढ़िया मिट्टी के बर्तन उपलब्ध कराती है अन्य क्षेत्र के लोग भी इसका लाभ उठाते हैं। कई क्षेत्रों में यह सुविधा कतई सुलभ नहीं है।

बाजदार (वाद्ययंत्री)—गांव में आज भी वाद्य यंत्री की भूमिका प्रशंसनीय है। यह कलाकार उद्योगी संस्था विवाह, मृत्यु और अन्य संस्कारों के समय महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इन्हें अन्य हिसाब के साथ-साथ अब भी खळौथी अपनी दी जाती है। यह कला अपनी परम्परागत संस्कृति को सुरक्षित रखे हैं। अब बैंडबाजे के विकास के कारण इस कला को धक्का अवश्य लगा है।

द्वारैला—द्वारैळा एक अन्य महत्त्वपूर्ण संस्था है। विवाह उत्सव के समय घर के दरवाजे को चित्रित करता है। रति और कामदेव के चित्र इनमें मुख्य होते हैं। यही जाति पहले विवाह और अन्य उत्सवों पर दोने और पत्तल का प्रावधान करती थी। मृत्यु संस्कार के समय भी यह जाति कई संस्कारों के लिए सामग्री जुटाने में हाथ बंटाती थी। इसे भी प्रत्येक फसल पर खळौथी दी जाती थी। अब यह वर्ग भी समाप्त प्रायः है। ऐसा लगता है कि ये परिवार चित्र कला में सिद्ध-हस्त थे। धीरे-धीरे यह कला-कुशलता क्षीण होती गई।

शिप्पी और बढ़ई लकड़ी का काम करते और समाज को अपनी कारीगरी से चकाचौंध करते। शिप्पी (शिल्पी) जाति इस समय हरिजनवर्ग का मुख्य अंग है। यह जाति लकड़ी के कार्य में सिद्धहस्त है। यही जाति है जो बढ़िया लकड़ी के वर्तन बनाती थी। घर के काम में आने वाली लकड़ी की चीजें सुन्दर ढंग से बनाते थे। आज की पुरानी बनी वस्तुएं देखी जा सकती हैं। लकड़ी के मर्तबान और कुम्भ-नुमा वस्तुएं सिन्धु-घाटी के बर्तनों की कारीगरों को याद दिलाती हैं।

रिहाड़ा (ठठियार)—पीतल और अष्ट धातु की मूतियां और बर्तन बनाते थे। भरमौर का प्रसिद्ध मूर्तिकार गुग्गा भी इसी जाति से सम्बन्ध रखता था। उसकी बनाई अष्ट धातु की मूर्तियां आज भी भरमौर चौरासी मन्दिरों में उपलब्ध हैं। वे आज भी कल की बनाई लगती हैं। यह जाति अब भी बर्तन बनाती है।

चमार जाति—पशु चिकित्सा में प्रवीण थी। जो अब लुप्त प्रायः है। इसी प्रकार न जाने कितनी परम्परागत समाज-सेवी संस्थाएं विस्मृति के गर्भ में समा चुकी होंगी। जिन पर सारे समाज का ढांचा खड़ा था।

जादू-टोने

अन्य स्थानों की तरह गद्दी जनजाति टोने-टोटके पर विश्वास रखती है। शिक्षा प्रचार और प्रसार से ऐसे विश्वासों में ढील आना स्वाभाविक है। परन्तु फिर भी भूत-प्रेत, डायन-डागी, टोने-टोटके पर संदेह बना ही है। कई अंधविश्वास तो सुसंस्कृत लोगों पर भी छाये हुए हैं। जो चाहे कहीं के रहने वाले क्यों न हों। विज्ञान के चमत्कारों ने इस प्रकार के विश्वासों को अवश्य झझकोरा है, परन्तु फिर भी इन्हें मूल रूप में अन्य सभ्य देश भी मानते हैं और भूत-प्रेत पर विश्वास रखते हैं। कुछ प्रचलित विश्वास इस प्रकार हैं—

खोरी छडणा—यदि किसी के घर में कलह हो, घर के व्यक्ति रोग से बार-बार ग्रस्त हों, माल-मवेशी रोगग्रस्त होते हों, निर्धनता पंजे फैलाये हो तो इस घर के लोग यही कहते सुने हैं कि कहीं घर में जादू गड़ा है। वे जादू ढूंढ़ने का प्रयत्न करते हैं। किसी ग्रामीण 'चेले' (जादूगीर) को बुलाते हैं। चुपके से कोई दिन निश्चित करते हैं और जादू की खोज आरंभ हो जाती है। जादू का पता लगाना तो कोई खाला जी का घर नहीं। अतः चेला मंत्र बोलने आरंभ करता है। एक काष्ठ की 'माणी' (काष्ठ का बना एक माप यंत्र जिससे अन्न मापा जाता है) लाई जाती है। माणी में मंत्र कर जौ और सरसों तथा एक तांबे का पैसा डाला जाता है। जिस पर हनुमान का चित्र लगा होता है। एक व्यक्ति इस माणी को जोर से पकड़े रखता है। मंत्र उच्चारण पर यह यंत्र स्वयं गति में आ जाता है और चलना शुरू हो जाता है। इसको पकड़े व्यक्ति उस यंत्र के वेग से घसीटता चला जाता है। परन्तु वह उस 'माणी' या लोटे (माणी के स्थान पर पीतल के लोटे का प्रयोग भी किया जाता है) को कसकर पकड़े रखता है और पीछे-पीछे उसी वेग से चलता है। माणी कभी यहां, कभी वहां, कभी आंगन में और कभी कमरे में दौड़ती जाती है। इस प्रकार चार-पांच घंटे भी लग जाते हैं। अन्त में वह एक ही स्थान पर बार-बार टिकती है। अब विश्वास हो जाता है कि उस स्थान को उखाड़ा जाए। उस स्थान को खोदने पर जादू निकल आता है। जादू क्या है, दो-चार हड्डियां, सरसों, जौ, सिन्दूर, कोयले, सिर के बाल इत्यादि। अन्य बहुत-सी जादुई वस्तुएं भी हो सकती हैं। अब इन सभी वस्तुओं को जूतों की मार देकर

प्रभाव-हीन कर कहीं अज्ञात स्थान पर फेंक दिया जाता है।

कभी-कभी कई दिन की खोज के बाद भी जादू के स्थान का पता नहीं लगता इस जादूए-उपचार को 'खोरी छडणा' कहा जाता है।

मूठ छडणा—'मूठ छडणा' बहुत ही भयंकर जादू माना जाता है। यदि किसी की किसी अन्य परिवार या व्यक्ति से घोर शत्रुता हो तो उस परिवार के किसी सदस्य को मूठ छोड़कर मार दिया जाता है। ऐसे कृत्य के लिए किसी अच्छे जादूगीर को ढूंढ़ा जाता है। वह जादूगीर किसी विशेष अवसर की टोह में होता है। जब वह व्यक्ति नहा रहा हो, वृक्ष पर हो या किसी अन्य दशा में हो तो मंत्र पढ़कर 'मूठ' छोड़ी जाती है। वह व्यक्ति उसी समय मर जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उसे 'मूठ' से मारा है। यह सत्य हो या असत्य, परन्तु इस प्रकार का विश्वास लोगों में अब भी प्रचलित है। किसी की इस दशा में अचानक मृत्यु होने का अर्थ 'मूठ-छोड़ना' जादू-टोने पर संदेह बना रहता है।

भूत लाणा—जब कोई व्यक्ति पागल की तरह बकने लगे तो ऐसा समझा जाता है कि उसे भूत लगा दिया है। उसके पागलपन का उपचार जादूए ढंग से किया जाता है। उसका उपचार 'छाड़' छोड़कर किया जाता है।

छाड़ छडणा—'छाड़' वह जादुए उपचार है जो व्यक्ति के प्रति किया जाता है जिसे 'भूत लगा' माना जाये चाहे वह बीमार व्यक्ति पागल हो या अन्य बीमारी से ग्रस्त। इस प्रकार की बीमारी को 'ओपरा रोग' भी कहते हैं। इसका उपचार 'छाड़' छोड़कर किया जाता है। जादूगीर या चेला उस बीमार आदमी की मिट्टी या आटे से प्रतिमा बनाता है। उसे कपड़े पहनाता है साथ अन्य पशु-पक्षियों की प्रतिमाएं भी निर्मित की जाती हैं तथा उस भूत के लिए खाद्य-पदार्थ रखे जाते हैं। 'भूत' के लिए शराब भी रखी जाती है यानी कि भूत को प्रसन्न करने के लिए उसके उपयुक्त सामग्री एकत्रित कर एक चपटे लकड़ी के बर्तन में रखी जाती है फिर संध्या के दोपहर को तीन-चार व्यक्ति इस सामग्री को किसी चौबारे (चौराहा) पर रख आते हैं ताकि वह 'भूत' प्रसन्न होकर वहीं से वापस हो जाए। जब छाड़ को उठाकर चौराहे की ओर अग्रसर होते हैं तो सबको सूचित कर दिया जाता है ताकि 'छाड़' के आगे कोई व्यक्ति न आए ऐसी दशा में जो भी व्यक्ति 'छाड़' के आगे आएगा उसको ही 'भूत' लग जाएगा।

'खाधा खेलना और नल्ली-डाली—लोगों में विश्वास है कि कई 'डागी या डायण' अपने शत्रुओं को डाह से या परखने के लिए 'खाधा' खिला देते हैं जिसे खाने वाला व्यक्ति रोगग्रस्त होकर धीरे-धीरे मर जाता है। दूसरे शब्दों में यह एक प्रकार का विष है जो जादू के नुस्खे अनुसार बनाया जाता है तथा चुपके से किसी के भोजन में डाल दिया जाता है जिससे धीरे-धीरे खाने वाला व्यक्ति मर जाता है। ऐसे रोगों का उपचार 'नल्ली-

डाळी' क्रिया से किया जाता है। जादूगीर या 'चेला' जिसे 'गार्डी' भी कहा जाता है, यदि रोगियों का एक ही स्थान पर मन्त्रों के प्रयोग से सामूहिक उपचार आरम्भ करता है। रोगियों को एक पंक्ति में सिर पर पर्दा डालकर बैठा दिया जाता है। 'गार्डी' एक तारा वाद्य यन्त्र लिए होता है जिसे 'दुबातरा' कहा जाता है। वह उसको बजा-बजाकर गाने गाता है। इस पर वे रोगी ताल और लय को सुनकर विभिन्न नृत्य क्रियाएं करनी आरम्भ करते हैं वह चेला उन पर बारी-बारी से प्रश्न पूछता जाता है और बारी-बारी गाता भी जाता है। यह क्रम तीन-चार दिन चलता रहता है। अन्त में रोगी उस डागी या डायन का नाम लेते हैं जिसने उन्हें 'खाधा' खिलाया है और किस क्रम से और कहां से वह खाधे की सामग्री जुटायी। कहा जाता है कि 'खाधा' खेला गया और उपचार हुआ मान लिया जाता है।

इस उपचार को कराने के उपलक्ष में उस 'गार्डी' या चेले को उचित उपहार दिया जाता है।

डाळी बाहण (झाड़-फूंक)—टोने-टोटके के अन्तर्गत झाड़-फूंक द्वारा उपचार भी प्रचलित है जिसे 'डाळी बाहण' की संज्ञा भी दी जाती है। यदि किसी को फोड़े-फुंसी हो जाएं तो उनके फैलाव और वृद्धि को रोकने के लिए झाड़-फूंक की जाती है। सांप के काटे का इलाज तो पूर्णतया झाड़-फूंक पर ही निर्भर करता है। एकदम असाधारण व्यवहार करने वाले व्यक्ति का इलाज भी झाड़-फूंक द्वारा किया जाता है। पागलपन को तो भूत लगना ही समझ लिया जाता है और झाड़-फूंक शुरू हो जाती है। आधुनिक चिकित्सा सुविधाएं होने पर भी एक दौर में तो यही इलाज आरम्भ किया जाता है।

इसके अतिरिक्त ऐसा भी विश्वास है कि जाप और मन्त्र द्वारा किसी को भूत या कोई देवता लगा दिया जाता है। जिससे शत्रु को बुरी तरह से प्रभावित किया जाता है औरतों को 'वणास्थ' देवी का जाप कर उसका पीछा किया जाता है जिससे वह और पागलपन से ग्रस्त हो जाती है। इसका उपचार दूसरा जादूगर मंत्र और झाड़-फूंक द्वारा करता है यह आम लोक विश्वास है। 'जल-वताल लाणा,' 'बळा लाणा' इत्यादि विश्वास भी प्रचलित हैं। बाघ का जाप कर किसी के पीछे लगाना उस परिवार के लिए आपत्ति खड़ी हो जाती है। बाघ बारी-बारी से प्रभावित व्यक्ति के पशुओं को मार डालता है। 'चुंधु लगाना' भी एक जादुई क्रिया है। चुंधु एक अर्ध-देवता ही है जो कद में बहुत छोटा-सा चलता-फिरता देवता है। पीठ पर छोटा-सा किल्टा उठाए होता है और सिर पर नोकदार टोपी पहनता है। श्वेत दाढ़ी होती है। इसे पीछे लगाने का अर्थ गाय के दूध को हानि पहुंचाना है। विश्वास है कि यह राक्षस-देवता गाय के दूध को पी जाता है। इसे भी जादुई क्रिया द्वारा भगाया जाता है।

प्रेत आत्मा को भगाना (कीलणा)—लोक विश्वास है कि दुष्ट आत्माएं भटकती रहती हैं और कहीं-कहीं आत्मीयजनों को दुःख देती हैं। घर की शान्ति भंग करना उनका कर्त्तव्य है। ऐसी आत्माएं रात को बार-बार प्रकट होती हैं जिस से परिवार भयभीत हो जाता है उन्हें भगाना ही श्रेयस्कर हो जाता है अतः जादूगीर उस स्थान पर जहां ऐसे व्यक्ति को जलाया होता है मन्त्र द्वारा एक लोहे की कील गाड़ आते हैं जिससे वह प्रेत आत्मा निष्क्रिय हुई समझी जाती है। और बाद में किसी प्रकार की गति नहीं करती। अतः घर में शान्ति स्थापित हो जाती है।

इस प्रकार अगिनत जादू-टोने जन-जातीय लोगों में प्रचलित हैं।

शब्द-सम्पदा

इस पुस्तक में विषय-वस्तु के आधार पर बहुत से स्थानीय शब्दों का सांगो-पांग समावेश हुआ है। उनका स्पष्टीकरण उपयुक्त स्थान पर साथ-साथ कर दिया है फिर भी उनका अर्थ इस सूची में दिया जा रहा है :

शब्द	अर्थ
अलंगघेर	एक प्रकार की बड़े आकार की मधुमक्खी जो वृक्षों पर अपना छत्ता बनाती है।
अतरायण	एक प्रकार का चोगा।
अंदरोळ	पर्दा प्रथा के कारण अन्दर रहना।
ओड़ा	पशुशाला में छोटे पशु के लिए बनाया स्थान। जहाँ उन्हें अलग रखा जाता है।
ओवरा	घर की निचली छत जहां पशु रखे जाते हैं।
ओवरी	घर की बिचली छत्त।
औत्री	निःसन्तान व्यक्ति का होना।
उखट	वंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए सामूहिक खुदाई।
उढाळा	किसी की कन्या या औरत को भगाकर ले जाना।
उनाळा	ऊनी।
उणसाण	ऊनी सूत को पक्का बनाने का साधन।
उर्णु	भेड़ का बच्चा।
ऐहण	बिच्छु बूटी।
करूं	शहतूत के प्रकार का स्थानीय वृक्ष।
कळेजा	जिगर।
कांगड़ी	कश्मीरी टोकरी जिसके मध्य में मिट्टी के बर्तन में आग रख कर चलते-फिरते शरीर गर्म करने का प्रावधान होता है।

कांसे	एक प्रकार का युगल वाद्य यन्त्र जिससे 'टुण-टुण' की ध्वनि निकलती है।
काछी	बोझ या किल्टे के साथ लगी रस्सी जिसके सहारे पीठ पर बोझ उठाया जाता है।
कीलणा	मेख गाड़ना।
कुलज	कुल का देवता।
कुनाळा	आटा गूंथने के लिए प्रातः की तरह का काष्ठ का बड़ा बर्तन।
कुठ	एक प्रकार की जंगली जड़ी-बूटी।
कुप्पी	काष्ठ का छोटा-सा बर्तन जिसमें तेल या घी डाला जाता है।
कैंथ	एक प्रकार का फलदार वृक्ष।
कोद्रा	कोदो (अन्न)।
कौड़	एक प्रकार की जड़ी-बूटी।
खळ	आंगन जहां अन्न कूटा जाता है।
खळौथी	श्रमिक वर्ग के लिए निर्धारित अन्न का माप जो प्रति फसल पर दिया जाता है।
खल्हड़	भेड़ या बकरी की खाल जिसमें अन्न डाला जाता है।
खाधा	जादू जो खिलाया जाय।
खिंध	टूटे-फूटे कपड़े से बनाई सोने के लिए रजाई या तलाई।
खोख	कोख।
खोरी	जादू ढूंढ़ने के लिए जादू के सहारे लोटा या मापक यंत्र घुमाकर जादू ढूंढ़ना।
गद्यार	गद्दी भूमि।
गदेटी	गद्दी युवती।
गात्री	कमर में बांधने का काला रस्सा।
गार्डी	एक जादूगर जो गा-गाकर जादू के प्रभाव को समाप्त करता है।
गादी	गद्दी जाति सम्बन्धी।
घिऊ	घी।
चड्ड	विवाह के समय अन्नरूप में सहयोग लेना।
चढ़तर	चढ़ावा।
चणिआ	एक प्रकार का बारीक अन्न जिसका भात बनाया जाता है।